विचार → चिंतन → शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 10	अंक : 39	जनवरी-मार्च, 2025
Year - 10	Volume - 39	January - March, 2025

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

आलोचन दृष्टि वर्ष-10 अंक-39 जनवरी - मार्च, 2025 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 10	अंक - 39	जनवरी-मार्च, 2025
Year - 10	**Volume - 39**	**January-March, 2025**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
सदस्यता शुल्क			
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** चंद्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा (बिहार)।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

समय की अपेक्षा **काल** एक व्यापक अवधारणा है। हम सब अपने समय की हालत एवं जिहालत से गुजरते हुए एक नये काल की अवधारणा को धीरे–धीरे एक नया नाम 'समकालीन कालखंड' दे रहे हैं।

प्रायः हम यह भी मानते हैं कि काल की अवधारणा **कर्म की नियति एवं परिणति** को लेकर ठीक उसी तरह से अपने चक्र में गतिशील रहती है जिस तरह सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी आदि समस्त ग्रह–नक्षत्र। हमारी ऋतुएँ एवं प्रकृति की सचराचर कृति भी– ठीक इसी चक्र में अपनी मर्यादा के अनुरूप प्रसरित रहती है– जिसकी एक निश्चित लय, तुक एवं ताल होती है और इसी क्रम में संपूर्ण सृष्टि भी संचालित होती है।

हमारी समस्या यह है कि हम कभी भी **काल** को देख नहीं सकते। अगर देखते हैं तो केवल अपने समय की सीमा को, अपनी निजता को और इसी आधार पर अपने विचारों की हम व्युत्पत्ति करते हैं। इसी व्युत्पत्ति के आधार पर हमारी एक विचारधारा बनती है और फिर विचारधाराओं का एक समूह बनता है और यथा अनुरूप इसी के आधार पर समाज, संस्कृति, परंपरा एवं जीवन की एक नई नीति बनती है, जो अब राजनीति का रूप धारण कर चुकी हैं। जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव– सभी पर पड़ता है और हम सभी अपने विचार एवं विचारधारा के अनुरूप कुछ–न–कुछ इसमें जोड़ते हुए– अपनी यात्रा करते रहते हैं। आने वाली पीढ़ियाँ भी– इसी अनुरूप अपने नए–नए आयाम जोड़ती जायेंगी। ख़ैर... हम सभी जिस समकालीन कालखंड की अवधारणा में जी रहे हैं या रह रहे हैं उसमें **काल** की अवधारणा लगभग गायब–सी है, है तो केवल समय की अवधारणा के कुछ क्षणभंगुर आयाम, स्वार्थपरक जीवन की वैचारिक व्यक्तिगत अनुभूतिओं की अवधारणाएँ। जिसमें किसी की सहमति भी नजर आती है तो किसी की असहमति भी।

यही सहमति एवं असहमति जब अपनी सीमाओं से अतिक्रमण करती है तो कई बार वह चाटुकारिता की हद से भी गुजरती है या फिर विरोध के। यह गुजरना कई बार व्यक्तिगत निजता का लाभ मात्र– लेना होता है। कई बार तो ऐसा भी लगता है कि जिस तरह किसी व्यक्ति, जीव–जंतु आदि के साथ रहते हुए– उसके प्रति हमारा लगाव या अनुराग विशेष रूप से बढ़ जाता है, ठीक उसी तरह से विचार और विचारधारा के प्रति भी– हमारा एक तरह का लगाव या अनुराग प्रगाढ़ रूप धारण कर लेता है, जिसको प्रतिष्ठित करने के लिए हम हर संभव प्रयास करते हैं, जो निश्चित रूप से एक तरह से दूसरों पर थोपने का कार्य है। यह थोपना ही– वादों को जन्म देता है। फिर इन्हीं वादों से– विवाद होते हैं। जितना विवाद बढ़ता जाता है, उतने ही वाद के अंध–अनुयायी और अधिक जड़ होते जाते हैं। फिर संवाद की जगह धीरे–धीरे खत्म–सी हो जाती है, और कई जगह यह खत्म भी हो गई है। फिर या तो किसी बात को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया जाता है या फिर उसका विरोध शुरू हो जाता है, जिसका सार्वभौमिक मानवीय सरोकारों से– किसी भी प्रकार का कोई लेना–देना नहीं होता। यह केवल एक विशिष्ट जाति, धर्म, वातावरण की सृष्टि होकर अपने फैलाव एवं विस्तार के लिए अभिप्रेरित होती है, या की जाती है, और ऐसा हम सब अपने समय की अवधारणा में बखूबी देख भी रहे हैं।

दूसरा, जिसे हम सब अब आधुनिक कालखंड लगभग मान चुके हैं वह एक तरह की औपनिवेशिक अवधारणा मात्र है। अब तो पूरी दुनिया इस औपनिवेशिक अवधारणा की जो कमजोरियाँ हैं उसके दलदल में फँसती ही– चली जा रही हैं, कहाँ तक फँसती जाएगी– कुछ कहा नहीं जा सकता है। हाँ, कुछ विद्वानों का यह मत जरूर है कि हमारा समाज जिस औपनिवेशिक मानसिकता से आगे बढ़ता जा रहा है– वह एक दिन लौटेगा जरूर।... पर मुझे यह केवल अपने मन को समझा लेने की एक आदर्श अवधारणा मात्र– जान पड़ती है, क्योंकि अब लौटने का कोई रास्ता नजर नहीं आता। ठीक उसी तरह से जिस तरह से कोई कमलिनी आगे बढ़ जाने के बाद– कभी वापस नहीं लौट पाती, हाँ, नष्ट जरूर हो जाती है। यह अलग बात है कि ऋतु के अनुरूप वह पुनः अपने नवसृजन में लग जाती है और फिर ठीक पुनः उसी गति को प्राप्त होती है जैसे वह पहले होती है। ऋतु के अनुरूप वह हर बार ऐसा करने को अभिशप्त–सी– होती है।... यही शायद शाश्वत क्रम भी है।

रचनाकार और **आलोचक** सभी लगभग अपने **समय की मर्यादा** और **नियति** में बंधे होते हैं। अस्तु उनकी सृजनधर्मिता इसी समय की अवधारणा को रेखांकित करते हुए अपनी सहमति और असहमति– दर्ज कराती हैं। हम सभी प्रायः असहमति को– अपना विरोध समझ लेते हैं और सहमति को– अपनी प्रशंसा। सहमति रखने वाले को– हम अपना सहयोगी मान लेते हैं और असहमति रखने वालों को– विरोधी। जबकि रचनाकार एवं आलोचक अपने प्रकृति के अनुरूप कभी भी किसी से कोई विरोध नहीं रखता और न ही वह किसी का विरोधी होता है। वह सिर्फ अपने विचारों के अनुरूप समाज को– आईना दिखाने की– हर संभव अपनी कोशिश करता है और यह उसकी निजी चिंतनयात्रा का वैचारिक फलक भी होता है। हम इस बात को अपनी परंपरा में बखूबी देख सकते हैं, जिसकी लंबी, समृद्ध एवं अटूट कड़ियाँ हैं।

2006 से लगातार **विद्याश्री न्यास, वाराणसी** द्वारा प्रत्येक वर्ष किसी न किसी महत्वपूर्ण विषय में संगोष्ठी का आयोजन हो रहा है। इस बार **हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि** विषय पर **भारतीय लेखन शिविर** का आयोजन 14–15 जनवरी 2025 को हुआ, जिसमें देश भर के विद्वानों ने उपन्यासों की परंपरा की पड़ताल करते हुए उनके कथाभूमि के विविध आयामों पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट करते हैं कि उपन्यासों का क्रम लाला श्रीनिवास दास के **परीक्षागुरु** के पहले ही **देवरानी–जेठानी की कहानी** एवं **भाग्यवती** उपन्यास से शुरू हो जाता है, जिसमें **उपन्यासिक–तत्व** बखूबी देखने को मिलते हैं। साथ ही देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में हिंदी की पहचान बढ़ती है, जिसमें तिलिस्मी, ऐयारी एवं रहस्यात्मक किस्म की तमाम झलकियाँ मिलती हैं। फिर जासूसी किस्म के उपन्यासों ने चिंतन का एक नया आयाम जोड़ा। इसके साथ सामाजिक, पारिवारिक जीवन के विविध आदर्श एवं यथार्थ उपन्यासों दिखाई देते हैं, जिनमें समाज में जागरूकता लाने का विशेष प्रयास मिलता है। इसके बाद मनोविश्लेषणवादी, अस्तित्ववादी तथा समाजवादी (जिसे मार्क्सवादी भी कहते हैं) उपन्यासों ने अपनी–अपनी भूमिका निभाई। आजादी के बाद आंचलिक उपन्यासों के साथ–साथ ग्रामीण–शहरी जीवन की मनोवृत्तियों से जुड़े हुए– तमाम उपन्यास प्रकाशित होते हैं तथा सांप्रदायिकता एवं बंटवारे की संवेदनाओं को लेकर भी उपन्यास मिलते हैं, जिसमें फरेबी किस्म की राजनीति के तमाम चेहरे बेनकाब होते हैं। आगे औपनिवेशिक दौर के विविध फलक भी उपन्यासों में चित्रित हैं। साथ ही तमाम तरह के विमर्श उपन्यास में जुड़ते हैं, चाहे वह स्त्रीवादी हो या दलितवादी हो या फिर आदिवासीवादी ही क्यों न हो! सच्चाई यह है कि आज हर एक उपन्यास विमर्श की दृष्टि से बाहर नहीं है; बल्कि कहा जा सकता है कि हर एक उपन्यास विमर्श की दृष्टि से ही संपोषित है– कोई धर्म, जाति, व्यक्ति की विविधता को लेकर होता है, तो कोई भौगोलिक विमर्श से जुड़ा। इस तरह से यह संगोष्ठी अकादमिक दृष्टि से संपन्न सिद्ध होती है, जिसमें मानवीय चिंतन के सरोकारों को जोड़ते हुए– सोचने–समझने का एक नया रास्ता निकालने की कोशिश होती है। इसके लिए संगोष्ठी में उपस्थित हर एक विद्वान **विद्याश्री न्यास** के सचिव **डॉ. दयानिधि मिश्र** एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के भूतपूर्व कुलपति **प्रो. गिरीश्वर मिश्र** को धन्यवाद ज्ञापित करता है कि उन्होंने ऐसे कार्यक्रम हम सबको एक साथ जोड़ा।

'आलोचक दृष्टि' शोध पत्रिका अपने इन्हीं विचारों को प्रस्फुटित, संघटित एवं संवर्धित करते हुए– अपनी वैचारिक यात्रा का एक दशक पूर्ण कर रही है। इसमें इसके पाठकों, लेखकों एवं संपादक मंडल का विशेष योगदान रहा है, जिन्होंने अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के अनुरूप इसे आगे बढ़ाने की हर संभव कोशिश की है और सहयोग प्रदान किया है। आगे भी वह ऐसा ही करेंगे– ऐसा हमारा विश्वास है। उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 30 शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 27 (सत्ताईस, पुस्तक समीक्षा एवं संगोष्ठी प्रतिवेदन सहित), संस्कृत–भाषा का 1 (एक), और अंग्रेजी–भाषा के 2 (दो) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इन लेखों से हमारे पाठक निश्चित रूप से लाभांवित होंगे।

इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, कृतज्ञ हूँ। शेष....

31 मार्च, 2025।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. आचार्य शंकर एवं वल्लभ की भाष्यपद्धति का तुलनात्मक विवेचन 1-3
   डॉ. शशि भूषण भट्ट
2. भर्तृहरि के शतक और मनोचिकित्सा के सैद्धान्तिक सूत्र 4-8
   डॉ. सच्चिदानन्द देव पाण्डेय
3. योगमार्ग का प्रथम द्वार अहिंसा : एक मीमांसा 9-13
   डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय
4. रससिक्त राजस्थान की पहचान : लोकनृत्य 14-20
   डॉ. प्रणु शुक्ला
5. वैशाली गणराज्य की शासन व्यवस्था : अतीत एवं वर्तमान (725 B.C.- 484 B.C.) 21-28
   डॉ. विश्वजीत कुमार
6. भारतीय ज्ञान परंपरा : आयामगत वैविध्य (हिन्दी साहित्य के विशेष संदर्भ में) 29-32
   डॉ. सोनिया शर्मा एवं डॉ. समीर
7. कोलरिज के काव्य-संबंधी सिद्धांत 33-36
   डॉ. योजना कालिया
8. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता और कुँवर नारायण 37-42
   डॉ. सुनील कुमार मिश्र
9. तमस उपन्यास की कथात्मक विशिष्टता 43-46
   डॉ. सुनील कुमार मानस
10. प्राचीन आयुर्वेद में वर्णित त्रिदोष अवधारणा 47-50
    रोहित कुमार पाण्डेय एवं डॉ. त्रिभुवन सिंह
11. 'अगम बहै दरियाव' (शिवमूर्ति) में अभिव्यक्त भारतीय जन संवेदना के विविध स्वर 51-53
    डॉ. अंकिता विश्वकर्मा
12. लोक गीतों में नारी संवेदना 54-60
    डॉ. कुमारी मनीषा
13. धर्मशास्त्रीय आयाम भट्टिकाव्य के विशेष संदर्भ में 61-62
    डॉ. सागर कुमार पाण्डेय
14. विश्व पुस्तक मेला : ज्ञान एवं संस्कृति का महाकुम्भ 63-65
    सुनील कुमार साहू

15. ग़ज़ल का स्वरूप एवं विकास : एक परिचय 66-69
डॉ. बाबूलाल बैरवा

16. वशिष्ठ अनूप की गजलों में सम-सामयिकता 70-73
अनुज कुमार शर्मा

17. मृदुला गर्ग के उपन्यासों में बदलते जीवन मूल्य (स्त्री अस्मिता के विशेष संदर्भ में) 74-76
सोनी कुमारी

18. प्रेमचंद एवं शरतचन्द्र के उपन्यासों में वर्णित स्त्री-संवेदना 77-80
सत्येन्द्र कुमार द्विवेदी एवं प्रो. ललित कुमार सिंह

19. प्रसाद का इतिहासबोध और कामायनी 81-82
गोविन्दा

20. धर्मवीर भारती के उपन्यासों में चित्रित स्त्री जीवन की प्रमुख समस्याओं... 83-86
भारती

21. आधुनिक भारत में श्रमिक स्त्रियों की सामाजिक स्थिति : संघर्ष, संवेदना और... 87-89
डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चाडसणिया

22. जनजातीय समाज पर सोशल मीडिया का प्रभाव (जशपुर जिला के सन्दर्भ में) 90-93
सुनील कुमार साहू

23. संत कबीरदास के काव्य में क्रांतिकारी दर्शन 94-98
डॉ. मो. मजीद मियाँ

24. संथाली लोकगीतों में अंतर्निहित देशज ज्ञान का शैक्षिक उपयोजन 99-104
नंदन चन्द्र पानी एवं डॉ. हरीश पाण्डेय

25. ब्रह्मतटस्थलक्षणविचारः 105-109
डॉ. नीरजकुमारभार्गवः

26. **Digital Literacy and The National Education Policy (NEP) 2020...** 110-115
Jyoti Mishra

27. **Developed India @ 2047 : 'Social Transformation by Providing...** 116-121
Anita Ekka

28. आलोचना की बहुआयामी यात्रा : 'आलोचना के सम्मुख' (पुस्तक समीक्षा) 122-122
समीक्षक : डॉ. सुनील कुमार मानस

29. बिहार : एक समीक्षात्मक अध्ययन (पुस्तक समीक्षा) 123-123
समीक्षक : तीक्ष्णांशु उत्सव

30. 'हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि' पर केंद्रित राष्ट्रीय संगोष्ठी और... (संगोष्ठी प्रतिवेदन) 123-128
डॉ. दयानिधि मिश्र

★

आचार्य शंकर एवं वल्लभ की भाष्यपद्धति का तुलनात्मक विवेचन

डॉ. शशि भूषण भट्टः*

आद्य शहराचार्य का शांकरभाष्य एवं वल्लभाचार्य का अणुभाष्य ब्रह्मसूत्र पर लिखा गया प्रसिद्ध एवं सर्वसम्मत भाष्य है। शंकर का दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैतवाद कहलाता है वहीं वल्लभाचार्य का दार्शनिक 'सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' है। आचार्य शंकर एवं वल्लभ में किञ्चित्मात्र सैद्धान्तिक मत–भेद होने पर भी पर्याप्त साम्य है तथा भाध्य–पद्धति के साम्य एवं वैषम्य को निम्नरूप से देखा जा सकता है–

उपोद्घात–पद्धति :– आचार्य शंकर ने अपने भाष्य प्रणयन में सर्वप्रथम उपोद्घात पद्धति का आश्रय लिया है। यथा – ब्रह्म सूत्र पर भाष्य लिखने से पूर्व उन्होंने अध्यासभाष्य का निर्माण किया है और इस आधार पर वह यह सुनिश्चित करते हैं कि कि ब्रह्म की जिज्ञासा क्यों की जानी चाहिए क्योंकि यदि ब्रह्मा को स्वतः सिद्ध माना जाएगा तो ब्रह्म की जिज्ञासा नहीं उत्पन्न होगी इस प्रकार की जो भी समस्याएं हैं उन समस्याओं के निराकरण हेतु ही आचार्य शंकर ने अध्यास भाष्य को लिखा है वहीं वल्लभाचार्य ने आचार्य शङ्कर के समान ही उपोद्घात पद्धति को अपनी भाष्यपद्धति का विषय बनाया है।[1] जिसके कारण भाष्यकार के ग्रंथ अध्याय, अधिकरण, सूत्र अबवा पद्यादि के अभिप्राय को समझने में पर्याप्त सुबिधा होती है। ब्रह्म जिज्ञासा आरंभ करने के पूर्व आचार्य शंकर ब्रह्म की उपस्थापना करते हैं क्योंकि यहां पर वे पूर्वपक्ष को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म यदि जिज्ञासितव्य विषय है तो ब्रह्म अनित्य हो जाएगा और यदि ब्रह्म को अनित्य मानेंगे तो वेदांत का सिद्धांत ही पूर्णता समाप्त हो जाएगा और ब्रह्म को नित्य मानने पर फिर उसकी जिज्ञासा या उसकी सिद्ध करनी क्यों आवश्यक है इस प्रकार की शकाओं को प्रस्तुत करते हुए उनके निराकरण हेतु अध्यास भाष्य का प्रणयन आचार्य शंकर ने अपने ब्रह्म सूत्र भाष्य के पूर्व में ही कर दिया है।[2] वल्लभाचार्य ने यद्यपि अणुभाष्य के आरम्भ में अध्यास भाष्य नहीं लिखा है तथापि बाद के सूत्रों की व्याख्या के प्रसंग में कुछ भूमिका परख तथ्यों का वर्णन उन्होंने अवश्य किया है। वल्लभाचार्य जी भी अपने दार्शनिक सिद्धांतों की प्रस्तुति हेतु भूमिका निबंधन आवश्यक समझते हैं लेकिन आचार्य शंकर की इस पद्धति का अनुसरण उनके द्वारा उसप्रकार से किया जाना संभव नहीं हो पाया है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि वल्लभाचार्य जी के द्वारा आरंभ में अध्यास भाष्य न लिखना उनकी भारी भूल रही हो। आचार्य शंकर और बल्लभ की इस दृष्टि से वैषम्य दृष्टिगोचर होता है।

श्रुति एवं स्मृतिप्रामाण्य :– वल्लभाचार्य ने अपने भाष्य में अनेक श्रुति–वाक्यों को आचार्य शङ्कर के अनुकरण में उद्धृत किया है।' वैष्णव धर्मानुयायी होने से विष्णु भक्ति का पुट उनके भाष्य में विद्यमान है। जिसके कारण उन्होंने श्रुत्यनुमोदित स्मृतियों का भी प्रामाण्य स्वीकार किया तथा विष्णु (ब्रह्म) की पुरुषोत्तमाकारता का समर्थन किया है। अणुभाष्य में वल्लभाचार्य ने स्वविरचित कारिकाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है। यथा एक उपनिषद वचन है जिसकी व्याख्या के प्रसंग में उन्होंने स्वरचित कारिका का प्रयोग किया है सर्वप्रथम वह उपनिषद वाक्य प्रस्तुत किया जा रहा है– "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् स ईक्षत लोकानुसृजा इति", "सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत।[3] इस उपनिषद वाक्यांश के व्याख्या के प्रसंग में वल्लभाचार्य जी ने स्वरचित कारिका का वर्णन किया है–

परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद्विलक्षणम्।।[4]

आचार्य शंकर का संपूर्ण भाष्य प्रणयन रूपी कार्य वस्तुतः श्रुति एवं स्मृति प्रमाण पर ही आधारित है। उन्होंने वेद एवं श्रीमद् भगवद्गीता के श्लोक को लेकर की ही अपने सिद्धांतों को परिभाषित किया है। वैदिक वचनों एवं स्मृति के वाक्य का आचार्य शंकर ने परस्पर सामंजस्य प्रस्तुत किया है जहां पर जो वाक्य ब्रह्म के सगुणता का उपस्थापन करते हैं वहां उसे भी उपासनापरक बताते हुए आचार्य प्रवर ने निर्गुण ब्रह्म

***अतिथि प्राध्यापकः, चन्द्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभङ्गा–बिहारः।**

की ही श्रेष्ठ का प्रतिपादन किया हैं इस प्रकार विरुद्ध प्रतीत होने वाली श्रुति स्मृति वाक्यों का समन्वयपूर्वक वर्णन आचार्य शंकर ने अपने भाष्यपद्धति के माध्यम से किया है। इस प्रकार आचार्य शंकर एवं वल्लभ के भाष्य मैं श्रुति एवं स्मृति प्रमाण का अधिकांशत प्रयोग हुआ है और इस अर्थ में दोनों परस्पर समत्व रखते हैं।

दुष्टान्त एवं न्याय :– आचार्य शंकर ने दार्शनिक सिद्धांतों की सरलीकरण में स्पष्टीकरण हेतु दृष्टांत एवं न्याय की प्रक्रिया का आश्रय लिया है इस प्रसंग में उन्होंने अनेकशः दृष्टांत एवं न्याय प्रस्तुत किए हैं। लोक एवं शास्त्र में प्रसिद्ध ऐसे दृष्टान्तविशेष जिनके द्वारा क्लिष्ट से क्लिष्ट विषयों को भी सरलता से अनायास ही समझा जा सके, "न्याय" कहा जाता है। आचार्य शङ्कर प्रयुक्त कुछ न्यायों का नामोल्लेख निम्न है–

1. अन्धगोलाङ्गुल न्याय
2. अरुन्धती न्याय– उक्त न्याय का प्रयोग शारीरकभाष्य में आत्मा की चेतनता की सिद्धि हेतु प्रयुक्त है।"
3. ब्राह्मण–परिव्राजक न्याय
4. कारण गुण प्रक्रम न्याय
5. प्रधानमल्ल निर्वहन न्याय
6. समुद्रतरङ्गन्याय
7. स्थूणानिखनन न्याय
8. सोपानावरोहण न्याय
9. पङ्कप्रक्षालन न्याय
10. अहिकुण्डल न्याय
11. विष्णुप्रतिमा न्याय
12. भूप्रदेशवयोवस्था न्याय

इसके अतिरिक्त अर्धजरती न्याय, बीजाङ्कुर न्याय, स्वामीभृत्य न्याय आदि। दृष्टांत – कुछ एक दृष्टांत इस प्रकार हैं–

अयस्कान्तमणि का दृष्टान्त :– इस दृष्टान्त का प्रयोग निर्विकार निर्गुण परमात्मा में भी प्रवर्तकत्व की सिद्धि हेतु प्रयुक्त है। निर्विकल्प ब्रह्म किस प्रकार स्वयं को सविकल्पक बनाते हुए सृष्टि का आरंभ करते हैं और एक से अनेक रूपों में स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं। रूप आदि विषय जैसे स्वयं प्रवृत्ति से रहित होते हैं तथापि नेत्र आदि इंद्रियों के प्रवर्तक बन जाते हैं इसी प्रकार माया प्रवृत्ति से रहित है लेकिन ब्रह्म अपनी माया से स्वयं संयुक्त होकर सवयं को प्रवृत्तिशील कर लेते हैं। आचार्य शंकर कहते हैं– "यथाऽयस्कान्तो मणिः स्वयं प्रवृत्तिरहितोऽप्ययसः प्रवर्तको भवति यथा वा रूपादयो विषयाः स्वयं प्रवृत्तिरहितापि चक्षुरादीनां प्रवर्तका भवन्ति, एवं प्रवृत्ति रहितोऽपीश्वरः सर्वगतः सर्वात्मा सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च सन्सर्वं प्रवर्तयेदित्युपपन्नम्।"[5]

सिद्धान्तों के सरलीकरण एवं स्पष्टीकरण में आचार्य वल्लभ ने यात्राओं का प्रयोग किया है। यथा– "लोके हि केनचित् पृष्टो विष्णु–मित्र आह, यज्ञदत्तो ममात्मेति।" यह दृष्टान्त ब्रह्मसूत्र अणुभाष्य १–१–६ के उपोद्घात भाष्य में पूर्वपक्ष की ओर से 'स ईक्षां चक्रे" में आत्मशब्द की भी गौणता की सिद्धि हेतु प्रत्युपस्थापित करवाया गया है' परन्तु आचार्य शङ्कर के समान दृष्टान्तों के सरल एवं अत्यन्त व्यावहारिक प्रचुर प्रयोग से स्वकीय सिद्धांतों को सामान्य जनमानस के अन्तस्तल तक पहुंचाने में वे असमर्थ रहे हैं। न्यायों का भी यत्किचित् प्रयोग अणुभाष्य में उपलब्ध है।"[6]

व्याकरण पक्ष :– आचार्य शंकर के भाष्य में व्याकरण प्रयोग प्रचुर देखने को मिलता है आचार्य शंकर ने अनेकशः स्थलों पर विग्रह एवं संधि के सिद्धांतों का अद्भुत प्रयोग किया है। उनकी भाषा शैली ही उनके विलक्षण बैयाकरण होने की सिद्ध करती है आचार्य शंकर नेअपनी रचना में व्याकरण पक्ष पर विशेष ध्यान दिया है और उनके वाक्य –विन्यास ऐसा है कि उसमें संधि एवं समास का वैदुष्य प्रदर्शन स्वयमेव अभिव्यक होता है। आचार्य शंकर ने शब्दव्युत्पत्ति एवं परिभाषा पद्धति काआश्रय लिया है। उनके इस प्रकार के प्रयोग से उनके सिद्धांतों को समझना अत्यंत सरल हो जाता है। वल्लभाचार्य ने भी आचार्य शंकर के समान ही भाष्य द्वारा बेदान्त के सिद्धान्तों को सुबोध्य बनाने हेतु शब्दव्युत्पत्ति तथा परिभाषा पद्धति की प्रक्रिया को अपनाया है। जैसे– "शास्त्रे योनिः शास्त्रयोनिः। शास्त्रोक्त कारणत्वादि–त्यर्थः। शास्तीति शास्त्रंवेदः।" 'समानस्यभावः सामान्यम्', अभ्यस्यते पुनः पुनः कीर्त्यते इत्यभ्यासस्तस्मात्,' विपश्चिता विविधं पश्यच्चित्त्वं हि विपश्चिच्छब्दः।[7] इस प्रकार दोनों ही आचार्यों ने शब्दव्युत्पत्ति एवं परिभाषा पद्धति का आश्रय लेते हुए अपने–अपने सिद्धांतों को परिपुष्ट किया है और इस प्रक्रिया में उनकी व्याकरण में विशेष दक्षता सूचित होती है।

भाषा–शैली :– आचार्य शङ्कर के भाष्यप्रणयन में न केवल वैदिक, दार्शनिक एवं व्यावहारिक पद्धति को अपनाया गया है, प्रत्युत साहित्यिकता का भी समावेश किया गया है। आचार्य शङ्कर के भाष्य यद्यपि साहित्यिक कृतियाँ नहीं हैं तथापि "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति" के अनुसार उनके भाष्यों में अलङ्कारशास्त्र की विशेषताएँ भी अनायास ही समाविष्ट हो गई हैं। शाङ्करभाष्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट द्योतित है कि उन्होंने क्लिष्ट एवं

दुविज्ञेय भावों का सरलीकरण करने हेतु वैदर्भी का अनुसरण किया है। उनके भाष्यों में प्रायः प्रसाद व माधुर्य गुण तथा वैदर्भी एवं पाञ्चाली रीति का प्रयोग बहुशः प्राप्त है। कुछ एक उदाहरण नीचे उद्धृत किए गए हैं– 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते पर शाङ्करभाष्य इस प्रकार है– "अतो ये फलार्थिनः तान् फलप्रदानेन। ये यथोक्तकारिणः तु अफलार्थिनो मुमुक्षव च तान् ज्ञानप्रदानेन, ये ज्ञानिन........इत्यर्थः।[8] वही प्रायः लघु वाक्य रचना शंकर के समान वल्लभ को भी प्रिय है। जैसे– तत्र सन्देहः। कि ब्रह्म कतृ आहोस्विदकर्तृ। कि तावत् प्राप्तम्। अकर्तृ। कथम् ? ब्रह्मविदाप्नोति परं इति प्रधानवाक्यम्। फलसंबन्धात्। ऋचापि विवृतम् सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।[9] इत्यादि लघु वाक्यों द्वारा वल्लभ की भाष्य–पद्धति में लालित्य एवं प्रसाद गुण का समावेश हुआ है। इसके विपरीत समस्त पदता का भी इनके भाष्यों में अभाव नहीं है। जैसे– 'भूत–पृथिवीशरीरहृदयानि चत्वारि।" क्रियाज्ञानशक्तेयर्योभगवदीययो दें हे', 'बलभोजन–विसर्गादिषूपयोगात् इत्यादि। अनुप्रासादि शब्दालंकारों का प्रयोग एवं पद–लालित्य बल्लभ की भाष्यपद्धति की विशेषता रही है। यथा "अतो यथा–यथा कृतवांस्या–तथा स्वयमेवोक्तवान्। पूर्वरूपं फलरूपं च सृष्टस्वांश पुरुषार्थत्वाय।"[10] यहां यथा–यथा, तथा तथा एवं रूपं रूपं शब्द प्रयोग में लालित्य है तथा समानार्थ में पुनः उन्हीं शब्दों के कथन से अनुप्रास अलंकार है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वल्लभ की भाष्यपद्धति में कहीं–कहीं अस्पष्टता, वक्रता, अपूर्वता तथा अनिश्चयात्मकता होने पर भी सामान्य रूप से उसमें सरलता और स्पष्टता है। सूत्र व्याख्यान भी उन्होंने युक्ति युक्तता से किया है। इनकी भाष्य पद्धति मध्वाचार्य की अपेक्षा तो उत्कृष्ट है परन्तु शांकरभाष्यपद्धति का पर्याय वह नहीं बन पाई है।

आचार्य शंकर ने जहाँ ब्रहमसूत्रभाष्य में सर्वप्रथम अध्यास भाष्य लिखा पश्चात श्रुति एवं स्मृति प्रमाण का आश्रय लेते हुए अपने सिद्धांतों को अभिव्यक्त किया वहीं बल्लभाचार्य ने यद्यपि आरंभ में किसी भी प्रकार का अध्यास भाष्य नहीं लिखा तथापि श्रुति एवं स्मृति का अवलंबन उनके सिद्धांतों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। आचार्य शंकर के भाष्य पद्धति का अन्य वैशिष्टय यह है कि पूर्ण वेदान्ती होने के बाद भी उनके भाष्य मे साहित्यिक पक्ष का अवलंबन प्राप्त होता है। अलंकारों की छटा अद्भुत है जो देखते ही बनती है। उनके स्तोत्र रचनाओं में अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकार अत्यंत रमणीय रूप से प्रयुक्त हुए हैं। छन्द का भी प्रयोग अत्यंत सौंदर्यपूर्वक किया गया है। आचार्य शंकर का यह वैशिष्टय है कि उन्होंने न केवल दार्शनिक पक्ष को ही अभिव्यक्त किया अपितु व्याकरण दृष्ट्या तथा साहित्यिक रूप से कला एवं भाव पक्ष का भी मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा रचित भाष्य में ऐसे साहित्यिक पक्ष विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। साहित्यिक पक्ष में न केवल उन्होंने अलंकारों का ही प्रयोग किया है अपितु उनकी लेखन शैली वैदर्भी रीति के सदृश है जो की अत्यंत मनोहारी एवं सरस रूप से भावों को अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य रखती है। आचार्य शंकर की भाष्य पद्धति का अनुसंधान एवं अध्ययन करते हुए यह विदित होता है कि आचार्य शंकर न केवल प्रौढ़ दार्शनिक नहीं अपितु व्याकरण शास्त्र में भी उन्हें पूर्ण दक्षता प्राप्त थी और साथ ही साथ साहित्य के प्रसंग में वे सिद्धहस्त थे। दूसरी तरफ वल्लभाचार्य के भाष्य मैं दार्शनिक पक्ष विशेष रूप से प्रभावशाली है यद्यपि साहित्यिक पक्ष का भी यत्र तत्र प्रयोग दृष्टिगोचर होता है किंतु विशेष रूप से उनकी लेखन शैली में दार्शनिक पक्ष की अभिव्यक्ति प्राचुर्य रूप में है। वल्लभाचार्य के भाष्य पद्धति में एक विशेषता यह है कि वह श्रुति एवं स्मृति को यथावत स्वीकार करते हुए अपने सिद्धांत का पोषण करते हैं। वल्लभ का परमतत्व विरुद्धधर्माश्रयत्व है फलतः किसी भी प्रकार का विरोध भाव जो श्रुति एवं स्मृति वाक्य में प्राप्त हो रहा है उसका स्वत निराकरण हो जाता है।

इस प्रकार आचार्य शंकर एवं वल्लभ के भाष्य लेखन में समता के साथ–साथ किंचित् भिन्नता भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. देखें– ब्रहसूत्र १–१–२; १–१–३, १–१–४ के उपोद्घात भाष्य।
2. देखें ब्रह्मसूत्र अध्यास भाष्य , शांकर भाष्य
3. ऐतरेयोपनिषद् – १/१०
4. श्रीमद्भागवत सुबोधिनी टीका ३।५। ४२
5. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य १। ४।६
6. अणुभाष्य १।१।६
7. अणुभाष्य१।१। ११
8. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य १। ४। ६
9. अणुभाष्य १। ४। ६
10. वहीं १।४।६

⁂

भर्तृहरि के शतक और मनोचिकित्सा के सैद्धान्तिक सूत्र

डॉ. सच्चिदानन्द देव पाण्डेय*

उपनिषदों में कहा गया है कि– **"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।"[1]** अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। मन के उत्साह ,मन की ऊर्जा और मनोबल से ही मनुष्य जीवन–संघर्ष की कठिन चुनौतियों में विजय पाता है। लोक में कबीर की एक प्रसिद्ध कहावत है– **"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत/ कहैं कबीर हरि पाइये, मन ही की परतीति।।"[2]** योगीजन मन को आत्मा और स्थूल शरीर के बीच का संचालनसूत्र या लगाम की रस्सी मानते हैं। इस **शरीर रुपी रथ में स्थित आत्मा अगर रथी है तो बुद्धि सारथी है, इन्द्रियाँ रथ के घोड़े हैं और मन लगाम की रस्सी।**[3] प्राणशक्ति को मन का वाहन माना गया है। चंचलमन को ही निरुद्ध करने के लिए योगीजन प्राण को साधते हैं। अस्तु मन के कुशलसंचालन से ही शारीरिकसामर्थ्य और जीवनयात्रा को सार्थक किया जा सकता है यह निश्चित तौर पर माना जाता रहा है। यही मन जब रुग्ण हो जाय, हताशा–निराशा, भय और चिन्ता से ग्रस्त हो जाय तो इस मानसिक अस्वस्थता से मनुष्य का भौतिक और आध्यात्मिक दोनों जीवन असन्तुलित होने लगते हैं। इसलिए मन का प्रसन्न रखा जाना अच्छे स्वास्थ्य की एक बहुमूल्य शर्त है। चरक मुनि ने कहा है– **"प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।"[4]**

गीताकार ने कहा है– **"प्रसन्नचेतसः ह्याशुः बुद्धिः पर्यवतिष्ठति![5]** यानी कि प्रसन्नचेता व्यक्ति की बुद्धि हर परिस्थिति में स्थिर होती है। वर्तमान युग मन की इसी प्रसन्नता पर ग्रहण लगाने वाली जटिलतम परिस्थितियों का युग है। प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में पल रहे किशोर–युवा बहुत कम उम्र से ही चिन्ता, हताशा, निराशा, तनाव, अवसाद, असफलताबोध, और तुलनात्मक हीनताग्रन्थि के शिकार होते जा रहे हैं। वैचारिक उलझनों और अन्तर्द्वन्दों का तात्कालिक समाधान न पाने से उनमें आत्महत्या अथवा आपराधिक प्रवृत्तियाँ बढ़ती जाती हैं। पारिवारिक विश्रृंखलताओं के कारण बुजुर्गों का जीवन उपेक्षित, असहाय और पीड़ित होता जा रहा है। यांत्रिक विकास और आभासी मीडिया के सर्वसुलभ साधनों के मुक्त प्रयोग की आजादी ने जहाँ एक ओर इच्छित समाधान के अवसर बढ़ाये हैं वहीं दूसरी ओर अपने तीव्रसंचारी असर से मानसिक दुर्बलताओं को भी तेज गति से उभारने का काम किया है। इस सभ्यता संकट से निपटने के लिए मनोवैज्ञानिकों, काउन्सलरों और मोटीवेशनल गुरुओं की बहुत बड़ी संख्या भी समाज में सक्रिय हुई है।

मनोगतिकी सिद्धान्त के अनुसार– "मानव की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में क्षुब्धता होने से मानसिक विकृतियों की उत्पत्ति होती है।"[6] इस मनोविकृति ने असामान्य व्यवहार के बहुत सारे लक्षण उत्पन्न किये हैं जैसे– समाजविरोधी बर्ताव, मानसिक असंतुलन, अपर्याप्त समायोजन, सूझपूर्णव्यवहार की कमी, विघटित व्यक्तित्व, आत्मज्ञान या आत्मसम्मान की कमी, असुरक्षा की भावना, संवेगात्मक अपरिपक्वता, सामाजिक अनुकूलन की क्षमता का अभाव, तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता, पश्चाताप का अनुभव न होना इत्यादि।[7] इन सारे असामान्य व्यवहारों और मनोविकृतियों का परिणाम चार रुपो में दिखता है। जिसे 'कोमर' (comer–1995) ने 4 D के रुप में वर्गीकृत किया है– Deviation (विचलन), Distress (कष्ट या तकलीफ उठाना), Dysfunction (दुष्क्रिया, असंतुलित कार्यप्रणाली) और Danger (खतरा पैदा करना)।[8]

ये मानसरोग समाज में जब व्याप्त होते जाते हैं तो समाज का सुव्यवस्थित ढाँचा बिगड़ने लगता है। रुग्णमन व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक की प्रगति का सबसे बड़ा बाधक होता है। मानस रोगों की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ये बहुत सूक्ष्म होते हैं। जिनके पास होंते हैं, उसे अपने होने का अहसास नही होने देते। तुलसीदास ने मानसरोगों के सम्बन्ध में रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में विस्तार से समझाया है– "मानस रोग कछुक मैं गाए/ हहिं सबकै लखि विरलेहिं पाए।।"[9] मानसिक असामान्यता की परेशानियों के मूल में चिन्ता, अभाव, असफलता, अक्षमता, व्यावसायिक जीवन के तनाव, असामंजस्य, असहायताबोध, बाधाओं से टकराहट और भ्रष्टआचरण की परिस्थितियाँ हैं। ये व्यावहारिक दोष हैं। अतः ज्यादातर मनोविज्ञानियों ने इसका उपचार औषधियों के साथ साथ "व्यवहार चिकित्सा" ही माना है। जिसमें कोई कुशल काउंसलर–चिकित्सक अपने स्वयं के उदाहरणों से रोगी को साथ साथ अनुक्रिया कराता है और फिर समय के साथ धीरे धीरे उसके व्यवहारदोष का निवारण हो जाता है![10]

***असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राष्ट्रीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय जमुहाई, जौनपुर, उत्तर प्रदेश।**

आज के जटिल प्रतिस्पर्धा के युग में कुंठा और हताशा बोध से युवाओं में उपजे आत्महनन की प्रवृत्ति को समाप्त करने एवं संघर्षशील क्षमता को उभार कर मानसिक मजबूती देने वाले विचारों की आवश्यकता तेजी से बढ़ी है। विचार एक शक्तिशाली सूक्ष्म एनर्जी है, जो मानसिक स्तर पर औषधियों की तरह प्रभावशाली होती है। ऐसे व्यक्ति या ग्रन्थ जो युवाओं की प्रश्नाकुलता और द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति को एक स्वानुभूत और विश्वसनीय समाधान दे सकें, मन को स्वस्थ और स्वतःस्फूर्त कर सकें, आज के समय में बेहद उपयोगी हो सकते हैं। इसमें संदेह नही कि सबसे उत्तम समाधान वही दे सकता है, जो स्वयं कठिनाइयों भरे जीवन का भुक्तभोगी हो और उस राह पर चलकर सकुशल पार पहुँच आया हो। ऐसा पारंगतबुद्धि व्यक्ति अथवा उसका लिखा हुआ ग्रन्थ अपने निष्कर्षो से समाज के लिए दीपक का काम कर सकता है। जिनके प्रकाश में परिस्थितिजन्य दुखों निराशाओं ,पश्चातापों और उलझनों से उबरकर जीवन के प्रति नये सिरे से स्वीकारभाव, रुचि, उत्साह और जिजीविषा के साथ श्रेयमार्ग के प्रति नवीन संकल्प का उदय होने लगता है। आचार्य दण्डी ने ऐसे सहायकों की उपयोगिता स्वीकार करते हुए कहा है– **"आगम दीपदृष्टेन खल्वध्वना सुखेन वर्तते लोकयात्रा।"**[11] भारतीय संस्कृति के प्रणेता मनीषीगण इसे "ऋषिऋण" के रुप में ग्रहण करते हैं। और इससे उऋण होने का विधान भी बताते हैं– **"अपि चात्र यज्ञ क्रियाभिर्देवताः प्रीयन्ते। निवापनेन पितरो, विद्याभ्यास– श्रवण – धारणेन – ऋषयः। अपत्योत्पादनेन प्रजापतिरिति।।"**[12]

ऐसे ही लोकानुकरणीय, लोकप्रिय और समादृत ग्रन्थकार हैं– भर्तृहरि। उनके लिखे गये शतकत्रय तो व्यावहारिक समस्याओं के समाधानों की विश्वसनीय कुंजी हैं। इनमें मानवीय स्वभाव की हर दुर्बलता और प्रबलता के द्वारा उत्पन्न मनोव्यथाओं के सम्यक उपचार मिल जाते हैं। भर्तृहरि अपने आप में एक विविधतापूर्ण व्यक्तित्व के जीव थे। एक नीति कुशल गृहस्थ, वैभव ऐश्वर्य का भोग करने वाले राजा, असफल प्रेमी, एवं अन्त में तत्वद्रष्टा योगी होने के कारण जीवन के विविध पक्षों का प्रामाणिक अनुभव उनके पास था। इसलिए उनके विचारों और जीवनानुभवों का व्यापक निचोड़ आज के समय में भी व्यक्ति को व्यक्तिगत तनाव प्रबन्धन से लेकर सामाजिक अनुकूलन तक की मनोभूमि का निर्माण करने में अन्यतम उपयोगी हैं।

तेरहवी–चौदहवीं शताब्दी के इस विदग्ध कवि–मुनि की कलात्मक क्षमता का यह जीवन्त प्रमाण है कि आज भी इनकी सूक्तियाँ लोक परम्परा से लेकर विद्वद् परिषदों तक समान रुप से आदृत हैं। विद्यार्थियों के लिए नीति शतक, गृहस्थों के लिए श्रृंगार शतक और वानप्रस्थ संन्यासियों के लिए वैराग्य शतक विशेष रूप से उपादेय प्रतीत होता है।

भगवान बुद्ध ने कहा था कि– **संसार में दुख है और दुख के कारण हैं– अज्ञान, आसक्ति, इच्छाएँ (तृष्णा)।**[13] तृष्णा भटकाती है। आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं, किन्तु तृष्णा किसी की पूरी नही की जा सकती। भर्तृहरि ने इस विषय पर कई प्रकार से समझाने वाली बहुत सी बातें कही हैं। तृष्णाबस भोगो में लिप्त रहने वाले असंतुष्ट (अभाववादी), और प्रयत्नहीन दोनों ही बराबर दुखी रहते हैं। संसार की हर काम्यवस्तु अन्ततः भयदायिनी है। इसलिए सन्तुष्टि, वैराग्य और सन्यासवृत्ति ही अभिलाषाओं के चक्र में बँधे जीव को निर्भय एवं सुखी कर सकती है! भर्तृहरि कहते हैं–

"भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम् ।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।"[14]

अबाध भोग करते जाने में रोग का भय, कुल बढ़ाने में अलगाव का भय, धनवृद्धि में राजा का भय, मान–प्रतिष्ठा–गर्व में दीनता का भय, बल बढ़ाने मे शत्रु का, रूप में वृद्धावस्था का भय, शास्त्रज्ञान में वाद विवाद का, गुणों में दुष्टों का भय, शरीर को सजाने में मृत्यु का भय। इस तरह संसार की हर वस्तु में उसके नाश का भय व्याप्त है। सबसे निर्भय करने वाली कोई वस्तु अगर है तो वह है– वैराग्य अर्थात् संन्यासवृत्ति। निस्पृहता और सन्तुष्टि से सुख स्थायी होता है। सन्तुष्ट व्यक्ति वल्कल और रेशमीवस्त्र दोनो में समान सुख अनुभव करता है। क्योंकि तृष्णा की अधिकता ही दरिद्रता का कारण है। मन के सन्तुष्ट हो जाने पर भला कौन धनी और कौन निर्धन रह जायेगा!–

"वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वंदुकूलैः सम इह परितोषो निर्विशेषोविशेषः।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोर्थवान कोदरिद्रः।।"[15]

सबके सुख दुख के पैमाने अलग होते हैं इसलिए दूसरों देखकर तुलनावश दुखी होना बुद्धिमानी नही है। यह बात बाल्यावस्था से ही बच्चे के मन में प्रवेश करा देना चाहिए। वास्तविक सुख मन की सन्तुष्टि में है, और दुख तृष्णा की आपूर्ति के भटकाव भरे मार्ग में। अपने पुरुषार्थ से अर्जित सुख के साधनों में प्रसन्न और सन्तुष्ट रहना ही स्वाभिमानी जीवन की प्राथमिक शर्त है। स्वयं के प्रयत्नों से विद्या अर्जित

करना, धन कमाना, माता–पिता की सेवा करना, गृहस्थी बसाना, अपनी पत्नी का प्रेम पाना, यही सामान्य मानवजीवन की सुन्दरता है। जिन्होंने अपनी सामर्थ्य से यह सब नही पाया। वे कौवों की भाँति दूसरों के पिण्डदान पर जीवन काट देते है, और समाज में निन्दनीय होते हैं–

"विद्यानाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितम्
शुश्रूषापि समाहितेनमनसा पित्रोर्न सम्पादिता।
आलोलायतलोचनाः युवतयः स्वप्नेपिनालिंगिता
कालोयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेर्यते।।"[16]

जो अतृप्तमानस मनुष्य अपार धन–वैभव और नाना भोगों की कामनापूर्ति में सुख और शान्ति तलाशते हैं और इसके लिए उचित–अनुचित साधनों का विचार किये बिना धन कमाने की होड़ में लगे हुए है उन्हें यह याद रखना चाहिए कि सुख यहाँ भी नहीं, शान्ति इतने से भी न मिलेगी। पहले भी अनेक ऐसे राजा हुए हैं जिनके पास रहने को सुन्दर महल, सुनने को उत्तम संगीत, देखने को मनोहर रूप नृत्यांगनाएँ, अनवरत भोग के लिए सुस्वादु भोजन और अनिन्द्य सौन्दर्य सम्पन्न युवतियाँ प्राप्त थी। फिर भी वे शान्ति के लिए अन्त में वन को ही गये। समस्त ऐश्वर्य–वैभव को उन्होंने लालसाकुल मनपतंग की वेगवायु से चंचलछाया वाली दीपक की लौ समझा, जो उनकी आत्मा की शान्ति को जला डालने के लिए उन्हें आकर्षित करती है–

"रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकप्रीतये।
किं तद्भ्रान्तपतत्पतंगपवनव्यालोलदीपांकुर
च्छायाचंचलमाकल्य सकलं सन्तोवनान्तं गताः।।[17]

नाना सुविधाओं के ढेर को इकट्ठा करने के पीछे जो पागल हुए जा रहे हैं उन्हें उनकी असारता और अनित्यता का ज्ञान होना, उनकी साधनों के प्रति विह्वलता और आतुरता को कम कर सकता है। भीतरी अन्तिम तत्व को जान लेने पर उसके प्रति रहस्याकर्षण की तीव्रता, अधीरता और व्याकुलता का शमन हो जाता है। अतः संसार को देख के यह भली भाँति जान लेना चाहिए कि–

"आक्रान्तं मरणेन जन्म जरसाविद्युच्चलं यौवनम्
सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढ़ांगनाविभ्रमैः।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैः नृपाः दुर्जनैः
अस्थैर्येण विभूतयोप्युपहताः ग्रस्तं न किं केन वा।।[18]

मरण से जन्म आक्रान्त है, वृद्धावस्था से विद्युत की भाँति अस्थिर है यौवन, और धनलिप्सा से सन्तोष असन्तुलित है। मन की शान्ति को तरुणियों के पुष्ट यौवनाकर्षण से टूटने का खतरा है, गुणों को ईर्ष्यालुओं से, वन मार्ग सर्पों के द्वारा और राजा दुर्जनों से आक्रान्त हैं। विभूतियाँ, सम्पत्तियाँ और ऐश्वर्य अनित्यता के दुख से ग्रस्त हैं। संसार की सब श्रेष्ठ और उत्तम वस्तुएँ किसी न किसी खतरे से भरी हैं। इसका नित्य चिंतन वैराग्य और शान्ति को सुदृढ़ करने वाला है। गीता में भी कहा गया है–

"इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुखदोषानुदर्शनम्।।"[19]

अक्सर संवेदनशील लोग दूसरों की आलोचना या दुर्व्यवहार से इतनी जल्दी आहत होकर उदास हो जाते हैं कि वे अपने को शून्य मानकर भविष्य की सारी सुन्दर संभावनाओं से विमुख होने लगते हैं। ऐसे में अपनी मूल प्रतिभा पर विश्वास करके उन्हे सबसे अप्रभावित रहकर अपनी जीवनीशक्ति का संवर्धन करने पर ध्यान देना चाहिए। जिसकी रक्षा से बुद्धि को नये सम्बल प्राप्त हो सकते हैं। भर्तृहरि ने कितने आत्म विश्वास से कहा है–– कि विधाता अगर कुपित हो जाय तो हंस का विहारस्थल नष्ट करके उसका कमलिनी के वन का स्वतंत्र विलास रोक सकता है। लेकिन उसके नीर–क्षीर विवेक की शक्ति को नष्ट नही कर सकता। वैसे ही किसी विद्वान पर क्रुद्ध होकर राजा उसकी सुख–सुविधा–सम्पत्ति और अधिकार छीन सकता है किन्तु वह उसके गुण–विद्या और कीर्ति को नष्ट नही कर सकता! अतः आत्मबल को क्षीण न करते हुए स्वयं की प्रतिभा के विकास पर ध्यान देना चाहिए–

"अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव, हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धाम, वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः।।"[20]

मनुष्य जीवन के श्रेष्ठतम लक्ष्य अनायास नही प्राप्त होते। वे साधनालभ्य होते हैं। एक सत्वसम्पन्न मनुष्य में अपने प्राप्तव्य को कठोर प्रयत्नों से प्राप्त करने की क्षमता होती है। विघ्नों का भय त्यागकर अपनी प्राणशक्ति के बल पर उत्तम प्रयत्न करने वाला व्यक्ति अवश्य ही सफलता प्राप्त करता है। विघ्नों के भय से डरकर कार्य को प्रारम्भ ही न करना अच्छे व्यक्ति की निशानी नही है।

"प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,प्रारभ्यविघ्नविहताः विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपिप्रतिहन्यमाना, प्रारभ्यचोत्तम जनाः न परित्यजन्ति।।"[21]

मानसिक शान्ति और समाधान के इच्छुक व्यक्ति को आप्तपुरुषों और अनुभवी मार्गदर्शकों की हितकारी बातों को निष्ठा से सुनने का धैर्य होना चाहिए। किन्तु दुर्बल मन की चंचलता और सफलता के संदेह से व्याकुल उनके चित्त की अस्थिरता उन्हें ऐसा करने नही देती। भर्तृहरि कहते हैं कि विद्वान परस्पर ईर्ष्या से ग्रस्त हैं। शासक और शक्ति सम्पन्न लोगों का चित्त अहंकार ने दूषित कर रखा है। और अन्य सामान्यजन अबोध और अज्ञानता से हर लिये गये चित्त के कारण मरे हुए हैं। इसलिए अब सुभाषितों, सुन्दरबातों और उपदेशों की उपयोगिता नष्ट होती जा रही है–

"बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम्।।"[22]

आत्मसमीक्षा और आत्मपरिष्कार का गुण व्यक्ति को निरंतर आत्मनिर्भरता की ओर ले जाता है। सुख और दुख की असारता को समझने वाले पराक्रमी पुरुषार्थी अपने जीवन में असफलताबोध से ग्रस्त नही होते। मान–अपमान और परमुखापेक्षिता को त्यागकर अपने संकल्प को सुदृढ़ करना ही सब सफलताओं का प्रस्थान बिन्दु है। प्रसाद जी ने कामायनी में स्वयं की संकल्प शक्ति के समन्वय को मानवता के विजयिनी होने का एक मनोवैज्ञानिक मार्ग माना है–

"शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त, विकल बिखरे हों हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।।"[23]

संयम, आत्मानुशासन और आवश्यकता से अधिक सुविधाओं, संसाधनो को इकट्ठा न करने के अपरिग्रह इत्यादि गुण सामान्य मनुष्य के जीवन को दुख की चपेट में जाने से बचाने वाले गुण हैं। प्रकृति ने जैसे अन्य जीवों के लिए अन्न, फल–मूल, वनस्पतियाँ और जल के भंडार प्रदान किये हैं, वैसे ही मनुष्य के लिए भी। किन्तु मनुष्य इतने से सन्तुष्ट न होकर अपनी तृष्णा, महत्वाकांक्षा और सुविधालोलुपता को इतना बेतहाशा बढ़ा डाला है कि उसका जीवन एक प्रकार से प्रकृति से दूर बिल्कुल कृत्रिम होता जा रहा है और सब सुविधाओं के होते हुए भी वह अभावग्रस्त महसूस करता और दुखी हुआ करता है।

"फलमलमशनाय स्वादुपानाय तोयं, शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च।
नवधनमधुपानभ्रान्तालसेन्द्रियाणामविनयमनुगन्तं नोत्सहे दुर्जनानाम्।।[24]

फल–मूल–जल खा–पीकर धरती के पृष्ठ पर शयन करके, वल्कल का वस्त्र धारण करके स्वतन्त्र जीवन आनन्द से बिता लेना आसान है। परन्तु नये धान्य मधु आदि के सेवन के लोभ में शरीर इन्द्रियों को आलस्य से भर लेना और इन सब सुविधाओं के लिए दुर्जनों की गुलामी और उद्दण्ड–अप्रिय बातें सहना स्वीकार नही होना चाहिए। अबाध भोगों में लिप्त रहकर इन्द्रियों के अतिचार से शरीर को रोगग्रस्त बना लेने एवं विवशतापूर्वक इन्द्रियों की गति रोककर भी मन की लोलुपता से मानसिक पीड़ा भोगने की अपेक्षा मन–बुद्धि को विवेक के अनुशासन में रखकर व्यक्ति अपनी दृढ़ता से स्वयं विषयों के अतिचार को त्यागदेने वाला अनन्त सुख प्राप्त करता है।

"ब्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः।
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति।।"[25]

भर्तृहरि कहते हैं कि आफिस के 'बॉस कल्चर' में इमानदारी से कार्य करने वाले, स्वाभिमान के कारण प्रशंसादि कार्य न करने वाले अपने स्वामी के प्रिय नही हो पाते। जबकि चापलूसी करने वाले, झूठी प्रशंसा करने वाले, अय्याश, परनिन्दक और सत्ता को अनैतिक फायदा पहुँचाने वाले ही हमेशा दरबार में सत्ता से नजदीकी बनाने में सफल रहे हैं। किन्तु यह जानते हुए भी हमें अपनी भर्त्सना नहीं करनी चाहिए। बल्कि अपने आत्मगौरव को ही पोषण देकर उभारना चाहिए। दूसरों की खुशामद का फल स्थायी नहीं होता। इसलिए क्यों न हम अपनी आत्मा को उन्नत बनाने वाले कर्म करें जिससे शान्ति मिले। अपने अन्तःकरण की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करें। यही प्रसन्नता असली चिन्तामणि है जो सारे मानसिक क्लेश दूरकर देगी–

"न विटा न नटा न गायकाः न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः।
नृपसद्मनि नाम के वयं कुचभारोन्नमिता न योषिताः।।."[26]

"परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयं क्लेशकलिलम्।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणे
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते।।"[27]

संसार में जितने मानसिक उपचार हैं। उनमे प्रसन्नता[28], निद्रा, सद्विचारों की संगति और निश्चिंतता के उपायों को ही सर्वाधिक प्रशस्त माना गया है। तनाव रहित करने और निद्रा लाने के लिए मनोचिकित्सक औषधियों का भी सहारा लेते हैं। नींद से तात्कालिक निश्चिंतता आती है। प्रसन्नतापूर्वक मेहनत करने और

उसके सार्थक परिणाम पाने से चिंता और तनाव मिटते हैं। आत्मनिर्भरता और सन्तुष्टि से असन्तोषजन्य दबाव कम होता है।

वैचारिक स्तर पर अहं के विसर्जन से ही मनोरोगों के उपचार की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि तैयार होती है। इसी का सांस्कृतिक रूप संन्यास या वैराग्यवृत्ति है। अपनी हीनता अथवा उच्चता की तुलनात्मक ग्रन्थियों से मुक्त, साधारणीकृत मनोदशा में अहंरहित व्यक्ति सहज प्रसन्न और तनाव रहित रह सकता है। उद्यम से अभाव को मिटाकर, सन्तोषवृत्ति से तृष्णा को शान्त कर, विवेक के जागरण से और जीवन की सम विषम स्थितियों के विश्लेषण–बुद्धि के द्वारा आत्महीनता को नष्ट कर अपरिग्रही भावना से मनोरोगों को दूर कर प्रकृत, सहज और प्रसन्न जीवन जिया जा सकता है। दर्शन और योग इसे देहाभिमानमुक्त (अहंरहित) अवस्था कहते हैं। **आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस मानसिक उपचार के लिए काउंसिलिंग की आवश्यकता बताते हैं।**[29] नीतिकार आचार्य इसे सामंजस्यपूर्ण, संयमित और आत्मानुशासित बुद्धि की उपलब्धि के रुप में देखते हैं। भर्तृहरि के शतकों में इस प्रकार की बहुमूल्य अनुभवप्रसूत सूक्तियाँ भरी पड़ी है जो आधुनिक सामाजिक जटिलताओं से उत्पन्न मानसिक अवसादों, हताशाओं, कुण्ठाओं, तनाव, और चिन्ता जैसी मनोव्याधियों का शमन कर व्यक्तित्व में संतुलन स्थापितकरने योग्य उपचार प्रदान कर सकती हैं। मानसिक रुग्णता को मिटाकर दक्षता बढ़ाने में काउंसिलिंग सहायक साधन की तरह उपयोग में लायी जा सकती है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. ब्रह्मबिन्दूपनिषत्– छन्द –०2।
2. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दर दास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2013, पृष्ठ–194,
3. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। –(कठोपनिषद– अध्याय–1, वल्ली–3, मन्त्र –3)
4. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय–15, श्लोक–48, प्रकाशक–चौखम्भा संस्कृत सीरीज बनारस, संस्करण–1954, पृष्ठ–64।
5. गीता, अध्याय–02, छन्द–65।
6. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अरुणकुमार सिंह––प्रकाशक–मोतीलाल बनारसी दास चौक वाराणसी ,संस्करण 2010, पृष्ठ–77।
7. वही, पृष्ठ–15–17।
8. वही पृष्ठ–15।
9. सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा।।14।। मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।। काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।15।। प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।। बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।16।। ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई।। पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।17।। अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।। तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी।।18।। जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।19।। एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि। पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।।121क।। एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति बियोगी।। मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि बिरलेन्ह पाए।।1।। (राम चरित मानस, उत्तरकाण्ड , दोहा संख्या–120 से 121–कृ तुलसीदास)
10. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अरुणकुमार सिंह, पृष्ठ –231।
11. दशकुमार चरितम, उत्तर पीठिका(अष्टमोच्छवास)––––महाकवि दण्डी।
12. महाभारत शान्ति पर्व– (19/01/13)।
13. बौद्ध दर्शन, चार आर्य सत्य, धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र।
14. भर्तृहरि, वैराग्य शतकदृछन्द 33, प्रेमकुमार शर्मा, धीरज पाकेटबुक्स 355 गाँधी मार्ग, मेरठ।
15. वैराग्य शतकदृछन्द–47।
16. वहीं, छन्द–45।
17. वहीं, छन्द–62।
18. वहीं– छन्द–98।
19. गीता, अध्याय–13, श्लोक–09।
20. नीति शतक, (भर्तृहरि) छन्द–18।
21. वहीं, छन्द– 27।
22. वैराग्य शतक, छन्द –02।
23. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्रद्धा सर्ग।
24. वैराग्य शतक, छन्द–21।
25. वहीं, छन्द–16।
26. वहीं, छन्द–26।
27. वहीं ,छन्द –32।
28. "प्रसादे सर्व दुःखानाम् हानिरस्योपजायते।".. गीता–अध्याय–2/छन्द –65।
29. M.Scott Peck---Counseling is a specific mental health discipline that includes aspects of guidance and psychotherapy (Erford, 2018). It focuses on a wellness model aimed at improving the quality of life and involves both the counselor and client in collaboration…(https://positivepsychology.com/why-counseling-is-important/

&★&

योगमार्ग का प्रथम द्वार अहिंसा : एक मीमांसा

डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय *

आध्यात्मिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग एक अनिवार्य साधन है। योगसूत्र के प्रतिष्ठापक आचार्य,महर्षि पतञ्जलि अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'योगसूत्र' में योग के आठ अंगों का उल्लेख करते हुए सूत्र देते हैं... "यमनियमौसनप्रणायामप्रत्याहारधरणाध्यानसमाधयौष्टावङ्गानि।"[1] अर्थात् यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि रूप आठ (योग के) अंग हैं। यम–नियम–आसन–प्राणायाम और प्रत्याहार ; ये पाँच, योग के बहिरंग हैं तथा धारणा, ध्यान और समाधि, ये तीन..योग के अंतरंग हैं। यहाँ पर यह सुस्पष्ट है कि योग की आठ सीढ़ियों में प्रथम सीढ़ी यम है। आचार्य पतञ्जलि यम के विषय में सूत्र देते हैं..."अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।"[2] अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यही पाँचों यम हैं। योग के प्रथम अंग यम पर सम्यक् विचारोपरान्त यह ज्ञात होता है कि अहिंसा ही योग रूपी महल का मुख्य द्वार है जिसके माध्यम से हम वहाँ प्रवेश पाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि अहिंसा क्या है तब योगसूत्र के भाष्यकार महर्षि व्यास उत्तर देते हैं कि "तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।"[3] अर्थात् समस्त प्राणियों से सब समय और सब प्रकार से द्रोह न रखना/न करना अहिंसा है। द्रोह न रखना अहिंसा है अर्थात् द्रोह रखना हिंसा है। बहुत ही सूक्ष्म विचार है कि जब द्रोह भर रखना हिंसा है जोकि किसी दूसरे के लिए हम अपने 'मन' में रखते हैं तब किसी को मारना और काट डालना या फिर काटकर/कटवाकर खा जाना... इसे क्या कहा जाएगा ? निश्चित ही यह हिंसा की चरम स्थिति होगी या 'महती हिंसा' कह सकते हैं इसे !

पुनः प्रश्न उठता है कि यह अहिंसा जो योग का प्रारम्भ है वह हमारे जीवन में किस प्रकार उतरे ? वर्तमान के भौतिक चाकचिक्य में जब कामनाओं की अंधी दौड़ हो रही है; ऐसे में अहिंसा के मूल स्वरूप को समझते हुए उसे व्यवहार में उतारने के लिए हमें अत्यन्त सूक्ष्म तरीकों की खोज करनी होगी। ऐसे समय में जब किसी दूसरे के द्वारा किसी न किसी रूप में हम स्वयं निरन्तर पीड़ित हो रहे हों; हमें अहिंसा को अपने अंतःकरण में उतारना होगा! यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है लेकिन हमें ऐसा करना ही होगा क्योंकि अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो योग में हमारा स्वयं का प्रवेश असंभव होगा। अतः योग में प्रवेश के लिए अहिंसा हमारे लिए जरूरी भी है और हमारी मजबूरी भी है।

यह तथ्य और सत्य है बिना योगमार्ग पर आरुढ़ हुए हमें न सच्ची शान्ति मिल सकती है और न ही प्रसन्नता! तब ऐसी स्थिति में योग के प्रथम द्वार अहिंसा को अपने जीवन में उतारना ही होगा। यह ध्यान में रखने योग्य तथ्य है कि अहिंसा में स्थित होकर हम दूसरों का भला नहीं कर रहे हैं प्रत्युत अपना ही भला कर रहे हैं और इसीलिये हमारे संत–महात्मा कहते आये हैं कि "सबके भला में ही अपना भला है।" गहन विचार करने पर ही यह पता चल सकेगा कि इस छोटी सी कहावत में कितना बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य छिपा है। योगसूत्र के भाष्यकार महर्षि व्यास के अनुसार प्राणिमात्र से "सर्वतोभावेन् सार्वकालिक अविरोध" ही अहिंसा है। अर्थात् मन, वचन और कर्म से हमें किसी का अमंगल नहीं चाहना है। यह बहुत ही मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जब हम किसी का अमंगल चाहते हैं तो वह अमंगलभाव सर्वप्रथम हमारे हृदय में आता है और हमारा अपना ही हृदय कलुषित हो जाता है। कलुषित हृदय को न सुख है और न ही शान्ति ! जिसका हृदय बेचैन है उसे भौतिक वस्तुएँ तो शान्ति दे ही नहीं सकतीं; साथ ही शास्त्र भी उसे समझ में नहीं आयेंगे। पवित्र हृदय में ही शास्त्रों के प्रति श्रद्धा का आविर्भाव हो सकता है। संभव है कि कोई हिंसक व्यक्ति शास्त्रों का ज्ञाता हो जाये परन्तु शास्त्रवचन सिर्फ़ उसकी जिह्वा पर ही रहेंगे। शास्त्र न तो उसका ही मंगल करेंगे और न ही उस व्यक्ति को सुनने वाले का ही भला हो सकेगा क्योंकि उस व्यक्ति की बात उसके श्रोता के हृदय तक नहीं पहुँचेगी। हृदय से निकली बात ही हृदय तक प्रवेश पाती है, बाकी सब ऊपर ही ऊपर उड़ जाती

*** सहायक प्राध्याप,संस्कृत विभाग, आर०डी० एण्ड डी०जे० कॉलेज, मुंगेर विश्वविद्यालय मुंगेर, बिहार।**

है। संभव है वह बहुत विशिष्ट वक्ता हो जाये लेकिन वह केवल और केवल "शब्दों का इन्जीनियर" मात्र ही हो सकेगा।

आज हमारे समाज में अत्यन्त विरोधाभास व्याप्त है।यह देखकर दुःखद आश्चर्य होता है कि अपनी तुच्छ स्वादेन्द्रिय की सम्पूर्ति के लिए निरीह प्राणियों की हत्या करने अथवा करवाने वाले लोग भी योग करते हैं तथा योग पर बोलते हैं। वस्तुतः ऐसे लोग "महाहिंसक" हैं। योग का प्रथम द्वार अहिंसा है और यह द्वार उनके लिए कभी नहीं खुलता फलतः सच्ची शान्ति और आनन्द से उनका कोई सम्बन्ध नहीं हो पता है। मृत्यु के उपरान्त वे अपने द्वारा की गयी हिंसा से उत्पन्न पापों के समुद्र में डूबते–उतराते रहते हैं। किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से दुःख देने वाले ,दिलाने वाले अथवा उसका अनुमोदन करने वाले लोग न तो अपने जीवन के रहते शान्त हो पाते हैं और न हि जीवन के बाद ही ! आज के समाज में ऐसे ही लोगों की बहुलता है।

महाभारत में कहा गया है कि "अहिंसा परमो धर्मः"[4] अर्थात् अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है। अहिंसा एक ओर योग का द्वार है तो वहीं दूसरी ओर धर्म का भी शिखर है। हिंसक व्यक्ति अधार्मिक होता है। धार्मिक होने के लिए अहिंसक होना आवश्यक है। दुनिया के समस्त धर्मों के लोगों को अपने आप को इस पैमाने पर ही मापना चाहिए तभी उन्हें ज्ञात हो सकेगा कि वे धर्म के रक्षक हैं अथवा भक्षक! आज सभी लोग अपने ही धर्म को श्रेष्ठ बताते हैं साथ ही दूसरे के धर्म को हेय बताते हैं। वस्तुतः ऐसा कहने वाले लोग भी हिंसक ही हैं, क्योंकि ऐसा कहने से अगले व्यक्ति को पीड़ा और जलन होती है। दुनिया भर के तथाकथित धार्मिक इतना नहीं समझ पा रहे हैं कि स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरे को नीच बताकर वे हिंसा कर रहे हैं। अपने धर्म का विस्तार करने के लिए दूसरे के धर्म को छुड़वाकर प्रलोभन देकर उसे अपने 'गैंग' में सम्मिलित करके वे हिंसा कर रहे हैं। अपने धर्म के विस्तार के लिए दूसरे देश में आग लगाकर वे भयानक हिंसा कर रहे हैं। इस तरह से वे धार्मिक हो ही कैसे सकते हैं? वे तो घोर अधार्मिक हैं। धर्म का मर्म समझने वाला यह कार्य कैसे कर सकता है?

धर्म तो एक ही है और उसका नाम है अहिंसा ! पूजा पद्धतियाँ भिन्न–भिन्न हो सकती हैं। अपने इष्ट तक पहुँचने के मार्ग भिन्न–भिन्न हो सकते हैं...मान्यताएँ भिन्न हो सकती हैं परन्तु धर्म सिर्फ़ अहिंसा ही है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है–

परम धरम श्रुतिविदित अहिंसा। पर निन्दा सम अघ न गरीसा।।[5]

अहिंसा को जीने वाले लोग अन्य प्राणियों को भी जीने देते हैं। अकारण किसी के प्राण नहीं हरते और न ही किसी तरह से किसी को भी कष्ट पहुँचाते हैं। झूठ बोलकर किसी को धोखा देना अथवा दिये हुए वचन का पालन न करना भी हिंसा है। अपने सुख के लिए किसी के सुख को कर–बल या छल से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छीनना भी हिंसा ही है जोकि घोर अधर्म भी है। विहित कर्त्तव्य के अपालन से भी हिंसा होती है। एक अध्यापक यदि समय से कक्षा में जाकर पूरी क्षमता से अध्यापनकार्य नहीं करता तो वह हिंसक है। अनैतिक होना भी घोर हिंसक होना होता है। दुर्वचन और गाली देना भी हिंसा ही है।

अब विचारणीय है कि अहिंसा को धारण कैसे किया जाय! किस तरह आज के विपरीत समय में अहिंसा को व्यावहारिक धरातल पर उतारा जाये। इस पर विचार करने पर यह समझ में आता है कि सर्वप्रथम हमारे द्वारा अपने विहित कर्त्तव्यों का सम्यक् पालन सुनिश्चित किया जाये। समाज के सभी तबके के लोग अपने कर्त्तव्यों को सम्पादित करें। हम अकारण किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट न दें।यदि असावधानी के कारण मन में किसी के प्रति प्रतिकूल भाव आ जाये तो उसे वचन या कर्म से नहीं प्रकट करना चाहिए।गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि कलियुग का एक विशिष्ट प्रताप भी है... इसमें हमारे मानसिक पापों की गणना नहीं की जाती है।[6] कारण उपस्थित होने पर भी यदि संभव हो तो हिंसा से बचा जाये लेकिन यदि अगला व्यक्ति यदि घोर अधर्म पर उतर आये तो उससे निपटना भी अहिंसा ही है। क्योंकि वह अधार्मिक बहुत लोगों को कष्ट पहुँचाता आया होगा और आगे भी पहुँचायेगा। अतः उसको यथासंभव प्रत्युत्तर अवश्य देना चाहिए। अन्य प्राणियों को काटकर अथवा कटवाकर खाने वाले लोगों को यह समझना

चाहिए कि उनकी स्वादेन्द्रिय की तृप्ति से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सम्बन्धित प्राणी का जीवन है। किसी के मांस को खाना बहुत पापपूर्ण है। शास्त्र इसका सर्वथा निषेध करते हैं। इसके दण्डस्वरूप मांसाहारी को कभी सच्चा सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। आज तो वैज्ञानिक भी मांसाहार को स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल बताने लगे हैं अतः ऐसा करने से उसकी शारीरिक हानि ही होगी। मांसाहारी व्यक्ति प्राणी का मांस खाता है और मांसाहार, मांसाहारी का तन,मन,धन और धर्म खाता है। वस्तुतः सबसे बड़ा पाप हिंसा ही है। इसी पाप के कारण हमारा हृदय जलता है। अतः इससे बचना चाहिए और शास्त्र के द्वारा विहित भक्ष्य पदार्थों को ही ग्रहण करना चाहिए। छान्दोग्योपनिषद में आया कि आहार शुद्ध होने पर ही चित्त की शुद्धि होती है।[7] शुद्ध–सात्विक आहार लेकर हम अपने पर ही उपकार करते हैं न कि किसी अन्य जीव पर! ऐसा नहीं है कि सारे शाकाहारी अहिंसक हैं; वे भी अन्य प्रकार की हिंसा करते हैं जिसके कारण वे अतृप्त और अशान्त रहते हैं। आज के समय में शाकाहारियों का आहार भी पूर्णरूप से शुद्ध नहीं है। ज्ञाताज्ञातरूप से उसमें कुछ न कुछ हिंसा का तत्त्व रहता ही है। अतः संत और शास्त्र कहते हैं कि हम सभी को अपने पापों के शमन के लिए यथासंभव और यथाशक्ति विश्वरूपनारायण की निश्कामभाव से निरहंकार होकर सेवा करनी चाहिए।

अहिंसात्मक वृत्ति की सुदृढ़ता के लिए विवेक का होना भी परम आवश्यक होता है। विवेक सुदृढ़ होने पर ही हम तथ्य को समझ पाते हैं कि इस सृष्टि पर सभी प्राणियों का समान अधिकार है। यहाँ सबको रहने,खाने का अधिकार है। प्रकृति उतना ही उत्पन्न करती है जितना कि उसके सभी प्राणियों के लिए पर्याप्त होता है परन्तु मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो लोभ और मोह के चलते अपनी आवश्यकता से अधिक पर अधिकार जमाता है। यह अन्य प्राणियों के साथ हिंसा है। मनुष्य, मनुष्य का भी अधिकार छीनता है तब यहाँ भी हिंसा ही होती है। मनुष्यों में कुछ निकृष्टतम् श्रेणी के लोग भी होते हैं जो दूसरों को कष्ट देने के लिए जानबूझकर स्वयं को ही कष्ट दे लेते हैं ताकि अगला व्यक्ति पीड़ित हो। यह घोर अधर्म है। हमें इससे बचना चाहिए। वस्तुतः हमें अपनी उचित आवश्यकता भर वस्तुएं ही उपयोग में लाना चाहिए क्योंकि शेष पर हमारा अधिकार ही नहीं है ।ऐसा करने पर ही हम अहिंसक रह पायेंगे अन्यथा जाने–अनजाने हमसे हिंसा हो जायेगी। हमें अपने आहार–विहार और व्यवहार में यह देखना चाहिये कि कहीं हम अनजाने में भी किसी प्राणी को कष्ट तो नहीं पहुँचा रहे हैं। अपने व्यवहारकाल में इसके लिए पूरी तरह से सावधान रहना चाहिए कि कहीं कोई छोटा जीव हमारे पैरों तले न आ जाये। मच्छर, मक्खी एवं चींटियों के प्रति भी जहाँ तक बन पड़े सुरक्षात्मक भाव ही अपनाया जाना चाहिए। हमें अपनी सुरक्षा तो करनी है लेकिन उनकी हत्या नहीं करनी है। उनकी हत्या के लिए कैमिकल से युक्त पदार्थों के प्रयोग से सर्वथा बचना चाहिए। अपनी सुरक्षा करते समय यदि अनजाने में उन प्राणियों के प्राण चले जाते हैं तो हृदय से पश्चाताप करना चाहिए। महाभारत में अहिंसा को गृहस्थ का उत्तम धर्म बताया गया है–

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्। शमो दानं यथाशक्तिःगार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः।।[8]

यह ध्यातव्य है कि अहिंसावृत्ति साधन है परन्तु धर्म का प्रधान लक्षण होने के कारण वह साध्य भी है। मनुस्मृति में अहिंसा को सामासिक धर्म के अन्तर्गत रखा गया है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। तं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्यैब्रवीन्मनुः।।[9]

चूँकि सामान्य मनुष्य होने के कारण हम अपने परिचितों से प्रायः या तो राग करते हैं या फिर द्वेष। उदासीनवृत्ति जीवन्मुक्त महात्माओं की है। यदि हमारे अन्दर अहिंसा उतर जायेगी तो निश्चित ही हम किसी से द्वेष नहीं कर सकेंगे और प्राणिमात्र के शुभचिंतक हो जायेंगे। अहिंसावृत्ति हमारे अन्दर अस्तित्वमात्र के प्रति प्रेमभाव पैदा कर देगी और हम अजातशत्रु बन जायेंगे। फलस्वरूप हमारे अन्दर स्थित लोभ और मोह की दीवारें भी दरकने लगेंगी। इससे हमारा ही परममंगल फलीभूत होगा और योगमार्ग हमारे लिए खुल जायेगा। हमारे इष्ट प्रसन्न होकर हमारे सहायक बन जायेंगे। वस्तुतः परमात्मा अहिंसावृत्ति से ही प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे अस्तित्व रूप होते हैं। स्वामी करपात्री जी महाराज कहा करते थे कि यदि हम किसी को एक हाथ से माला पहनायें और दूसरे हाथ से उसके आँखों में सुई चुभोयें तो क्या हमसे वह कभी प्रसन्न हो सकेगा ? इसी तरह एक ओर हम भगवान् की पूजा करें और दूसरी ओर उन्हीं विश्वरूप भगवान् के

अंशस्वरूप किसी जीव को कष्ट दें तो वे प्रभु हमसे कभी प्रसन्न नहीं हो सकते। श्रीमद्भागवत महापुराण में आता है कि प्रह्लादजी मोक्ष के बदले जीवमात्र की सेवा के महत्त्व पर अधिक बल देते हैं..

प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामा, मौनं चरन्ति विजने न परार्थ निष्ठा।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुक्ष एको, नान्यं त्वदन्य शरणं भ्रमततोनुपश्ये।।[10]

महर्षि पतंजलि योगसूत्र के साधनपाद में सूत्र देते हैं– "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।"[11]

अर्थात् अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाने पर साधक के अन्दर प्राणिमात्र के प्रति वैर अर्थात् शत्रुभाव का अन्त हो जाता है। वह सबका मंगल चाहता है। किसी से द्वेष नहीं करता। अहिंसा के साधक को प्रतिपल सावधान रहने की आवश्यकता होती है। उसे अपने अंतःकरण और बाह्यकरण दोनों पर समानदृष्टि रखनी होती है। वस्तुतः अहिंसा एक वृत्ति के रूप में अन्दर होनी चाहिए। हमारा 'जीवन–स्वभाव' अहिंसक होना चाहिए। हिंसा हमारी सोच में नहीं आनी चाहिए। जीवन जीने और खुश रहने का जितना अधिकार हमें है उतना ही अधिकार इस सृष्टि के हर प्राणी को भी है। किसी भी प्राणी के अधिकार कुदृष्टि रखना हिंसा है। हमें इससे बचना चाहिए। हमारे मन में भी यदि किसी के प्रति अशुभभाव आ गये अथवा बाहर से यदि किसी का अशुभ हो गया तो इससे हमारी अहिंसावृत्ति का नाश हो जाता है। साधना के पथिकों के अंदर यदि किसी के प्रति द्वेष आ गया तो साधक अपने स्थान से च्युत हो जाता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक जो भी साधक योगाध्यात्मपथ पर आरूढ़ हुए हैं वे सभी अहिंसावृत्ति को धारण करने वाले ही रहे हैं अतः अहिंसा का त्याग करके योगधर्म की कल्पना सर्वथा असत् है। नीतिशास्त्रों में भी अहिंसा की महिमा का गायन किया गया है..

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिर्वरं न च परधनास्वादनसुखम्।।[12]

भगवान् श्रीकृष्ण महाराज जी ने भी अहिंसा को एक दैवी सम्पदा बताया है–

अहिंसा सत्यमक्रोधोस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।[13]

महाभारत में आया है कि जो हमारे लिए युक्तियुक्त न हो वैसा व्यवहार हमें दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए– 'न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः'[14]

वेद के ऋषि अहिंसा वृत्ति का समर्थन करते हुए कहते हैं कि हे संसार के संहारक परमात्मन् !(रुद्र) तुम हमारे पुत्र पौत्रादि को और हमारे जीवन को हानि न पहुँचाओ।तुम हमारी गायों को और घोड़ों को हानि न पहुँचाओ। तुम हमारे उत्साही वीरों को मत मारो।हवि से युक्त हम सदा तुम्हें पुकारते हैं३.

मा नस्तोके तनये मा ना आयुषि, मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधिः हविष्मन्तः त्वा हवामहे।।[15]

आज अत्यन्त खेद का विषय है कि लोग योग की प्रथम सीढ़ी यम और यम की भी प्रथम सीढ़ी अहिंसा की उपेक्षा करके सीधे आसन और प्राणायाम करने लगते हैं। वस्तुतः उनका आसन–प्राणायाम एक शारीरिक व्यायाम मात्र ही होता है। संभव है कि वे इस क्रिया से तात्कालिक शारीरिक स्वास्थ्य तो प्राप्त कर लें परन्तु मानसिक शान्ति तो कभी भी नहीं प्राप्त कर सकते क्योंकि यम–नियम की सिद्धि के बिना आसन और प्राणायाम कभी सिद्ध ही नहीं हो सकते। अष्टांगयोग की क्रमशः सिद्धि के पश्चात् साधक पूर्णतया योगारूढ़ होता है। यह अत्यन्त हास्यास्पद है कि आज अधिकांश लोग यम–नियम को जानते तक भी नहीं और बात ध्यान और समाधि की करते हैं। कुछ लोग अपने ध्यान के सिद्ध होने की भी बात करते हैं। कैसी विचित्र बात है कि आज दुनियाभर के अधिकांश लोग बकरे और मुर्गे जैसे प्राणियों के प्राण लेकर उनके अस्थिपंजर तक को भी खा जाते हैं और साथ में ''मेडीटेशन'' भी करते हैं। निश्चित ही ऐसे तथाकथित योगी और ध्यानी; योग की झलक भी नहीं पा सकते क्योंकि उन्होंने योग के सम्यक् स्वरूप को समझा ही नहीं। आज समाज में योगाचार्यों की भी बाढ़ सी आ गयी है। वे स्वयं ही अहिंसावृत्ति के धारक नहीं होते तो समाज को योग क्या सिखायेंगे।

आज स्थिति भयंकर होती जा रही है। आज अहिंसक आदमी को पिछड़ा समझा जाने लगा है।पार्टियों में , शादियों जहाँ निरीह पशु–पक्षियों को काटकर पकाया जाता है; उसे लोग बड़े शौक से खाते हैं और उससे परहेज़ करने वाले को पिछड़ा कहकर चिढ़ाने की कोशिश की जाती है।यह समय का विद्रूपता नहीं तो और क्या है।ऐसी स्थिति में अहिंसावृत्ति के पालन के लिए हमें चतुराई से काम लेना होगा नहीं तो यह समाज ही हमें हिंसक बना देगा। हमें किसी भी परिस्थिति में अपने धर्म का पालन करना ही चाहिए । आज समाज में योग को भी एक फैशन बना डाला गया है जो किसी भी रूप में युक्तियुक्त नहीं है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि अहिंसा हमारे लिए कितनी आवश्यक है। अहिंसा के बिना हम निरन्तर अशान्त और चंचल बने रहते हैं तथा अनजाने में ही स्वयं का अमंगल करते रहते हैं। आज अहिंसा के सच्चे स्वरूप और उसके लाभों को जन–जन तक पहुँचाने की आवश्यकता है तभी लोग अपना मंगल कर सकेंगे। बिना अहिंसावृत्ति के योग में प्रवेश असंभव है और बिना योग में प्रवेश के न तो सच्ची शान्ति ही मिल सकती है और न ही आनन्द! योगाध्यात्मपथ के पथिक ही जीवन के मर्म को समझ पाते हैं और परमतत्त्व की अपरोक्षानुभूति करके सांसारिक आवागमन के बंधन से मुक्त हो पाते हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. योगसूत्र /समाधिपाद, महर्षि पतंजलि (व्यासभास्य संवलितम्/चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी। /02।
2. योगसूत्र/साधनपाद/30।
3. व्यासभाष्य/योगसूत्र/साधनपाद/30।
4. महाभारत/अनुशासन पर्व, गीताप्रेस गोरखपुर– 115/01।
5. रामचरितमानस/उत्तरकाण्ड/120वें दोहे के बाद, गीताप्रेस गोरखपुर।
6. कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पाप।।(उत्तरकाण्ड)।
7. आहारशुद्धौ चित्तशुद्धिः/छान्दोग्योपनिषद/7/26।
8. महाभारत, अनुशासन पर्व – 141/25।
9. मनुस्मृति/ रणधीर प्रकाशन/हरिद्वार–92।
10. श्रीमद्भागवत महापुराण, गीताप्रेस गोरखपुर /7/44।
11. योगसूत्र/साधनपाद/35।
12. हितोपदेश वाणी प्रकाशन नई दिल्ली/2011–144।
13. श्रीमद्भगवद्गीता/16/02।
14. महाभारत/अनुशासनपर्व/113/8।
15. यजुर्वेद/16/13 एवं ऋग्वेद 1/114/8।

ꕥ★ꕥ

रससिक्त राजस्थान की पहचान : लोकनृत्य

डॉ. प्रणु शुक्ला*

राजस्थान वीरप्रसू भूमि है। "राजस्थान के नाम के साथ ही एक प्रतिबिंब उभरता है दृ यहां के गौरवमयी इतिहास का, वीरता एवं शौर्य की गाथाओं का; साथ ही उभरता है मरुस्थल में विस्तृत बालू के स्तूपों और रेत के सागर का दृश्य, अरावली की श्रृंखलाओं का फैलाव, चंबल नदी के बहाव का दृश्य और अति प्राचीन संस्कृति का स्वरूप। आज राजस्थान अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संजोए हुए विकास के पथ पर अग्रसर है।"[1] राजस्थान की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। संस्कृति एक पुष्प है और सभ्यता उसकी सुगंध। 'बाबू गुलाब राय' ने ठीक ही कहा है दृ "संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी; जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं।"[2]

राजस्थान की लोक संस्कृति अपने आप में विरल और अनूठी है। इसका चित्रण और उसकी प्रसिद्धि का निदर्शन मात्र इस रूप में कर लिया जाता है कि कहीं भी रेत के धोरे और ऊँट बना दिए जाएं तो दृष्टा स्वयं अनुमान लगा लेता है कि यह राजस्थान है। राजस्थानी संस्कृति समस्त देश ही नहीं, अपितु विश्वभर में इतनी प्रसिद्ध है कि दूर–दूर से पर्यटक यहां आते हैं। राजस्थान सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के समृद्ध प्रदेशों में गिना जाता है। यहां की संस्कृति एक विशाल सागर के समान है, जो गांव–गांव, ढाणी–ढाणी, चौपाल, चबूतरे, महल–प्रासाद, घर–घर तथा जन–जन में समाई हुई है। इसका स्वरूप राजवाड़ा एवं सामंती व्यवस्था में देखा जा सकता है। इस संस्कृति में साहित्य और संगीत के अतिरिक्त कला–कौशल, शिल्प, महल, मंदिर, किले, झोपड़ियां भी अध्ययन के विषय हैं, जो हमारी संस्कृति के दर्पण हैं। इसमें पोशाक और पहनावा, पर्व, उत्सव और त्योहार, लोकनाट्य एवं लोक साहित्य, दुर्ग एवं किले, रहन–सहन, खानपान, तहजीब–तमीज– सभी आते हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से राजस्थान को 7 प्रमुख भागों में बांटा गया है– मारवाड़ (Marwar), मेवाड़ (Mewar), शेखावटी (Shekhawati) ढूंढाड़ (Dhundhad), हाड़ौती (Hadauti), ब्रज (Braj), मेवाती (Mewati)।

लोकनृत्य, लोकगीत व लोकसंगीत दृ राजस्थानी संस्कृति के प्राणतत्व एवं अभिन्न अंग हैं। 'डॉ. गोपीनाथ शर्मा' के अनुसार दृ "इन विधाओं को लोक शब्द से जोड़ा गया है, इसलिए नहीं कि इनका संबंध ग्राम्य जनता या आदिवासियों से है, बल्कि चाहे गांव हो या नगर दृ सभी स्थानों पर लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य, ख्याल और नाटकों का प्रमुख स्थान है।"[3]

जब व्यक्ति प्रसन्न और प्रफुल्लित होता है, तो स्वतः ही उसके पैर थिरकने लगते हैं। यह भाव–भंगिमाएं ही 'नृत्य' कहलाती हैं। लोकनृत्य उमंग से भरकर प्रायः सामूहिक रूप से किए जाते हैं। इनमें न तो मुद्राएं निर्धारित होती हैं और न ही अंगों का निश्चित संचालन। "इस प्रकार के नृत्यों को 'देशी नृत्य' या 'लोकनृत्य' कहा जाता है। तार्किक रूप से, विशेषण 'लोक' को एक निश्चित प्रकार के नृत्य या उसकी शैली या प्रदर्शन की किसी विशेषता को इंगित करने के लिए संज्ञा 'नृत्य' को संशोधित करना चाहिए। यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि कलाकार कौन हैं। हालांकि, 'लोकनृत्य' शब्द जो 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से प्रचलन में है, अपने मूल शब्द 'लोककथा' (जो 1846 में गढ़ा गया था) की भांति उतना वर्णनात्मक या निर्विवाद नहीं है, जितना प्रतीत होता है। अधिकांश समस्या प्रारंभिक विद्वानों और उनके दृष्टिकोण व उद्देश्यों में निहित है।"[4]

लोकनृत्य की विशेषताएं :– "ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किए जाते हैं। यह चाल के किसी विशिष्ट प्रतिरूप में सामान्य लय का प्रयोग करते हुए किए जाते हैं। ये आनंद और प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने वाले सरल नृत्य हैं। शरीर की चाल, चेहरे की भाव–भंगिमाएं, वेशभूषा, आभूषण, सजावट आदि लोकनृत्य के अभिन्न अंग हैं।"[5] "राजस्थान के लोकनृत्यों में लय, ताल, गीत, सुर आदि का सुंदर एवं संतुलित सामंजस्य देखने को मिलता है। लोकनृत्य राजस्थान के जनजीवन की संजीवनी बूटियां हैं। इसी बूटी की चुटकी लेकर राजस्थान के जनजीवन ने भूखा और नंगा रहते हुए भी मस्ती में जीना सीखा है।"[6]

*** सहायक आचार्य (हिन्दी) राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राजस्थान)**

यदि नृत्य को निश्चित नियमों व व्याकरण के अनुसार किया जाए, तो वह 'शास्त्रीय नृत्य' कहलाता है। राजस्थान की शास्त्रीय नृत्यकला का नाम 'कत्थक शैली' है। पूरे भारत में कत्थक शैली का उद्गम राजस्थान से ही हुआ है। राजस्थान में विभिन्न प्रकार के नृत्य विभिन्न अवसरों पर किए जाते हैं।

लोकनृत्यों का वर्गीकरण :– "राज्य के लोकनृत्यों को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- क्षेत्रीय लोकनृत्य
- व्यावसायिक लोकनृत्य
- जातीय लोकनृत्य
- सामाजिक या धार्मिक लोकनृत्य"[7]
- क्षेत्रीय लोक नृत्य

राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे लोक नृत्य विकसित हुए जो उस क्षेत्र की पहचान बन गए। ऐसे नृत्य को हम क्षेत्रीय लोक नृत्य कहते हैं। क्षेत्रीय लोक नृत्यों में कुछ मुख्य लोक नृत्य इस प्रकार हैं:

गैर नृत्य :– गोल घेरे में इस नृत्य की संरचना होने के कारण यह 'घेर नृत्य' कहलाता था, जिसे कालांतर में 'गैर नृत्य' कहा जाने लगा। यह नृत्य होली के दूसरे दिन से शुरू होता है तथा पंद्रह दिन तक मेवाड़ और बाड़मेर में इस नृत्य की धूम मची रहती है। इस नृत्य में ढोल, मृदंग तथा थाली वाद्य यंत्र प्रयोग में लिए जाते हैं। इसके नर्तकों को 'गेरिये' कहा जाता है। गैर नृत्य में 'गींदड़ नृत्य' की भांति मेवाड़ और बाड़मेर क्षेत्र में पुरुष

ा लकड़ी की छड़ियाँ (खांडा) लेकर गोल घेरे में नृत्य करते हैं। मेवाड़ व बाड़मेर गैर नृत्य की मूल रचना एक ही प्रकार है, किन्तु नृत्य की लय, चाल, मंडल और नर्तकों की पोशाकों में अंतर होता है। मेवाड़ में गैर नृत्य करने वाले सफेद अंगरखी, सफेद धोती और लाल पगड़ी पहनते हैं। बाड़मेर में सफेद ओंगी/लंबा फ्रॉक, कमर में चमड़े का पट्टा और तलवार रखते हैं। गैर के प्रत्युत्तर में गाए जाने वाले श्रृंगार एवं भक्ति रस के गीत 'फाग' कहलाते हैं। भीलवाड़ा जिले का 'घूमर गैर नृत्य' प्रसिद्ध है, जिसे 1970 ई. में निहाल अजमेरा ने शुरू किया। नाथद्वारा (राजसमंद) में शीतला सप्तमी (चैत्र कृष्ण सप्तमी) से एक माह तक गैर नृत्य का आयोजन होता है।

शेखावाटी का गींदड़ नृत्य :– शेखावाटी क्षेत्र (रामगढ़, सीकर, सुजानगढ़, लक्ष्मणगढ़, चुरू आदि) में गींदड़ नृत्य का प्रारंभ नगाड़ची के मंडप के बीच में प्रार्थना करने के बाद गाँव के गुवाड़ (चौक) में होली के त्योहार पर प्रह्लाद की स्थापना (डांडा रोपना) के बाद होता है। ताल, सुर और नृत्य इन तीनों का अनुपम योग गींदड़ नृत्य में देखने को मिलता है। यह विशुद्ध पुरुषों (केवल पुरुष, महिलाएं नहीं) का नृत्य है। कुछ व्यक्ति महिलाओं की पोशाक धारण करके उसमें भाग लेते हैं, जिन्हें 'गणगौर' कहा जाता है। गींदड़ नृत्य में नर्तक कई प्रकार के रूप बनाते हैं, जैसे – साधु, डाकिनी–डाकन, दूल्हा–दुल्हन, पादरी, शिकारी, सरदार, सेठ–सेठानी, जोकर, पठान, बाजीगर, पराक्रमी योद्धा, राम, काली, शिव–पार्वती, कृष्ण आदि। गींदड़ नृत्य एक प्रकार का स्वांग नृत्य है। गींदड़ नृत्य के समय गाए जाने वाले गीत के बोल इस प्रकार हैं–

"गींदड़ खेलण म्हैं जास्यां
खाड़ खिचाले गींदड़ मांड पर रही नौबत खेलण म्हैं जास्यां
बांध के सूमल पगड़ी केसरिया बंडी पर गींदड़......."

शेखावाटी का जिंदाद नृत्य :– यह नृत्य शेखावाटी क्षेत्र में स्त्री–पुरुषों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में मुख्य वाद्य यंत्र ढोलकी होता है।

शेखावाटी का लहूर नृत्य :– 'लहूर' शब्द को राजस्थानी भाषा में 'मीठी खुजली' कहा जाता है। यह नृत्य शेखावाटी में झुंझुनूं के आसपास प्रचलित है। इस नृत्य में मूल कथानक नहीं होता है। इसमें एक अभिनेता और एक अभिनेत्री होते हैं जो अभिनय नृत्य करते हैं।

शेखावाटी का चंग नृत्य :– चंग नृत्य भी शेखावाटी में होली के दिनों में पुरुषों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में प्रत्येक पुरुष के पास चंग होता है और वह स्वयं चंग बजाते हुए वृत्ताकार नृत्य करते हैं और धमाल तथा होली के गीत की पंक्ति गाते हैं। गीत की पंक्ति गाने के बाद फिर वृत्ताकार होकर चंग नृत्य करते हैं, जिसमें पुरुषों का अंग संचालन देखने योग्य होता है। चंग नृत्य के समय गाए जाने वाले गीत के बोल इस प्रकार हैं–

"काहे से रची है जुल्मी काहे से,
सुहागण मेहंदी काहे से रची,
कठे बुहादयूं तेरो झीरो रे कजवो,
कठे बुहादयूं बूटो रचैणी को..."

शेखावाटी का ढप नृत्य :– ढप नृत्य बसंत पंचमी के अवसर पर ढप व मंजीरे बजाते हुए शेखावाटी क्षेत्र में किया जाता है।

चूरू का कबूतरी नृत्य :– कबूतरी नृत्य चूरू क्षेत्र का नृत्य है जो पेशेवर महिलाओं द्वारा किया जाता है।

जालौर क्षेत्र का ढोल नृत्य :– ढोल नृत्य जालौर का प्रसिद्ध नृत्य है। यह केवल पुरुषों द्वारा ही किया जाता है। इसमें एक साथ चार या पाँच ढोल बजाए जाते हैं। इस नृत्य में कलाकारों के समूह का मुखिया 'थांकना' कहलाता है। थांकना का शाब्दिक अर्थ नर्तकों में जोश भरना होता है। शैली में ढोल बजाता है। उसके साथ 4–5 अन्य ढोल बजाने वाले भी संगत करते हैं। थांकना समाप्त होते ही समूह के अन्य नर्तक कोई मुँह में तलवार लेकर, कोई हाथों में डंडे लेकर, कोई रूमाल लटकाकर नृत्य करते हैं। यह नृत्य सरगड़ा व ढोली जाति के पुरुषों द्वारा सांचलिया संप्रदाय के लोगों के विवाह उत्सव पर किया जाता है।

जालौर क्षेत्र का लुंबर नृत्य :– यह जालौर जिले का महिला प्रधान नृत्य है। महिलाएं यह नृत्य होली के अवसर पर गोला बनाकर करती हैं। इस नृत्य में महिलाएं पाँवों की प्रत्येक गति के साथ 'ताली' बजाती हैं।

मेवाड़ क्षेत्र का रण नृत्य :– रण नृत्य मेवाड़ क्षेत्र का पुरुष प्रधान नृत्य है। इसे सरगड़ा जाति के पुरुष करते हैं। इस नृत्य में दो व्यक्ति नंगी तलवारों से युद्धात्मक प्रदर्शन करते हैं। नृत्यकार ढोलक के साथ अंग–भंग, तोड़–मरोड़ के प्रदर्शन करते हैं। इन्हीं मुद्राओं के साथ रूमाल या सिक्कों को धरती से उठाया जाता है, जो इस नृत्य का करतब पक्ष होता है।

मेवाड़ का हरणों नृत्य :– यह नृत्य मेवाड़ क्षेत्र में दीपावली के अवसर पर बालकों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य को 'लोवड़ी' भी कहा जाता है।

भरतपुर का बम व बम रसिया नृत्य :– बम रसिया नृत्य अलवर और भरतपुर क्षेत्र का नृत्य है। भरतपुर में भी बम नृत्य डींग तहसील का प्रसिद्ध है। प्रश्न–पत्र के विकल्पों में अलवर व भरतपुर दोनों अलग–अलग आएं तो भरतपुर विकल्प सही रहेगा। इस नृत्य में एक बड़े नगाड़े का प्रयोग किया जाता है, जिसे 'बम' कहते हैं। इसे दो आदमी डंडों की सहायता से बजाते हैं। केवल पुरुषों द्वारा नगाड़ों की ताल पर तीन वर्गों में विभक्त होकर नर्तक रंग–बिरंगे फूंदों तथा पंखों से बंधी लकड़ी को हाथों में लिए उसे हवा में उछालते हुए नाचते हैं। वाद्य यंत्रों में नगाड़े के अलावा थाली, चिमटा, ढोलक, मंजीरा और खड़ताल आदि का प्रयोग भी किया जाता है। इस नृत्य में बम वाद्य यंत्र का प्रयोग किया जाता है। इसी कारण इस नृत्य को बम नृत्य तथा बम नृत्य के साथ स्त्रियाँ रसिया गीत गाती हैं।

भरतपुर का हुरंगा नृत्य :– यह नृत्य भरतपुर जिले के आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों में किया जाने वाला एक स्वांग नृत्य नाटक है। इसमें पुरुष व महिलाएं बम ढोल की ताल पर सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। यह नृत्य होली के बाद चैत्र कृष्ण पंचमी से अष्टमी तक किया जाता है।

भरतपुर का चरकुला नृत्य :– यह नृत्य भरतपुर जिले व उसके आसपास के ब्रज क्षेत्र में किया जाता है। ध्येय रहेकृचरकुला नृत्य का मूलतः उद्गम उत्तर प्रदेश से हुआ है। प्रारंभ में यह नृत्य कृष्ण की राधा की स्मृति में बैलगाड़ी के पहिए पर 108 दीपक जलाकर किया जाता था। यह एक महिला प्रधान नृत्य है। नृत्य में महिलाएं सिर पर बर्तन रखकर एवं उस पर दीपक जलाकर नृत्य करती हैं।

कतरियासर (बीकानेर) का अग्नि नृत्य :– राजस्थान के लोक नृत्यों की श्रृंखला में आग के धधकते अंगारों पर किया जाने वाला 'अग्नि नृत्य' का उद्गम बीकानेर जिले के 'कतरियासर' गाँव से हुआ। अग्नि नृत्य का प्रदर्शन करने वाले नर्तक "जसनाथी संप्रदाय" के मतानुयायी जाट, सिद्ध कबीले के लोग होते हैं, जो बीकानेर के कतरियासर, मामलू, डिकमदेसर आदि गाँवों में रहते हैं। अंगारों का ढेर 'धूणा' कहलाता है, तो नृतक 'नाचणियाँ' कहलाते हैं। 'धूणा' (अंगारों का ढेर) के चारों ओर पानी छिड़का जाता है। तीन सबद जसनाथी के गीत हेतु गाए जाते हैं तथा चौथा सबद 'नाचणियों' के लिए होता है, इसके बाद अग्नि नृत्य की शुरुआत होती है। सब लोग तेज गति से 'धूणा' की परिक्रमा कर गुरु को नमस्कार करते हैं। इस नृत्य में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं। यह नृत्य चैत्र एवं फाल्गुन मास में किया जाता है। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने इस नृत्य को संरक्षण प्रदान किया। अंगारों से न जलना ही इस नृत्य की अनुपम विशेषता है।

ब्यावर (अजमेर) का मयूर/भैरव नृत्य :– मयूर/भैरव नृत्य ब्यावर में बादशाह के मेले के दौरान बीरबल का पात्र निभाने वाला व्यक्ति बादशाह की सवारी के आगे करता हुआ चलता है। इस नृत्य के पीछे जनश्रुति है कि बादशाह की सवारी निकलने से पूर्व ब्यावर के व्यास परिवार का व्यक्ति जो बीरबल (बाना) का रूप धारण करता है, वह भैरव मंदिर में जाकर भैरव की उपासना में नृत्य करता हैकृउसे भैरव नृत्य कहते हैं। इस नृत्य से प्रसन्न होकर भैरव उसे इतनी शक्ति देता है कि बीरबल बादशाह की सवारी के आगे नृत्य करते हुए दो दिनों तक नहीं थकता है। बादशाह की सवारी के आगे बीरबल जो नृत्य करता है, वह मयूर नृत्य कहलाता है। बादशाह की सवारी में बादशाह का रूप अकबर के नौ रत्नों में से एक टोडरमल का होता है।

बाँसवाड़ा का पेजण नृत्य : पेजण नृत्य बागड़ (डूंगरपुरदृबाँसवाड़ा) क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक नृत्य है, जो दीपावली के अवसर पर पुरुषों द्वारा नारी का रूप धारण कर किया जाता है।

बाँसवाड़ा का पालीनोच नृत्य : पालीनोच नृत्य बाँसवाड़ा जिले में केवल विवाह के अवसर पर किया जाता है।

(ब) व्यावसायिक लोक नृत्य :– जब व्यक्ति किसी नृत्य का प्रदर्शन कर अपनी जीविका कमाने लगता है तो वह व्यावसायिक (पेशेवर) तथा उसके द्वारा किया जाने वाला नृत्य व्यावसायिक (पेशेवर) लोक नृत्य कहलाता है। राज्य में तेरहताली, भवाई एवं कच्छी घोड़ी नृत्य व्यावसायिक लोक नृत्यों की श्रेणी में आते हैं।

तेरहताली नृत्य :– तेरहताली नृत्य कामड़ जाति की महिलाओं का मुख्य पारंपरिक लोक नृत्य है। यह बाबा रामदेव के मेले में सर्वाधिक किया जाता है। इस नृत्य का उद्गम पादरला गाँव, बाली तहसील (पाली) से हुआ है। राजस्थान का एकमात्र तेरहताली नृत्य ही ऐसा है जो बैठकर किया जाता है। इस नृत्य में पुरुष गीत गाते हैं। स्त्रियाँ तेरह मंजीरे अपने शरीर परकृ9 दाएँ पाँवों पर, 2 दोनों हाथों की कुहनियों पर तथा 1–1 मंजीरा दोनों हाथों में बाँधकर नृत्य करती हैं। नृत्य के दौरान स्त्रियाँ हाथ वाले मंजीरों को अन्य मंजीरों से बजाकर नाना प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करती हैं, साथ ही विविध प्रकार की भाव–भंगिमाएँ प्रदर्शित करती हैं, जैसे–

- अनाज साफ़ करना
- अनाज कूटना
- अनाज काटना
- अनाज पीसना, आटा छानना
- गेहूँ के आटे में पानी मिलाना
- बाजरे का आटा गूँधना
- जमे हुए दूध से घी निकालना
- चरखे पर कातना
- सूत समेटना

तेरहताली नृत्य में पुरुष मंजीरे, तानपूरा, चौतारा आदि वाद्य यंत्रों के साथ संगत करते हैं।

भवाई नृत्य :– भवाई नृत्य एवं लोक नाट्य मुख्यतः गुजरात का लोक नाट्य है। यह राजस्थान राज्य में गुजरात के समीप स्थित मेवाड़ क्षेत्र में किया जाता है। उदयपुर संभाग में सर्वाधिक प्रचलित भवाई नृत्य पेशेवर (व्यावसायिक) नृत्यों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह अपनी चमत्कारिता (तेज़ लय में सिर पर सातदृआठ मटके रखकर नृत्य करना, ज़मीन पर रखे रूमाल को मुँह से उठाना, गिलासों पर नाचना, थाली के किनारों पर नृत्य करना, काँच के टुकड़ों पर नाचना) के लिए अधिक प्रसिद्ध है। भवाई नृत्य एक नाटक के रूप में किया जाता है। भवाई लोक नाट्य एक व्यावसायिक लोक नाट्य है जिसमें पात्र रंगमंच पर आकर अपना परिचय नहीं देते। भवाई नृत्य मूलतः मटका नृत्य था, किंतु भवाई जाति के व्यक्तियों द्वारा किया जाने के कारण इसका नाम भवाई नृत्य पड़ा। इस भवाई नृत्य के प्रवर्तक केकड़ी (अजमेर) के नागोजी/बाघोजी जाट को माना जाता है, तो इस नृत्य को विशिष्ट ख्याति भारतीय लोक कला मंडल (उदयपुर) के संस्थापक देवीलाल सांभर ने दयाराम भील के माध्यम से दिलाई।

कच्छी घोड़ी नृत्य :– कच्छी घोड़ी नृत्य शेखावाटी क्षेत्र का प्रसिद्ध व्यावसायिक लोक नृत्य है। यह जो सरगड़े, कुंहार, ढोली तथा भांभी, विशेषतः बावरी नामक व्यावसायिक जातियों द्वारा विवाह में किया जाता है। यह पुरुष प्रधान एवं वीर नृत्य है जो पैटर्न बनाने की कला के लिए प्रसिद्ध है। इस नृत्य के उद्भव के संबंध में लोकप्रसिद्ध कथा है कि एक बार कुछ पठान घोड़े लेकर चलते–चलते मराठों के एक गाँव में रुके। रात में मराठे उनके घोड़े चुराकर ले गए। अपने घोड़ों को वापस पाने के लिए उन्होंने मराठों से युद्ध किया और उन्हें हराकर अपने घोड़े वापस ले गए। इसलिए यह नृत्य मध्यकालीन युद्ध का माहौल बनाता है और नर्तक वीरता के हाव–भाव प्रदर्शित करता है। इस नृत्य में ढोलक, झांझ, डेरू एवं बांकिया नामक लोक वाद्य यंत्रों का उपयोग किया जाता है। कच्छी घोड़ी का शाब्दिक अर्थ 'काठ/लकड़ी की घोड़ी' होता है अर्थात् इस नृत्य में नर्तक बाँस की बनी घोड़ियाँ अपनी कमर से बाँधकर दूल्हे–सा वेश बनाकर तथा हाथ में तलवार लेकर घोड़ी नचाते हुए नकली लड़ाई लड़ते हैं।

(स) जातीय लोक नृत्य :– वे लोक नृत्य जो किसी विशेष जाति समूह के व्यक्ति करते हैं, वे जातीय लोक नृत्य कहलाते हैं। जैसे –

भील जाति के लोक नृत्य

युद्ध नृत्य :– युद्ध नृत्य के माध्यम से भील अपनी युद्ध कला का प्रदर्शन करते हैं। इस नृत्य के दौरान दो दल एक–दूसरे पर तीर, तलवारों, भालों एवं लाठियों से हमला करते हैं। इस दौरान वे ऊँची हुंकार भरते हैं तथा ऊँची आवाज में 'फाइरे–फाइरे' रणघोष कहकर मांदल बजाते हैं। यह नृत्य बेहद भयानक होता है।

इस नृत्य में बहुत से नर्तक घायल भी हो जाते हैं, इसी कारण राज्य सरकार ने इस नृत्य पर प्रतिबंध लगा रखा है।

शिकार नृत्य :– शिकार नृत्य के माध्यम से भील शिकार की कला को प्रस्तुत करते हैं। इसमें एक नर्तक तीर–कमान लेकर भागता है, व दूसरा एक ही स्थान पर खड़ा होकर ढोल की ताल के साथ शिकारी के

क्रियाकलापों को प्रदर्शित करता है। अन्य नर्तक लाल–पीले वस्त्र ओढ़कर (शिकार) पशु का अभिनय करते हैं और तीर चलते ही आहत पशु की भाँति आवाजें निकालते हैं। इस नृत्य में ढोल की आवाज बड़ी भयानक होती है। शिकार नृत्य में नर्तक अपने धनुर्विद्या के कौशल का प्रदर्शन करता है।

नेजा नृत्य :– नेजा नृत्य भील जाति की स्त्री व पुरुषों द्वारा किया जाने वाला युगल नृत्य है, जो एक दर्शनीय खेल नृत्य है। इस नृत्य के दौरान होली के तीन दिन बाद मैदान में डंडा गाड़ (खंभा रोप) दिया जाता है तथा डंडे के ऊपरी सिरे पर एक नारियल बाँध दिया जाता है। पुरुष खंभे पर चढ़कर नारियल लेने का प्रयास करते हैं और स्त्रियाँ छड़ियाँ और कोड़ा (बैंतों) से पुरुषों को मार कर रोकने का प्रयास करती हैं। इस नृत्य के अवसर पर ढोल पर 'पगल्या लेना' नामक धाप दी जाती है।

गौरी नृत्य :– गौरी नृत्य उदयपुर के आसपास के भीलों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य से कई कथाएँ जुड़ी हुई हैं। यह नृत्य नाटक के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। यह भाद्रपद पूर्णिमा के एक दिन पहले किया जाता है। इस नृत्य–नाटक में माता पार्वती के पीहर गमन आदि की घटनाएँ जुड़ी हुई हैं।

घूमरा/झूमर नृत्य :– घूमरा नृत्य गुजरात के 'गरबा नृत्य' से काफी मिलता–जुलता है। इसे राजस्थान के बाँसवाड़ा जिले की कुशलगढ़, घाटोल व आनंदपुरी, प्रतापगढ़, डूंगरपुर, उदयपुर व कोटड़ा क्षेत्र की भील जाति की महिलाओं द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में भील महिलाएँ अर्धवृत्ताकार घेरा बनाकर घूम–घूमकर नृत्य करती हैं, इसी कारण इस नृत्य का नाम घूमरा नृत्य पड़ा। घूमरा नृत्य करते समय महिलाएँ दो दल बनाती हैं, जिनमें से एक दल गाता है तथा दूसरा दल उसकी पुनरावृत्ति करके हाथ में कपड़ा लेकर नाचता है।

गवरी/राई नृत्य :– गवरी एक प्रकार की नृत्य–नाटिका है। इसे भील जनजाति द्वारा भाद्रपद (राखी/श्रावण पूर्णिमा के बाद) में शुरू करके 40 दिन बाद आश्विन शुक्ल की नवमी तक समाप्त किया जाता है। राजस्थान राज्य की सबसे प्राचीन लोकनाट्य कला गवरी राई नृत्य है, इसी कारण इसे 'लोक नाट्यों का मेरूनाट्य' भी कहते हैं। गवरी लोकनाट्य पूरे भारत में एकमात्र ऐसा लोकनाट्य है जो दिन में प्रदर्शित होता है। गवरी नृत्य भीलों का धार्मिक नृत्य है, इसी कारण गवरी नाट्यकला सांस्कृतिक, परंपरागत व अभिनय तीनों में समृद्ध कला है, जो भीलों के जन्म–मरण और पुनर्जन्म की आस्था का प्रतीक है। इस नृत्य का मुख्य पात्र भगवान शिव को माना जाता है तथा शिव की पत्नी गौरी (पार्वती) के नाम के कारण ही इस नृत्य–नाटक का नाम 'गवरी नृत्य' पड़ा। पार्वती को ही इस नृत्य–नाटक में 'राई' नाम से पुकारा जाता है, इसी कारण इस नृत्य को राई नृत्य भी कहा जाता है। शिव का रूप धारण करने वाले नर्तक को 'पुरिया' कहा जाता है, तो अन्य पात्र 'खेल्ये' कहलाते हैं।

लाठी नृत्य :– लाठी नृत्य भीलों का पुरुष प्रधान नृत्य है। इस नृत्य में भील पुरुष हाथों में लाठी लेकर विभिन्न प्रकार की कलाओं को प्रदर्शित करते हुए नृत्य करते हैं।

द्विचक्री नृत्य :– द्विचक्री नृत्य पुरुष व महिलाओं द्वारा दो चक्र बनाकर किया जाता है, इसी कारण इसे 'द्विचक्री नृत्य' कहते हैं। बाहरी चक्र में पुरुष दाहिनी ओर, अंदर के चक्र में महिलाएँ दाएँ से बाएँ ओर नृत्य करती हुई चलती हैं। यह नृत्य भील जनजातियों में विवाह के अवसर पर किया जाता है।

सूकर का मुखौटा नृत्य :– भील जनजाति द्वारा किया जाने वाला 'सूकर का मुखौटा नृत्य' में तीर–धनुष से लैस एक शिकारी नृत्य स्थल पर आता है और वह शिकारी वहाँ पर बैठे सूकर मुखौटा धारी आदिवासी युवक को मार गिराने का अभिनय करता है। अपनी जान बचाने के लिए सूकर इधर–उधर भागते हैं। यह एक नृत्य–नाटक है जो सिर्फ राजस्थान में किया जाता है और वर्तमान में यह लोकनृत्य गुम होने की कगार पर है।

रमणी नृत्य :– भील जनजाति में 'रमणी नृत्य' विवाह मंडप के सामने विवाह के अवसर पर किया जाता है। इस नृत्य में स्त्रियाँ एक पंक्ति में खड़ी होकर गीत गाते हुए पाँवों को आगे–पीछे बढ़ाती हैं तथा पुरुष साफे की चटकीली पट्टी से सजाकर बांसुरी एवं मांदल वाद्य यंत्रों का वादन करते हैं।

हाथीमना नृत्य :– भीलों द्वारा विवाह के अवसर पर किया जाने वाला नृत्य हाथीमना है। इस नृत्य में भील हाथों में तलवार लेकर गोल घेरे में बैठकर नृत्य करते हैं। यह बैठकर किया जाने वाला नृत्य है।

बेरीहाल नृत्य :– उदयपुर के खैरवाड़ा के पास भांडा गाँव में रंगपंचमी को विशाल आदिवासी मेले का मुख्य आकर्षण बेरीहाल नृत्य है। बेरीहाल एक ढोल है जिसे मध्य में रखकर उसके चारों ओर नृत्य किया जाता है।

गरासिया जनजाति के नृत्य

वालर नृत्य :– वालर नृत्य सिरोही क्षेत्र के गरासिया जनजाति का प्रसिद्ध नृत्य है, जिसे गरासियों के 'घूमर' के नाम से भी जाना जाता है। यह एक धीमी गति का नृत्य है, जिसमें स्त्री व पुरुष दो अर्धवृत्तों की संरचना में खड़े

होते हैं। बाहरी अर्धवृत्त में पुरुष तथा अंदर वाले अर्धवृत्त में स्त्रियाँ रहती हैं। नृत्य प्रारंभ करने के लिए एक पुरुष छाता या तलवार लेकर उनके बीच में प्रवेश करता है। इस नृत्य का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष अंग संचालन तथा ताल के साथ तारतम्य बनाना होता है। यह नृत्य विवाह के अलावा होली व गणगौर पर भी किया जाता है।

मांदल नृत्य :– मांदल नृत्य गरासिया महिलाओं के द्वारा किया जाता है, जिस पर गुजराती गरबे का प्रभाव दिखाई देता है। इस नृत्य में महिलाएँ वृत्ताकार घूमती हुईं मांदल वाद्य यंत्र का प्रयोग करती हैं। अतः यह मांदल नृत्य के नाम से जाना जाता है।

कूद नृत्य :– कूद नृत्य गरासिया स्त्रियों व पुरुषों द्वारा सम्मिलित रूप से बिना वाद्य यंत्र के पंक्तिबद्ध होकर किया जाने वाला नृत्य है। यह नृत्य मस्ती भरा, उछल–कूद करते हुए किया जाता है, इसीलिए इस नृत्य का नाम कूद नृत्य पड़ा। लय व ताल के लिए ये तालियों का इस्तेमाल करते हैं।

जवारा नृत्य :– यह नृत्य होली दहन के पूर्व उसके चारों ओर घेरा बनाकर ढोल के गहरे घोष के साथ गरासिया स्त्री–पुरुषों (युगल जोड़ी) द्वारा किया जाने वाला सामूहिक जवारा नृत्य है, जिसमें स्त्रियाँ हाथ में ज्वारों की बालियाँ लिए नृत्य करती हैं।

सहरिया जाति के नृत्य

शिकारी नृत्य :– शिकारी नृत्य सहरिया जनजाति का पुरुष प्रधान नृत्य है, जो बारां जिले की किशनगंज तथा शाहबाद तहसील में मुख्य रूप से प्रचलित है। इस नृत्य में पुरुष शिकार करने का नाटक करते हैं तथा शिकार हो जाने पर शिकार के चारों ओर नृत्य करते हैं। अतः यह नृत्य–नाटिका है।

इंद्रपरी नृत्य :– इंद्रपरी नृत्य सहरिया जनजाति का नृत्य है, जिसमें रागिनी गीत गाया जाता है। इस नृत्य का आयोजन विवाह के अवसर पर किया जाता है।

बिछवा नृत्य :– बिछवा नृत्य सहरिया जनजाति की केवल स्त्रियों का नृत्य है, जो महिलाओं द्वारा समूह में किया जाता है।

झेला नृत्य :– झेला नृत्य शाहबाद (बारां) की सहरिया जनजाति के स्त्री व पुरुषों (युगल जोड़ी) द्वारा सम्मिलित रूप से खेतों पर फसल की पकाई के समय किया जाता है।

सांग नृत्य :– सहरिया जनजाति का सांग नृत्य एक युगल नृत्य है, जिसमें स्त्री–पुरुष दोनों सम्मिलित रूप से नृत्य करते हैं।

कथौड़ी जनजाति के नृत्य

मावलिया नृत्य :– मावलिया नृत्य प्रतिवर्ष नवरात्रि में नौ दिनों तक देवी–देवताओं के गीत गाते हुए पुरुषों द्वारा गोल–गोल घूमते हुए समूह में किया जाता है। इस नृत्य के ढोलकी व बांसुरी प्रमुख वाद्य यंत्र हैं।

होली नृत्य :– यह नृत्य होली पर महिलाओं द्वारा समूह बनाकर एक–दूसरे के हाथ पकड़कर गीत गाते हुए गोल घेरे में किया जाने वाला नृत्य है। इसमें महिलाएँ नृत्य के दौरान एक–दूसरे के कंधे पर चढ़कर पिरामिड भी बनाती हैं।

मेव जाति के नृत्य

रणबाजा नृत्य :– रणबाजा नृत्य मेवात (अलवर) क्षेत्र की मेव जाति में प्रचलित एक विशेष प्रकार का युगल नृत्य है, जिसमें स्त्री व पुरुष दोनों सम्मिलित रूप से नृत्य करते हैं।

रतबई नृत्य :– रतबई नृत्य अलवर क्षेत्र की मेव महिलाओं द्वारा किया जाने वाला नृत्य है, जिसमें महिलाएँ कभी पंक्तिबद्ध होकर व कभी गोल घूमकर सिर पर इंडोणी व सिरकी (खारी) रखकर हाथों में पहनी हुई हरी चूड़ियों को खनखनाती हुईं नृत्य करती हैं और पुरुष अलगोजा व दमामी (टामक) वाद्य यंत्र बजाते हैं।

कंजर जाति के नृत्य :– कंजर जाति की उत्पत्ति राजपूत और लुहारिन की संतान के रूप में मानी जाती है।

चकरी नृत्य :– चकरी नृत्य हाड़ौती अंचल की कंजर जाति का प्रसिद्ध लोक नृत्य है। इसमें विवाहित औरतें भाग न लेकर केवल कंजर जाति की अविवाहित लड़कियाँ ही भाग लेती हैं। चकरी नृत्य की नृत्यांगनाएँ अस्सी कली (कपड़े के एक लंबवत टुकड़े को कली कहते हैं जो ऊपर की ओर छोटा तथा नीचे बढ़ते हुए चौड़ा होता जाता है। ऐसे कई टुकड़ों को जोड़कर लहंगा और घाघरा बनाया जाता है)। इस नृत्य में कंजर बालिकाएँ गीत गाते हुए तेज़ रफ्तार से चक्राकार घूमती हैं, इसी कारण इस नृत्य का नाम चकरी नृत्य पड़ा।

फूंदी नृत्य :– यह नृत्य हाड़ौती प्रदेश में 'कजली तीज' त्योहार के अवसर पर कंजर व बेड़िया जाति की केवल महिलाओं द्वारा किया जाता है। यह चकरी नृत्य से मिलता–जुलता नृत्य है। शांति, फुलवा आदि इस नृत्य की प्रमुख नृत्यांगनाएँ हैं।

धाकड़ नृत्य :– कंजर जाति का यह नृत्य झालापाव व बीरा के मध्य हुए युद्ध में झालापाव की विजय की खुशी में किया जाता है। हथियार लेकर किए जाने वाले शौर्य से परिपूर्ण इस नृत्य में युद्ध की समस्त कलाएँ प्रदर्शित की जाती हैं।

नट जाति के नृत्य

यह नृत्य नट जाति के लोग करते हैं।

कठपुतली नृत्य :– कठपुतली नचाने वाला नट अपने हाथ में डोरियों का गुच्छा थाम कर नृत्य संचालन करता है।

कालबेलियों के नृत्य :– इनमें अधिकतर महिलाएँ नृत्य करती हैं। पूंगी, खंजरी, मोरचंग प्रमुख वाद्य होते हैं। ये कलात्मक लहंगे, ओढ़नी, अंगरखा पहनती हैं।

इंडोणी नृत्य :– खंजरी वाद्य पर किया जाता है।

शंकरिया नृत्य :– परिणय कथा पर आधारित नृत्य।

पणिहारी नृत्य :– ढोलक व बांसुरी पर किया जाता है।

बणजारों के नृत्य :– इनके गीत व नृत्य बेहद कर्णप्रिय होते हैं। ढोलकी प्रमुख वाद्य है। मछली नृत्य, नेजा नृत्य प्रमुख हैं।

मछली नृत्य :– पूर्णिमा की रात होने वाला नृत्य–नाटक है।

लोकनृत्यों में एक विशेष बात उल्लेखनीय है कि "इन लोकनृत्यों का माध्यम जितनी स्त्रियाँ हैं, उतने पुरुष नहीं। जितना प्रेम, स्नेह, विषाद, पीड़न और उल्लास का चित्रण महिलाएँ कर सकती हैं, कोई नहीं कर सकता। उनके कंठ से जो स्वर निकलते हैं, शरीर जो थिरकता है, वह वास्तविकता के निकट सहज में पहुँचता है।" सारांश रूप में कहा जाए तो यह लोकनृत्य एक माध्यम है अपनी संप्रेषण को पहुँचाने का।कथा सामूहिक या एकाकी रूप से अपनी व्यथा–कथा या भावना को व्यक्त करने का। राजस्थानी लोकनृत्य का स्थान राजस्थानी परंपरा में अक्षुण्ण है। लोकनृत्य जीवन का हिस्सा है तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान का माध्यम भी।

सन्दर्भ–सूची :–

1. डॉ. सक्सेना हरिमोहन, राजस्थान का भूगोल, पृष्ठ 1, राजस्थानः एक सामान्य परिचय, प्रकाशक – हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, संस्करण 2010।
2. गुलाब राय बाबू, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृष्ठ 5, प्रकाशक – ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2008।
3. शर्मा गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 197, प्रकाशक – राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, संस्करण 2010।
4. डॉ. नीरज जय सिंह, डॉ. भगवती लाल जी शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परंपरा, पृष्ठ 118, प्रकाशक – राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, संस्करण 2010।
5. शर्मा गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 197–198, प्रकाशक – राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, संस्करण 2010।
6. वही, पृष्ठ 207।
7. डॉ. नीरज जय सिंह, डॉ. भगवती लाल जी शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परंपरा, पृष्ठ 118, प्रकाशक – राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, संस्करण 2010।
8. शर्मा गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 197–198, प्रकाशक – राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, संस्करण 2010।

वैशाली गणराज्य की शासन व्यवस्था
अतीत एवं वर्तमान (725 B.C.– 484 B.C.)

डॉ. विश्वजीत कुमार*

प्राचीन भारतीय संस्कृति में समाहित अनेकानेक ऐसे विषय हैं जिनके महत्त्व को पुरातन होने के कारण उनकी उपयोगिता को अप्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे संस्कृति के गर्भ में छिपे ज्ञान एवं सभ्यताओं की उत्कृष्टता आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैद्य उन्हीं में से एक है प्राचीन राजव्यवस्था का सिद्धान्त जो कि वर्तमान बिहार के विदेह क्षेत्र से सम्बन्धित हैद्य भारतवर्ष के इतिहास के ग्रन्थों में एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि आम जनमानस में वैशाली की छवि प्रथम गणतान्त्रिक प्रणाली के जनक के रूप में प्रख्यात है लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतवर्ष में गणतन्त्र के सैद्धान्तिक वा प्रायोगिक अध्ययन हेतु वैशाली के किसी भी पक्ष का अध्ययन वा अध्यापन न ही भारतीय शिक्षा–प्रणाली में सम्मिलित है न ही व्यवहाररूप में प्रयुक्त हो रहा है। इस विषय पर ऐतिहासिक ग्रंथों से अधिक गौतम बुद्ध और महावीर के साहित्य में पर्याप्त उल्लेख है। इस दृष्टिकोण से 'वैशाली' भारत ही नहीं अपितु विश्व के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यहाँ के अनेकों सघन वन से आच्छादित भौगोलिक भूभागों की महता इतनी पावन एवं पुण्यमयी रही है; जिसने सामान्य व्यक्ति ही नहीं प्रत्युत भोग–विलास में डूबे राजकुमारों सिद्धार्थ एवं महावीर को प्रबुद्ध तपस्वी एवं विचारक बना दिया था। जिनके ज्ञान से आज भी समस्त संसार आलोकित हो रहा है। जैन–धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर की जन्मस्थली होने का गौरव भी इसी वैशाली को प्राप्त है। बौद्ध–धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध जब ज्ञान–पिपाशा के शमन हेतु भटक रहे थे, तब उन्हें भी इसी लिच्छवी गणराज्य के क्षेत्र में अनेकशः आश्रय मिला था।

यह क्षेत्र प्राचीन सदानीरा (वर्तमान में गण्डक) नदी के पूर्व से लेकर दक्षिण बिहार (गंगा के तट तक) तक फ़ैली हुई थी। तत्कालीन भारतवर्ष में यह केवल कृषि और व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ की प्रजा अत्यन्त ही खुशहाल एवं वैभवशाली थी। वैशाली गणराज्य अर्थात् वज्जियन क्षेत्र गंगा के उत्तर में नेपाल की पहाड़ी तक फैला हुआ था। पश्चिम में गण्डक नदी इसे मल्ल और कोसल प्रान्त से भी अलग करती थी। गंगा के किनारे होते हुए यह कोशी और महानंदा के तट तक विस्तीर्ण था। इसी पावन धरा पर संसार में सबसे पहले गणतान्त्रिक शासन–प्रणाली का चिन्तन एवं प्रयोग हुआ था, जिसे हम सभी 'वज्जी' अथवा 'लिच्छवी' अथवा वैशाली गणराज्य के नाम से जानते हैं।[1] वस्तुतः बिहार राज्य के वर्तमान मुजफ्फरपुर एवं चम्पारण जिले के साथ नेपाल की तराई तक का क्षेत्र इसमें सम्मिलित था। लेकिन इस सन्दर्भ में सटीक वा प्रमाणिक साक्ष्य के अभाव के कारण लोकतन्त्र की जननी वैशाली गणराज्य का समुचित प्रचलन में न होना बिहार ही नहीं अपितु भारतवर्ष के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है। लोकतन्त्र की जननी होने का गौरव तब और भी फीका पड़ जाता है जब लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए भारतीय पश्चिम का अनुकरण करते हैं। यद्यपि बौद्ध और जैन धर्म तथा हिन्दू पौराणिक ग्रन्थों में इसके साक्ष्य प्राप्त होते हैं, पुनश्च आधुनिक ऐतिहासिक समीक्षकों के समक्ष वैसे साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, जैसे मगध साम्राज्य के आलोक में प्राप्त हैं। यह भी सम्भव है कि अपनी बौद्धिकता के अभिमान में पाश्चात्यों के षडयन्त्र का शिकार होकर अथवा आर्थिक लालचवश इतिहासकारों ने अन्य सभी भारतीय ज्ञान परम्परा की विधाओं की तरह इसको भी उपेक्षित रखने का यह प्रायोजित षड्यन्त्र हो।

समस्त संसार को लोकतन्त्र का ज्ञान देने वाली इस भूमि का इतिहास ईसा से 725 वर्ष पुरातन है। इसमें केन्द्रिय कार्यपालिका में एक गणपति यानि राजा, उपराजा, सेनापति तथा भण्डागारिक थे। ये ही शासन का कार्य देखते थे। वर्तमान लोकतान्त्रिक प्रणाली की संसदीय व्यवस्था के ही सदृश कार्य होता था। महात्मा बुद्ध भी वज्जि संघ से अत्यन्त प्रभावित थे। वर्तमान वैशाली में बौद्धधर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध तथा

*** अध्यक्ष– स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर।**

जैन धर्म के २४वें तीर्थकर वर्धमान महावीर की स्मृतियों की छटा सर्वत्र विकीर्ण है। वैशाली धार्मिक धर्मशालाओं एवं नैसर्गिक अध्यात्मिक वातावरण को आज भी अपने अन्दर समेटे हुए है। हाल ही में यहाँ जापानी मन्दिर, थाई मन्दिर और वियतनाम बौद्ध स्तूप व विहार का भी निर्माण किया गया है। यहाँ जैन धर्म का एक विशाल संग्रहालय भी शोध–केन्द्र के रूप में क्रियाशील है। आधुनिक वैशाली क्षेत्र बिहार राज्य का एक हिस्सा मात्र है जिसमें कुछेक बौद्ध एवं जैन धर्म के पर्यटन स्थल हैं। प्राचीन राजव्यवस्था अथवा गणतान्त्रिक प्रणाली के कोई भी अवशेष अब यहाँ उपलब्ध अथवा व्यवहार में नहीं है।

प्राचीन भारतीय राजवयावस्था एवं वैशाली गणराज्य की शासन व्यवस्था – वैशाली की राजतान्त्रिक प्रणाली के इतिहास में एक ऐसा मोड़ आता है कि आज के उत्तरी बिहार का एक वैभवशाली अतीत हम सबके समक्ष उपस्थित हो सका। बौद्धधर्म के वैशाली में उपस्थिति से पूर्व वैशाली के राजव्यवस्था सम्बन्धी एक ऐसी पहेली उपस्थित है; जो विश्व के प्रथम गणराज्य के निर्माताओं (लिच्छवियों) के काल निर्धारण में अनिश्चय की स्थिति उत्पन्न करती है। पुनश्च वैशाली गणराज्य की स्थापना काल का निर्धारण इस सन्दर्भ में उपस्थित विसंगतियों को आधार बनाकर किया जा सकता है–

प्रथम; वैशाली के अन्तिम राजा सुमति, जिसे दशरथ का समकालीन माना जाता है; के काल में अनेक कुलों के गणराज्य (लिच्छवी) व्यवस्था का काल 725 ई०पू० स्वीकारा जा सकता है। लेकिन पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि लिच्छवी सत्ता में कब आएं? राजा सुमति के ठीक बाद या महाभारत युद्ध के बाद? (ख) क्या लिच्छवि के सभी गणराज्य कुलों का उदय एक साथ ही हुआ था या पृथक्–पृथक् ? द्वितीय; वज्जियन गणराज्य बुद्ध के समय में एक स्थापित राजनीतिक संस्था थी, जिसके बारे में स्वयं गौतम बुद्ध के उपदेश में इसकी सात विशेषताएँ वर्णित है।[2] तृतीय; अंगुत्तर निकाय में सोलह महा–जनपदों[3] (राज्यों) का उल्लेख है, जिसमें वज्जि के अलावा काशी और अंग राज्य भी सम्मिलित थे। इसके बाद काशी को कौशल ने एवं अंग को मगध ने युद्ध में पराजित कर उसपर अधिकार कर लिया था। इससे यह सिद्ध होता है कि काशी पर कोसल विजय एवं अंग पर मगध के विजय से पूर्व वज्जियों के वैशाली राज्य में गणतन्त्र स्थापित था। काशी–कोशल युद्ध की सटीक तिथि ज्ञात नहीं है; लेकिन अंग पर मगध विजय राजा बिम्बिसार (547–495 ईसा पूर्व) के शासनकाल में घटित हुई थी। चतुर्थ; अपने अनर्गल एवं अनैतिक चरित्र के कारण प्रजा में उपजे असंतोष से परिवारसहित, कान्तिकारी जनविद्रोह में नष्ट हुए अन्तिम विदेहराजा कराल जनक[4] की मृत्यु के साथ ही राजसत्तात्मक शासन प्रणाली विदेह में समाप्त ही गयी थी। क्या वैशाली गणराज्य या लिच्छवियों के उदय का कराल जनक के पतन से कोई सम्बन्ध है या नहीं ? सम्भवतः यह घटना ही तत्कालीन विदेह के वैशाली क्षेत्र में वज्जियन गणराज्य की स्थापना का कारण बना हो, यह भी परिकल्पना (भ्लचवजीमेपे) के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उपर्युक्त चारों संशययुक्त अनसुलझे प्रसंग में किसी ठोस प्रमाणिक उत्तर का अभाव है, अतः वैशाली के गणतान्त्रिक प्रणाली (वज्जिगण/लिच्छविगण) के काल निर्धारण को यहीं विरमित करना उचित होगा।

वज्जियन गणराज्य का विकासक्रम अथवा उसके अंग– संस्कृत व्याकरण के महान आचार्य पाणिनि[5] ने तथा महान राजनीतिज्ञ कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में 'वज्जि' शब्द का प्रयोग किया है। कौटिल्य लिच्छवियों से वज्जियों को भिन्न मानते थे। वज्जि गणराज्य में कितने गण/अंग थे? इस सन्दर्भ में "अष्टाकुलक" शब्द प्राप्त होता है; जो आठ वंश, कुल या समूह को द्योतित कर रहा है। लेकिन यह वास्तविकता यह है कि अष्टाकुल नैयायिक प्रणाली का शब्द है जो कि आठ न्यायधीशों की परिषद् के लिए प्रयुक्त की है; जैसे आधुनिक लोकतान्त्रिक देशों के न्यायालयों में न्यायिक परिषद् होती है। इतना तो स्पष्ट है कि वैशाली के लिच्छवि वज्जियन गणराज्य के सबसे महत्त्वपूर्ण गण थे, क्योंकि वे राजसत्ता की राजधानी वैशालीनगर पर अधिपत्य करते थे। इनके बाद आते हैं ज्ञात्रिक कुल/वंश/गण जिनके परिवार में वर्धमान महावीर का जन्म हुआ था। इस गणतान्त्रिक प्रणाली के अन्य गण के बारे में अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई है। इनमें कुछेक राज्य वा राजवंश सूत्रकृतांग, उग्र, भोग, इक्ष्वाकु और कौरव को भी ज्ञात्रिक और लिच्छवि के साथ जोड़ा जाता है। वज्जियन गणराज्य या वज्जीसंघ में सम्मिलित कुल आठ सदस्य निम्नलिखित थे –

1. लिच्छवि समुदाय के बारे में अनेकानेक विवाद समीक्षकों एवं इतिहासकारों में प्रचलित है। कुछेक पश्चिमी (भारतीय भी) विद्वान् इन्हें विदेशी मूल का मानते हैं। लेकिन इतिहासकार सैमुअल बिल ने भारतवर्ष से बाहर से आकर बसने वाली जातियों से लिच्छवि गण की तुलना को अनुचित माना है। इनका मत है कि लगभग प्रथम ईसा पूर्व में भारतवर्ष में बाह्य मूल के लोगों का आगमन हुआ किन्तु उस समय से छठी सदी ईसा पूर्व तक लिच्छवि उत्कृष्ट कोटि के सभ्य एवं धन–धान्य से समृद्धशाली थे।[6] कुछेक लोग धार्मिक रीति–रिवाज एवं नैयायिक समानता के आधार पर लिच्छवि को तिब्बतियों के अंग या वंशज स्वीकारते हैं जो यहाँ आकर बस गए थे।[7]
2. ज्ञात्रिक (क्षत्रिय, सिद्धार्थ एवं महावीर का कुल) के बारे में राहुल सांस्कृतायन ने कहा है कि वर्त्तमान के 'जेठारिया–ब्राह्मण' समुदाय (भूमिहार) ही, जो कि वर्तमान वैशाली क्षेत्र में हैं, जिनका गोत्र कश्यप है, वही इनके प्रतिनिधि हैं– ज्ञात्री=ज्ञातारा=जतारा=जठारिया=जेथारिया। लेकिन इनका आगमन मुजफ्फरपुर में वर्तमान बिहार के सारण जिले के जेठार डीह गाँव से हुआ था।[8]
3. उग्र और वैशाली जो कि वज्जियन गणराज्य के अंग थे, इनके निकटतम सम्बन्ध का उल्लेख अंगुत्तरनिकाय में प्राप्त होता है।[9] बृहदारण्यक उपनिषद् (III-8.2) में वर्णित उग्रपुत्र को यदि वज्जि के गण वाला उग्र माना जाए तो इनका सम्बन्ध या तो श्रावस्ती से था अथवा साकेत वा चम्पा नगर से है; क्योंकि यहाँ पर गौतम बुद्ध का आगमन हुआ था और उनमें से कई गौतम से प्रभावित होकर उनके अनुयायी भी बने थे।
4. भोग का वर्णन एक क्षत्रिय गण के रूप में जैन साहित्य में प्राप्त होता है। ऐसा माना जाता है कि जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को सबसे पहले भोगों ने ही सम्मानित किया था।[10] वैशाली से पावापूरी के मार्ग में ही भण्डागाम, हत्थीगाम, अम्बगाम जम्बूगाम और भोगनगर अवस्थित थे, ऐसा 'महापरिनिर्वाण–सुत्त' में मिलता है।
5. ऐक्ष्वाकु वज्जि क्षेत्र में रहने वाली एक जनजातीय समुदाय था, जिसका वर्णन जैन ग्रन्थ 'सूत्रकृतांग' में है।[11] ऐसी मान्यता भी है कि इक्ष्वाकु अन्तिम राजा सुमति के वंशज रहे होंगे अथवा नाभानेदिष्ट के भाई माने जाते हैं। रामायण[12] में विशाल के वंशज एवं महाभारत[13] में भी वैशाली साम्राज्य की सूची में इक्ष्वाकुओं का वर्णन मिलता है। सम्भवतः ये अयोध्या से आकर यहाँ बस गए थे।
6. कौरव के वज्जियन संघ में सम्मिलित होने सम्बन्धी अनेकों आह्लादक कथ्य सुश्रुश्य हैं। प्रथम यह कि पाण्डु मिथिला गए थे और विदेह पर विजय प्राप्त की। भीम ने गण्डक के उस पार तक राज्य को सञ्चालन योग्य बनाकर वहीं से कौशिकी एवं कच्छ के राजा को भी पराजित किया था। बाद में कौरवों को यह सौंप दिया गया, जो वज्जियन गणराज्य के गठन के पश्चात् उसी का हिस्सा बन गए।[14] द्वितीय, जब हस्तिनापुर कौरवों क द्वारा त्याग दिया गया था तब उनके राजकीय नेता निचक्षु ने वत्सदेश में यमुना के किनारे कौशाम्बी की स्थापना की थी। उन्हीं में से कुछेक यमुना से चलते हुए गंगा के रास्ते वैशाली आकर बस गए थे। तृतीय, बौद्धधर्म के उदयकाल में कुरू ब्राह्मण एवं उशस्ती चाक्रायण विदेह की राजधानी में आकर बस गए थे।[15]
7. कारू ब्राह्मण
8. उशस्ती चाक्रायण

अन्तिम दोनों गणों के बारे में कोई विस्तृत स्रोत प्राप्त नहीं हो सका है।

क्या मिथिला का विदेह वज्जियन गणराज्य का भाग था ? कराल जनक के पतन के बाद वज्जियन गणराज्य संघ में विदेह राज्य सम्मिलित हुआ था या नहीं इस विषय में भी कोई ठोस प्रमाण नहीं है। इसके आठ घटकों में विदेह भी था, लेकिन क्योंकि विदेह भी बाद में तीन भागों में विभाजित हो गया था[16]– 1. वैशाली के लिच्छवी 2. मिथिला के वैदेही 3. तिरहुत के तिरभुक्ति। कुछेक लोगों का यह भी मत है कि ये तीनों परस्पर पर्यायवाची शब्द थे। इनमें से कौन सा घटक वज्जि के गणतन्त्र का अंग था, यह सुनिश्चित नहीं हो सका है। एक अन्य मत यह भी है कि वज्जियन गण में विदेह (मिथिला) सम्मिलित नहीं हुआ था

एवं कराल जनक के विनष्ट होने के बाद भी वहाँ राजतन्त्र ही था, जिसे मगध सम्राट महापद्म नन्द (347 ईसा पूर्व) के अपने अधीन कर लिया था।

वज्जियन गणराज्य का संविधान – बौद्ध एवं जैन तथा संस्कृत के तत्कालीन ग्रन्थों में वर्णित संवादों एवं अन्यान्य प्रसंगों के आधार पर वैशाली गणराज्य के संविधान के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। वज्जियन राज्यों को सामान्यतः हम सभी वज्जि–रत्थ (पाली में) एवं वज्जि राष्ट्र (संस्कृत में) कहते हैं। मगध पर बिबिसारके शासन के समय छठी सदी ईसा पूर्व बौद्धसाहित्य में विदेह के बारे में ज्ञात होता है। वज्जियन राज्य का गठन को संघ या गण कहा जाता था। इस संघ में लिच्छवि सबसे महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली गण थे। इसके बारे में अधिकांश उल्लेख बौद्ध कथा साहित्य एवं पिटक साहित्य से प्राप्त होता है। अर्थशास्त्र एवं चीनी यात्री हवेंत्सांग के यात्रा–वृत्तांत में भी कुछेक विषय वज्जि संघ के बारे में प्राप्त होता है। यहाँ की राजनीतिक स्थितियों एवं इनके शासन प्रणाली भी उसी से ज्ञात होती हैद्य वैशाली गणराज्य की संरचना, यहाँ की कार्यपालिका, न्यायपालिका, धर्म–समाज–शिक्षा सम्बन्धी नीतियों का उल्लेख भी उन्ही साहित्यिक कृ तियों में वर्णित हैं अथवा उसके आधार पर कुछेक भारतीय एवं पाश्चात्य इतिहासकारों ने समीक्षा प्रस्तुत की है। उसी के आलोक में वैशाली की राजव्यवस्था एवं उसके संविधान को प्रस्तुत किया जा रहा है–

वज्जियन गणराज्य की राजनैतिक स्थिति और विदेश नीति दृवैशाली गणराज्य के अध्ययन हेतु इसके संघीय–स्वरूप में सम्मिलित है गण एवं अन्य राज्यों के को तीन समूह में रखा जा सकता है जो वज्जियन गणराज्य में सम्मिलित थे–

वज्जियन गण/लिच्छवि गण (थ्मकमतंस ब्वनदबपस) में मुख्यतः (क) 21 काशी और कोसल के गण (ख) 9 मल्ल के गण और (ग) 9 लिच्छवि के गण, कुल= 36 थे। इनमें सम्मिलित सभी गणों को सामान अधिकार प्राप्त था। मल्ल और लिच्छवि के गणों की संख्या एकसमान थी। मगध और वैशाली के मध्य राजनीतक स्तर से व्यापार होता था।[17] मल्ल और लिच्छवि के मध्य शासन के दृष्टिकोण से भी समानताएं दृष्टिगत होती हैं। दोनों का एक ही गोत्र वसिष्ठ था। दोनों स्थानों पर शासन गणों के संघ से संचालित किया जाता था। गण के प्रमुख राजा कहे जाते थे। किसी भी निर्णय के लिए गण के नेतृत्वकर्ता किसी हॉल (बड़े कक्ष) में एकत्रित होते थे। दोनों ही छठी सदी में विकसित हो रहे बौद्ध तथा जैन धर्म से प्रभावित थे तथा दोनों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था; क्योंकि दोनों को मगध के सम्राट अजातशत्रु से ही से भय एवं शत्रुता थी। मनु के व्रात्य में दोनों निन्दित थे।[18] काशी और कोसल भी अजतशत्रु के भय से लिच्छवि से मधुर सम्बन्ध रखते थे। महान लिच्छवि महाली एवं कोसल कुमार प्रसेनजीत दोनों तक्षशीला में एक साथ अध्ययन किए थे, जिसके कारण दोनों राज्यों में मित्रतापूर्ण व्यवहार था। जैन साहित्य मृगावती से ज्ञात होता है कि वत्स के राजा सतानिका के साथ वैशाली के चेतक की सात पुत्रियों में से किसी एक के साथ विवाह हुआ था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तत्कालीन वज्जि में विदेश नीति में सीमावर्ती एवं अन्यान्य राज्यों से व्यापार एवं सामाजिक सम्बन्ध राजनीतिक घटनाओं के कारण स्थगित नहीं होते थे।

शिक्षा – लिच्छवी के युवकों दूर–देश में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाया करते थे। तक्षशिला में शिल्पकला का अध्ययन सम्पन्न करके आने वाले युवकों को 'महाली' कहा जाता था। ये वैशाली में अपनी कला एवं ज्ञान को प्रसारित करते थे।[19] धार्मिक सहिष्णुता दृ वज्जियन धार्मिक जीवन की कुछ विशेष विशेषताएँ वज्जियन गणतन्त्र राज्य के कल्याण के लिए सात शर्ते बताने वाले बुद्ध के प्रसिद्ध कथन में निहित है– 'so long as they (Vajjians) honour and esteem and revere and support the vajjian shrines in town or country and allow not the proper offering and rites as formerly given and performed] to fall into desuetude& so long as the rightful protection] defence and support shall be fully provided for the Arahants among them] so that Arahants from a distance may enter the realm and the Arahants therein may live at ease& so long may the Vajjians be eÛpected not to decline] but to prosper-'[20] These lines breathe complete religious toleration.

नागरिकता :– वज्जियन गणराज्य में नागरिकता का नियम भी लोकतान्त्रिक था। बाहरी लोग भी वहाँ की शर्तों का अनुपालन करते हुए यहाँ की नागरिकता प्राप्त करने की योग्यता रखते थे। कात्यायन ने पाणिनि के

एक नियम में संशोधन करते हुए कहा है कि वृज्जीगण के प्रति भक्ति या श्रद्धा रखने वाले को वृजिका कहा जाएगा, भले ही वे जन्मतः वृज्जी नहीं हैं।[21] कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में कोशल के राजा द्वारा स्वयं को वृज्जी कहे जाने का उल्लेख किया है।[22] वृज्जी गठबन्धन में भी यह उल्लेख प्राप्त होता है कि उसमें वृज्जी/वृज्जी–संघ/लिच्छवि गणराज्य में विश्वास रखने वाले एवं स्वतन्त्र बाहरी गण सम्मिलित थे[23] अर्थात् नागरिकता सम्बन्धी नियम आधुनिक लोकतन्त्र की तरह वैश्विक अवधारणा से युक्त था।[24]

वज्जियन गणराज्य के नीति–निर्देशक सिद्धान्त :– गणतन्त्र की जननी वैशाली गणराज्य या वज्जि के नीति–निर्देशक तत्त्वों का वर्णन सबसे पहले बौद्ध ग्रन्थ महापरिनिर्वाण–सुत्त के आरम्भ में सांकेतिक रूप में प्राप्त होते हैं। गौतम बुद्ध द्वारा राजगृह के गृध्रकूट पर दिए उपदेश में इन सात बिन्दुओं को सप्त–सिद्धान्त कहा गया है–

1. वज्जियों को सभी गणों के साथ बार–बार सार्वजनिक सभाएँ आयोजित करनी चाहिए।
2. उन्हें परस्पर सौहार्दपूर्ण मिलना चाहिए, सौहार्दपूर्ण आगे बढना चाहिए और सौहार्दपूर्ण ही सभी उपक्रमों को सम्पन्न करना चाहिए।
3. पूर्व में सर्वसम्मति से स्थापित/अधिनियमित नहीं हो तो उस दिशा में कोई कार्य नहीं करना चाहिए। पूर्व में वज्जियन संस्था द्वारा स्थापित किसी भी अधिनियमित के विपरीत कार्य करना हो तो पहले उसे निरस्त करना चाहिए। बिना अधिनियम के कोई कार्य नहीं करना चाहिए।
4. सभी नागरिकों को वज्जियन बुजुर्गों / वरिष्ठ नागरिकों का आदर करना चाहिए। उनके अनुभवों का आदर करना, उनकी आज्ञा का पालन करना, उनके सुझावों को सुनना प्रत्येक नागरिकों को कर्तव्य समझना चाहिए। इस सप्त सिद्धान्त में विधायिका पक्ष से इतर सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण का भी वर्णन है।
5. चाहे किसी भी कूल की हो; किसी भी स्त्री या लड़की को बलपूर्वक या अपहरण करके नहीं रखा जाना चाहिए।
6. यहाँ के सभी नागरिकों एवं गणों को ग्राम, नगर या वैशाली गणराज्य में कहीं भी अवस्थित वज्जियन तीर्थस्थलों (चेटियानि) का आदर एवं सम्मान करना चाहिए। तीर्थस्थलों में पूजा एवं श्रद्धापूर्वक जो भी पद्धति प्रचलित एवं निर्धारित है, उसके उलंघन की अनुमति किसी को नहीं दी जानी चाहिए।
7. वैशाली में अरिहन्तों को उचित सुरक्षा, रक्षा एवं समर्थन दिया जाना सुनिचित किया जाना चाहिए, ताकि दूर–दराज के किसी भी क्षेत्र से आने वाले अरिहंत वज्जि के तीर्थ स्थलों में शांतिपूर्ण अपनी धार्मिक आस्था को सम्पन्न कर सकें। यद्यपि यह धार्मिक अनुपालन का राज्यादेश जैन महावीर स्वामी के समय का है, किन्तु निःसंदेह यह तथ्य समस्त बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित है कि वज्जियन गणराज्य में बौद्ध चैत्यों अथवा अन्य सभी मतों के धार्मिकता के प्रति राज्य में सद्भाव एवं सहिष्णुता की भावना थी।[25]

केन्द्रीय कार्यकारी (जीम ब्मदजतंस म्•मबनजपअम) : वैशाली अर्थात् वज्जियन गणराज्य को संचालित करने के लिए केन्द्रीय कार्यकारी परिषद् का निर्माण किया जाता था, जिसमें चार प्रमुख पद सृजित थे[26]–

1. राष्ट्रपति (राजा)
2. उप–राष्ट्रपति (उप–राजा)
3. जनरललिसिमो (सेनापति)
4. राजकोष का कुलाधिपति (भण्डागारिका)[27]

इससे स्पष्ट है कि लोकतान्त्रिक गणराज्य को संचालित करने के लिए सभी गणों के अधिपतियों (शासकों) के अतिरिक्त एक केन्द्रीय कार्यकारी समिति या परिषद् था जिसके उपर्युक्त चार प्रमुख अधिकाधिक होते थे। इन्हें ही प्रशासनिक, कार्यकारी, सैन्य एवं न्यायिक के सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे।[28] वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो गणतान्त्रिक व्यवस्था विधिवत् एवं न्यायसंगतरूप में क्रियमाण थी।

इन सभी पदों पर आधिकारिक का चयन चुनाव के माध्यम से किया जाता था।[29] इस समिति की शक्तियाँ विशेष रूप से विदेश नीति सम्बन्धी निर्णय नौ सदस्यों वाली गणराजा में निहित होती थी।[30]

केन्द्रीय विधानमण्डल – वज्जियन (लिच्छवि) गणराज्य के केन्द्रीय विधनामण्डल अथवा संसद में कुल 7790[31] सदस्य होते थे। प्रत्येक सदस्य को राजा कहा जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा कोई लिच्छवि ही होता था।[32] जातक के कथा संख्या 149 से लिच्छवियों के संविधान का एक अंश प्राप्त होता है जो अत्यन्त रुचिकर है– 'Of the kings who were permanently residing and ruling there (i-e- in Vaishali) the number was seven thousand seven hundred and seven- The Number of Upa-Raja was the same, as also the number of Senapaties and Bhandagarikas (treasurer)". इससे यह संकेत मिलता है कि वज्जियन गणराज्य अर्थात् वैशाली में कुल 7707 राजा, 7707 उप–राजा, 7707 सेनापति एवं 7707 भण्डागारिका होते थे। अर्थात् केन्द्रीय विधान सभा के प्रत्येक गण में एक वायसराय, एक सेनापति एवं एक कोषाध्यक्ष होते थे, जिससे संचालन में सुगमता एवं दायित्व निर्वहन में सरलता हो सके।

लेकिन प्रतिनिधियों की इतनी बड़ी संख्या इसके क्रियान्वयन को लेकर विवाद एवं इसकी जटिलता को भी इंगित कर रही है। यह भी सम्भव है कि ये सभी गण के गठन के आधारभूत परिवारों की संख्या अभिप्रेत हो।[33] ध्यातव्य हो कि ऐसा पहली बार वैशाली (लिच्छवि) गणराज्य में ही इतनी अधिक संख्या में जनप्रतिनिधियों का उल्लेख हुआ है, ऐसा नहीं है। ब्यास नदी के किनारे पर यौधेय नामक गणराज्य के केन्द्रीय परिषद् में भी 5000 सदस्य, एवं एथेंस यानि यूनान के असेम्बली में 42000 सदस्यों का वर्णन है, जिन्हें किसी भी प्रस्ताव पर मताधिकार का अधिकार प्राप्त था।[34] प्रत्येक सदस्य को असेम्बली में भाग लेने का अधिकार था, किन्तु वास्तविक रूप में एथेंस में 2000 से 3000 सदस्य ही उपस्थित हो पाते थे। यह कुल असेम्बली का 7 से 8 प्रतिशत ही था।[35] वहाँ के नागरिक असेम्बली के सभी सत्रों में सम्मिलित होना समय और धन की बर्बादी मानते थे।सम्भवतः हमारे भारत के वैशाली गणराज्य में भी 7000 सदस्यों में से 10 प्रतिशत ही परिषद् की बैठकों में उपस्थित हो पाते होंगे।[36]

इतिहासकार ए०एस०अल्तेकर ने वज्जियन विधान मण्डल की संख्या की व्यावहारिकता को अपने दृष्टिकोण से भारतीय परिप्रेक्ष्य में तर्कसंगत बनाते हुए कहा है कि, जब वैशाली में विधानसभा में 7707 ही सदस्य थे। आर्यों ने जब यहाँ आकर कब्जा कर लिया तब इन्हीं में से 7200 क्षत्रिय परिवार राज्य के जमींदार बन गए थे। वे सभी क्षत्रिय ही राजा कहलाते थे। इस परिवार का मुखिया राजधानी में रहता था, जिसका एक अपना प्रबन्धक (कोषाध्यक्ष) भी होता था। क्षत्रिय अर्थात् राजा के पुत्र स्वाभाविक ही उप–राजा या युवराज होते थे। इन अभिजात्य–वर्ग के प्रत्येक सदस्य को राजा के लिए सेना में सेवा की अनिवार्यता रहती थी, जिसके कारण प्रत्येक जमींदार (राजा) एक छोटी सी सैन्य टुकड़ी का मुखिया भी होता था। इस प्रकार से देखा जाए तो चारों स्तर पर (राजा, उप–राजा, सेनापति और कोषाध्यक्ष) 7707 की संख्या विधानमण्डल की अव्यवहारिक नहीं अपितु क्रियाशील प्रतीत होती है। प्रत्येक राजा के पास संविधानिक रूप से सैद्धान्तिक रूप में एकसमान ही शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त थे, किन्तु व्यवहार में वरिष्ठों का बोलबाला था।[37]

वैशाली गणराज्य में गणों के राजा (गणराज) का चयन वैशाली के एक विशिष्ट स्थान पर सभी राजा एकत्रित होकर अभिषेक करके चुनते थे। वह स्थान विशेष सुरक्षा में रखा जाता था।[38] जिस स्थान विशेष पर केंदीय कार्यकारी परिषद् की बैठकें होती थी, इसे 'संस्थागार' कहा जाता था।[39] अट्ठकथा ग्रन्थ के अनुसार जब वज्जियन अपने कानून–घर (House of Law)[40] में आते थे, उसमें न सिर्फ राजनैतिक अपितु साहित्यिक, शैक्षणिक, कृषि, व्यापार और धार्मिक विषयों पर भी गहन मन्थन, प्रश्नोत्तर एवं परिचर्चा होती थी।[41]

इस प्रकार कह सकते हैं कि लिच्छवि गण अर्थात् वैशाली गणराज्य एक सम्प्रभु निकाय था। यहाँ का प्रत्येक व्यवहार या निर्णय नागरिकों के हितों को ध्यान में रखकर सर्वसम्मति से निर्णित होते थे। केन्द्रीय परिषद् द्वारा कार्यकारी परिषद् सदस्यों की नियुक्ति इसी दृष्टिकोण से की जाती थी।

केन्द्रीय न्यायपालिका :– वैशाली के लिच्छवि गणराज्य के संविधान की प्रमुख विशेषता इसके न्यायिक प्रणाली में निहित है। इस व्यवस्था को इस प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है–

1. यदि किसी नागरिक पर किसी अपराध का आरोप लगाया गया तो उस मामले की प्रारम्भिक जाँच न्यायाधीशों (विनीच्छाया–महामात्त) के न्यायालय में की जाती थी। देखा जाए तो यह नागरिक मामलों के लिए नियमित अदालत होते थे जिसमें आरम्भिक एवं सामान्य अपराधों को रखा जाता था।
2. इसके ऊपर अपीलीय–न्यायालय थे, जिसकी अध्यक्षता 'वोहरिक' अथवा वकील–न्यायाधीश करते थे।
3. इनसे ऊपर उच्च न्यायालय होते थे, जिन्हें सूत्राधार या कानून के डॉक्टर कहा जाता था।
4. सबसे ऊपर अन्तिम अपील की एक परिषद् होती थी जिसमें आठ सदस्य होते थे, इन्हें अष्ट–कुलुक कहा जाता था।
5. यदि इन चारों स्तरों पर कोई दोषी सिद्ध हो जाता था तो उसे केन्द्रीय समिति के चार प्रमुख राजा, उप–राजा, सेनापति के निर्णय के लिए भेजा जाता था।

यदि वहाँ पर भी वह दोषी पाया जाता तो उसे 'पावेनी–पोत्थका' ग्रन्थ के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा दण्डित किया जाता था। परिस्थितिवश उसे क्षमायाचना यही सर्वोच्च पद राजा द्वारा दिया जा सकता था। इस प्रकार देखते हैं कि राष्ट्रपति वर्त्तमान गणतान्त्रिक व्यवस्था की तरह कार्यकारी का सर्वोच्च होने के साथ साथ सैन्य और न्याय का भी सर्वोच्च होता था।

स्थानीय सरकार :– वैसे भी उपर्युक्त विवरण बौद्ध–जैन–संस्कृत एवं इतिहासकारों के आधार पर वैशाली की राजव्यवस्था को समझाने का एक मुख्य हेतु सिद्ध हो सकता है; किन्तु स्थानीय प्रशासनिक निकायों अथवा सरकार के क्रियान्वयन सम्बन्धी कोई विस्तृत विवरण कहीं भी उपलब्ध नहीं है। वैसे अंगुत्तर–निकाय[42] में इस विषय पर प्रकाश मिलता है कि– गौतम बुद्ध लिच्छवियों के पुत्रों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि 'कुल–पुत्त' या परिवार के लिए जीवन में कैरियर के विकल्प खुले हुए है। वे शासक पदों पर समर्पित होकर राष्ट्रपति तक बन सकते हैं। वे न्याय क्षेत्र में न्यायाधीश बन सकते हैं। वे व्यापार या उद्योग करने को भी स्वतन्त्र हैं।

उपयुक्त विवेचना से यह तो स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था के उत्कृष्ट सिद्धान्तों का प्रायोगिक स्वरूप कौटिल्य के अर्थशास्त्र अथवा मौर्य या गुप्त वंश के शासनकाल अथवा राजपूताने के राजा–रजवाड़े या दक्षिण भारतीय शासकों में ही द्रष्टव्य नहीं है, प्रत्युत संसार की सबसे प्रथम गणतंत्र की जननी वैशाली की राजव्यवस्था भी अनुकरणीय हैद्य यहाँ की कार्यपालिका की संरचना, प्रत्येक गणों की एकसमान भागीदारी, सुदृढ़ न्यायव्यवस्था तथा समन्वयकारी विदेश नीति अपने आप में उत्कृष्टता को दर्शा रही हैद्य आधुनिक भारत के गणतान्त्रिक प्रणाली के निर्माण एवं क्रियान्वयन में हम सभी अमेरिका, ब्रिटिश, आयरलैंड, फ़्रांस आदि देशों का अनुकरण कर अपने संविधानिक नियमों का निर्माण करते हुए गर्वान्वित होते हैंद्य लेकिन अब आवश्यकता है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जब दुनिया राजशाही अथवा धर्माचार्यो के एकछत्र निरंकुश शासन से पीड़ित थी, उस काल में अपने भारतवर्ष के बिहार में वैशाली श्रेष्ठ गणतान्त्रिक परम्परा को स्थापित कर राजव्यवस्था में एक विशिष्ट सिद्धान्त निर्मित कर समतामूलक, सहिष्णुतावादी शासन करने की सीख दी थीद्य आज उस आलोकित अतीत को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. मझिझम–निकाय सूत्र दृ 92 (सेला सूत्र) पूज्यपाद द्वारा पाँचवी विक्रम सदी में –सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरेद्य देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान् संप्रदर्श्य विभुः।। पूज्यपाद रचित दशभक्ति, पृ. 116 आठवीं विक्रम सदी में हरिवंशपुराण में– अथ देशोऽस्ति विस्तारो जम्बूद्वीपस्य भारते।/ विदेह इति विख्यातः स्वर्गखण्डसमः श्रियः।।१।। तत्राखण्डनेत्रालीपद्मिनीखण्डमण्डनम्। सुखाम्भःकुण्डमाभाति नाम्ना कुण्डपुरम् ।।५।। हरिवंशपुराण १.२ गुणभद्र ने नौवीं विक्रम सदी में–तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति। भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनाङ्गणे।।२५१।। राज्ञः

कुण्डलपुरेशस्य वसुधारापतत्पृथुः। सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः सिद्धार्थस्य दिनं प्रति।।२५२।। उत्तरपुराण ७४, अथास्मिन् भारते वर्षे विदेहेषु महर्द्धिषुद्य आसीत्कुण्डपुर नाम्ना पुरं सुरपुरोपमम्द्यद्य पुराणसंग्रह से।

2. महापरिनिर्वाणसुत्त।
3. P.H.A.I., p. 95.
4. P.H.A.I., p. 82-83.
5. अष्टाध्यायी 4.2.131।
6. Bhuddhisht Records of the Western World, Vol. II, London, pp.66.
7. V. N. Smith, Tibbetan Affinities of the Lichchhavis, Indian Antiquary, Vol. 32, pp. 233-236. And Kshatiya Clans, pp. 29-32.
8. Bauddhayana (in hind), pp. 104 & Puratattvanibandhavali (Allahabad 1937), pp. 107-114.
9. Puraatattva-nibandhavali, p. 108; buddhayan, p. 493.
10. Hoernle, Uvasagadasao, II, Appendix, p.58
11. S.B. E., 45, p. 339.
12. Ramayana I. 47. 11-12.
13. Mahabharata XIV. 4.3.
14. Mahabharata I, 113.28, Mahabharata II, 29.4, 30.13 (Varmakas ans Sharmakas), 29.4, 30.15, 30.22
15. H. C. Raychaudhuri, P.H. A. I., p. 120, n. 3.
16. Hiouen Thsang, II, 402(चीनी यात्री ह्वेंत्ससांग द्वारा लिखित)
17. Digha-Nikaya I.6 (Mahaali Sutta)= Dialogues p.197
18. अर्थशास्त्र XI , मनुस्मृति X, 22।
19. धर्मपाद पृ० २११।
20. Chetiyaani (Yakkha-chetiyaani & Dialogues, II, p. 80.
21. अष्टाध्यायी 4/3/100।
22. अर्थशास्त्र XI.1।
23. शुक्रनीति II, 1.13।
24.
25. Hindu Polity, 3rd edition, p.100.
26. अठ्ठकथा IV, 16।
27. जातक, I, p. 504।
28. Hindu Polity. 3rd edition, p.45.
29. ललितविस्तर eng- translation, p-39, P-H-A-I-, p- 125.
30. कल्पसूत्र 128।
31. जातक कथा संख्या 149 – विनयपिटक, महावग्गा, VIII, 1.1.1।
32. जातक कथा संख्या 149, 301 – सूत्रकृतांग S-B-E., 45, p. 339, कौटिल्य अर्थशास्त्र XI.1।
33. Hindu Polity. 3rd edition, p.45.
34. McCrindle, Ancient India as Described in Classical Literature, p. 45
35. Homage, p.70, State and Government in Ancient India, 2nd Edition, p. 115.
36. Mahavagga, VIII, i.i.i & Hindu Polity, 3rd edi. P. 72.
37. Homage, p. 69.
38. Dialogues, II, p. 80.
39. Jataka, IV, p. 148.
40. Hindu Polity, 3rd edi. P. 45.
41. Vinaya Pittaka, I, p. 233, p. 233. P. 318, Dialogues, II, p. 16 (Story of Patikaputta)
42. अंगुत्तर–निकाय, III, च. 76।

★

भारतीय ज्ञान परंपराः आयामगत वैविध्य
(हिन्दी साहित्य के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सोनिया शर्मा*
डॉ. समीर**

प्रस्तावना :– भारतीय ज्ञान परंपरा, को भारतीय चिंतन या भारतीय दर्शन के रूप में भी जाना जाता है। यह प्राचीन काल से चली आ रही ज्ञान और विचारों की एक प्रभूत और वैविध्यपूर्ण ज्ञान प्रणाली है। इसकी भूमिका भारत और सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान और चिंतन के विकास में एक महत्वपूर्ण अनुदानकर्ता की रही है। आज ज्ञान–विज्ञान और चिंतन के क्षेत्र में परिव्यात समस्त अवधारणाओ, संकल्पनाओं और नवीन खोजों के मूल में इस ज्ञान परंपरा की सहभगिता किसी न किसी रूप में अवश्य दृष्टिगोचर होती है। यही इसकी उपादेयता का स्वतः सिद्ध प्रमाण है।

भारतीय ज्ञान परंपराः विविध आयामिता :– भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्षों से विकसित एक बहुआयामी विरासत है। यह न केवल प्राचीन भारत की दार्शनिक, धार्मिक और वैज्ञानिक प्रतिभा का परिचायक है, बल्कि कला, साहित्य, गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, और इंजीनियरिंग जैसे विविध आयामों को अपने में समेटे हुए है। इस परंपरा की इस बहुआयमिता को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत व्याख्यायित विश्लेषित कर देखा जा सकता है।

1. **वैदिक साहित्य :** इसके अंतर्गत वेद सबसे प्राचीनतम भारतीय ग्रंथ, जिनमें देवताओं की स्तुति, यज्ञों के मंत्र, और दार्शनिक विचार शामिल हैं। उपनिषद वेदों के अंतिम भाग, जिनमें आत्मा, ब्रह्म, और मोक्ष जैसे दार्शनिक विषयों पर चर्चा की गई है। ब्राह्मण ग्रंथ वेदों के गद्य भाग, जिनमें वेदों के मंत्रों की व्याख्या और यज्ञों के विधि–विधानों का वर्णन है और आरण्यक वेदों के वे भाग जो वनों में पढ़े जाते थे, जिनमें दार्शनिक और आध्यात्मिक चिंतन शामिल है।
2. **षड्दर्शन :** इनमे सांख्य द्वैतवादी दर्शन, जो प्रकृति और पुरुष के भेद पर बल देता है। योग चित्तवृत्तिनिरोध (मन को वश में करना) का मार्ग, जो अष्टांग योग के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करने का साधन बताता है। न्याय ज्ञान के स्रोतों और प्रमाणों की मीमांसा करने वाला दर्शन। वैशेषिक विश्व के भौतिक तत्वों का विश्लेषण करने वाला दर्शन, जो परमाणुवाद का समर्थन करता है। मीमांसा वेदों की प्रामाणिकता और धर्म के स्वरूप पर बल देने वाला दर्शन और वेदांत ब्रह्म की एकता और अद्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाला दर्शन आदि समाहित हैं।
3. **बौद्ध और जैन धर्म :** यह दो ऐसे धर्म हैं जिन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा की अविरल धारा को अपने सिद्धांतों की निर्मलता से पोषित कर उसे गति दी। बुद्ध की शिक्षा चार सत्यों और अष्टांगिक मार्ग पर चलने का रास्ता बताती है। दूसरा जैन धर्म जो जैन तीर्थंकरों की शिक्षाओं अहिंसा, अनेकांतवाद, और अपरिग्रह के सिद्धांतों का पालन करने का मार्ग बताता है।
4. **पुराण और इतिहास :** इस कोटी में रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत जैसे प्रेरणास्रोत और ज्ञानपुंज जैसे ग्रंथ हैं।
5. **तंत्र साहित्य :** तंत्र, मंत्र, यंत्र, योग, और अध्यात्म जैसे विषयों पर केंद्रित ग्रंथ।
6. **विविध कलाएं :** संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्रकला और मूर्तिकला जैसी कलाएं।
7. **आयुर्वेद** : भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद है। जो 5,000 वर्षों से अधिक समय से प्रचलित है। इसमें जड़ी–बूटियों और प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से रोगों का इलाज किया जाता है।
8. **गणित** : भारत में गणित के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, और भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञों ने गणित के कई महत्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।
9. **खगोल विज्ञान** : भारत प्राचीन काल से ही खगोल विज्ञान का एक मुख्य केंद्र रहा है। ग्रहों, नक्षत्रों, और उनकी गति के बारे में भारतीय खगोलविद प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण जानकारी देते आ रहें है।

*** अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, स्वामी प्रेमानन्द महाविद्यालय, मुकेरियां–पंजाब।**
**** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा–पंजाब।**

10. **काव्यशास्त्र :** भारतीय काव्यशास्त्र, जिसे साहित्यशास्त्र या अलंकारशास्त्र भी कहा जाता है, काव्य और साहित्य का वह शास्त्र है जो काव्य के स्वरूप, उसके तत्वों, उसके भेदों, उसके गुणों–दोषों, और उसके प्रयोजनों का विवेचन करता है। यह भारतीय चिंतन की एक समृद्ध और प्राचीन परंपरा है, जो वेदों और उपनिषदों से लेकर आज तक निरंतर विकसित होती रही है।
11. **ज्योतिष :** ज्योतिष, खगोलीय पिंडों और मानव जीवन के बीच संबंधों का अध्ययन करने वाली एक प्राचीन भारतीय विद्या है। वेदों के ज्ञानचक्षु का प्रतीक ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि स्वास्थ्य, धन, संबंध, और करियर आदि के बारे में जानकारी प्रदान करना है।

भारतीय ज्ञान परंपरा के उपर्युक्त आयामों ने जहां भारतीय कला, साहित्य, दर्शन, और विज्ञान को समृद्ध किया वहीं, भारतीय समाज और संस्कृति को प्रभावित भी किया है। यह भारतीय चिंतन और भारतीय दर्शन की, प्राचीन काल से चली आ रही ज्ञान और विचारों की एक सशक्त धारा है, जिसने भारत और सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान और चिंतन के विकास को एक नयी गति दी है।

हिन्दी साहित्यः भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में

हिन्दी साहित्य अपनी कुक्षि में भारतीय ज्ञान परंपरा के अनमोल खजाने को सँजोये हुए है। इसने प्राचीन भारतीय ग्रंथों के मूल्यों, सिद्धांतों और सामाजिक मान्यताओं आदि को साहित्य के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया और उन्हें एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भी स्थापित करने का कार्य किया है। हिन्दी साहित्य मे वर्णित भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध परिदृश्य को साहित्य के निम्न कालों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है–

आदिकालीन हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा परिप्रेक्ष्य में :– 10वीं से 14वीं शताब्दी तक के विस्तृत कालखंड मे व्याप्त आदिकालीन हिन्दी साहित्य, भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार–प्रचार का एक साहित्यिक काल है। इस की धार्मिक और लौकिक साहित्यिक काव्य धाराओं में भारतीय ज्ञान के विविध पहलुओं का प्रचार प्रसार हुआ है। जिनमें सिद्ध, नाथ, जैन और रासो साहित्य प्रमुख हैं। सिद्ध साहित्य यह बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा के सिद्धों कवियों का साहित्य है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के गूढ़ पहलुओं को तांत्रिक और यौगिक सिद्धांतों के अनुरूप सहज साधना, काया–साधना, और शून्य की अवधारणा को भाषिक प्रतीकों और रहस्यमय रूप में प्रस्तुत करता है। नाथ साहित्य नाथ साहित्य, गोरखनाथ और उनके अनुयायियों द्वारा रचित वह साहित्य है, जिसने भारतीय ज्ञान परंपरा के आध्यात्मिक और रहस्यवादी तत्वों को अपनी रचनाओं में हठयोग, कुंडलिनी जागरण, और नाद–बिंदु के माध्यम से प्रतिबिंबित किया है। जैन साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के दार्शनिक और नैतिक मूल्यों को महत्व देने वाला जैन साहित्य, जैन धर्माचार्यों और कवियों द्वारा रचित वह साहित्य है जिसमें अहिंसा, अनेकांतवाद, और अपरिग्रह जैसे सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है। रासो साहित्य चारण भाटों द्वारा रचित रासो साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं को राजाओं की वीरता, प्रेम, और युद्ध के माध्यम से प्रस्तुत करने वाला भारतीय मूल्यों, आदर्शों, और रीति–रिवाजों का साहित्य है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य ने इन साहित्यिक काव्यधाराओं के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न ज्ञान बिंदुओं को रेखांकित किया है। यह तांत्रिक, यौगिक, आध्यात्मिक, रहस्यवादी, दार्शनिक, नैतिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक जैसे भारतीय ज्ञान सिद्धांतों के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को संवर्धित करता रहा है।

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा परिप्रेक्ष्य में :– भक्तिकाल हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्धि का एक उत्कृष्ट कालखंड है। इस काल के कवियों की साहित्यिक रचनाओं में भारतीय ज्ञान परंपरा (वेदों, उपनिषदों, और अन्य दार्शनिक ग्रंथों और आध्यात्मिक) के तत्वों की सशक्त अभिव्यक्त देखने को मिलती है। है। भक्तिकाल की रचनाएं विभिन्न धर्मों और संप्रदायों की रचनाएं हैं, जो भारतीय ज्ञान परंपरा की धार्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक अमूल्य ज्ञान धरोहर को अपने में सँजोए हुए है। साहित्यकारों ने निर्गुण और सगुण कवयधाराओं के माध्यम से भारतीय चिंतन के एकेश्वरवाद, आत्मा की अमरता, कर्म–सिद्धांत, ईश्वर–प्रेम, भक्ति, और समर्पण जैसे तत्वों को काव्य रचना का आधार बना कर सामाजिक समरसता और ईश्वरीय सत्ता के संदर्भों को वाणी दी है। उदाहरणा स्वरूप – कबीर कबीर वाणी वेदों और उपनिषदों के ज्ञान को सरल भाषा में प्रस्तुत कर समाज को सही दिशा की ओर अग्रसरित करती है। कबीर की कविता भारतीय ज्ञान चिंतन के अपरिग्रह, दान, संतोष, समत्व भाव, सांप्रदायिक सद्भावना आदि जैसे गुणों को आत्मसात कर सामाजिक परिवर्तन की बात करती है– "एक ज्योति से सब उतपन्ना, कौन ब्राह्मण कौन सुदा।"[1] रैदास यह अपने रचनकर्म में सामाजिक समरसता,जातिविहीन तथा समतामूलक समाज, और सद्भावपूर्ण मानवता के साथ–साथ कर्म के सिद्धांत को विशेष रूप से महत्व देते हैं– "करम बंधन में रमि

रहियो, फल की ना तजो आस। करम मानुष का धरम है, सत भाषै रविदास।।"[2] नानक नानक ने अपनी रचनाओं में ईश्वर के नाम के स्मरण को मोक्ष का मार्ग बताया है। उन्होंने गुरु को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है– "जिह घट सिमरन राम को सो नरु मुकता जानु, तिहि नरु हरि अंतरु नहीं, नानक सची मानु।।"[3] तुलसीदास भक्तिकालीन साहित्य और भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख स्तंभ तुलसीदास जी ने अपनी सहित्यिक रचनाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति, धर्म, और दर्शन को भारतीय जन मानस के जीवन का अंग बनाया 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहि अधमाई।"[4] सूरदास कृष्ण भक्त कवियों की श्रृंखला में सूरदास ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में कृष्ण की लीलाओं के माध्यम से भारतीय चिंतन के तत्वों को वाणी दी है। भक्ति और मोक्ष मार्ग के विषय में लिखते हैं – "तत्व भजे वैसी हवं जैहों, पारस परसै मोहु। मेरो बचन सत्य करि मानौ, छोड़ो सबको मोहु।"[5] जायसी जायसी प्रेम के महत्व को उजागर करते हुए इसी के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए लिखते हैं – "जब लगि बिरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम। तब लगि हाथ न आव तप, करम, धरम, सत, नेम।।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं की भारतीय ज्ञान परंपरा की स्रोतस्विनी में भक्तिकाल काव्य एक अखंड प्रवाह के साथ प्रवाहमान होता हुआ उसके सार तत्वों को ग्रहण करता चलता है। इस काव्यधारा ने ईश्वर के सगुण और निर्गुण रूपों की भक्ति को लोकप्रिय बना कर भारतीय ज्ञान परंपरा को एक नई दिशा दी। समाज में समता, प्रेम, भक्ति, और समर्पण आदि ज्ञान तत्वों को जन–जन तक पहुंचाकर मानवीय मूल्यों को स्थापित किया।

रीतिकाल हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में :– रीतिकाल साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा एक नया रूप देखने को मिलता है। इस काल के साहित्य में भारतीय मूल्यों, आदर्शों, और रीति–रिवाजों को राधा–कृष्ण के प्रेम, नायिका–भेद, अलंकारों के प्रयोग आदि के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा के नवीन आयामों के साथ स्थापित किया गया। रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की अभिव्यक्ति के स्रोत इस प्रकार हैं ;–पौराणिक कथाएँ और पात्र रीतिकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में रामायण, महाभारत, पुराणों आदि की कथाओं और उनके पात्रों (राम, कृष्ण, आदि) के चरित्र–चित्रण के माध्यम से नीति, धर्म, प्रेम आदि सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। केशवदास की 'रामचंद्रिका' इसी कोटी के अंतर्गत विचारणीय है। दार्शनिक विचार भारतीय दर्शन के विभिन्न पहलुओं आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, कर्म, पुनर्जन्म आदि विचारों को घनानंद की रचनाओं में अद्वैत वेदांत के रूप में देखा जा सकता है। नीति और आचार भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुरूप बिहारी के दोहों में नीति और आचार संबंधी विचारों को अपनाने का आग्रह है। "कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ। जगतु तपोबन सौ कियौ दीरघ– दाघ–निदाघ।।"[7] ज्योतिष और आयुर्वेद भारतीय चिंतन के पहलुओं ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों, विभिन्न रोगों और उनके उपचार की जानकारी और प्रभाव का उल्लेख इन कवियों की रचनाओं मे हुआ है। देव की रचनाएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कला और संगीत इस काल के साहित्यकारों ने कला और संगीत के माध्यम से भारतीय ज्ञान को प्रदर्शित किया है। भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला और विभिन्न रागों, तालों तथा वाद्य यंत्रों का उल्लेख पद्माकर की रचनाओं मे देखने को मिलता है। भक्ति और प्रेम केशवदास और घनानन्द की कविता भक्ति और प्रेम के श्रृंगार और वियोग पक्ष की कविता है।

रीतिकाल में भारतीय ज्ञान परंपरा को एक नए रूप में प्रस्तुत किया गया। इस काल के कवियों ने दरबारी साहित्य और श्रृंगारिक काव्य के माध्यम से भारतीय मूल्यों, आदर्शों, और रीति–रिवाजों और अन्य सिद्धांतों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया। उन्होंने राधा–कृष्ण के प्रेम को लौकिक प्रेम के रूप में चित्रित करते हुए भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रेम और भक्ति के तत्वों को प्रस्तुत किया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा परिप्रेक्ष्य में

आधुनिक काल (लगभग 19वीं शताब्दी से अब तक) में भारतीय ज्ञान परंपरा का विकास और अभव्यक्ति साहित्यिक युगों और साहित्यिक वादों के साहित्य में प्रतिबिंबित हुई है। इनमें भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता प्रमुख हैं।

1. **भारतेन्दु युग (1850–1900) :–** यह युग प्राचीन भारतीय ग्रंथों, के अध्ययन और पुनरुत्थान का युग है । इस कालखंड का साहित्य इन ग्रंथों के मूल्यों और आदर्शों की प्रस्तुति का साहित्य है। यहां प्राचीन ग्रंथों के पुनरुत्थान, राष्ट्रीय चेतना के विकास, सामाजिक सुधार, धार्मिक सुधार, कला और संस्कृति के पुनरुत्थान आदि संदर्भों मे भारतीय चेतना के स्वरूप को देखा जा सकता है। उदाहरण भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'भारत दुर्दशा' नाटक में प्राचीन भारतीय मूल्यों के ह्रास और राष्ट्रीय एकता का आह्वान है, 'निज भाषा उन्नति अहै' कविता में हिंदी भाषा के महत्व और इसे राष्ट्रीय भाषा के रूप में अपनाने का

आग्रह, 'अंधेर नगरी' नाटक में भारतीय ज्ञान परंपरा के न्याय, समानता, और बंधुत्व, जैसे मूल्यों का उपयोग कर समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया, प्राचीन भारतीय कला, संगीत, और नृत्य को पुनर्जीवित करने के 'कवि वचन सुधा' पत्रिका में भारतीय कला और संस्कृति पर लेख प्रकाशित किए। इसी काल में दयानंद सरस्वती ने धार्मिक सुधारों के आह्वान के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना कर वेदों के ज्ञान को प्रस्तुत किया।

2. **द्विवेदी युग (1900–1920) :–** इस काल की पहचान भारतीय संस्कृति और मूल्यों के ध्वजवाहक महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से है। इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी। इस युग के साहित्यकारों ने प्राचीन भारतीय आदर्शों, जैसे त्याग, तपस्या, और सेवा को अपने साहित्य मे वाणी देकर भारतीय ज्ञान परंपरा के आदर्शों को साहित्य के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया। उदाहरणः मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य में राम और सीता के चरित्रों के आदर्श रूप, माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में राष्ट्रीयता और देशभक्ति का प्रबल स्वर, प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण।
3. **छायावाद (1920–1936) :–** भारतीय ज्ञान परंपरा को नए रूपों में प्रस्तुत करने वाला यह हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण कालखंड माना जाता है। इस युग के साहित्यकारों ने प्राचीन भारतीय दर्शन, साहित्य, और संस्कृति से प्रेरणा लेते हुए अपनी रचनाओं में नवीनता और गहराई का समावेश किया। उदाहरण सुमित्रानंदन पंत की कविताओं में प्रकृति के सूक्ष्म और गहन चित्रण में भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक तत्वों का समावेश, जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भारतीय इतिहास और पौराणिक कथाओं, मिथकों और प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान, 'चंद्रगुप्त मौर्य' और 'स्कंदगुप्त' जैसे नाटकों में प्राचीन भारतीय गौरव का प्रस्तुतिकरण आदि ।
4. **प्रगतिवाद (1936–1947)** :– यह मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित युग था। इस युग में भारतीय ज्ञान परंपरा को एक नए दृष्टिकोण से देखा गया और सामाजिक परिवर्तन के लिए इसका उपयोग किया गया। उदाहरण प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में भारतीय समाज और संस्कृति का चित्रण है। उन्होंने 'गोदान' और 'गबन' जैसे उपन्यासों में भारतीय जीवन मूल्यों और परंपराओं को दर्शाया है। इसी प्रकार निराला की "राम की शक्ति पूजा" में भारतीय धर्म ग्रंथों और दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है।
5. **प्रयोगवाद और नई कविता (1947–1960) :–** प्रयोगवाद और नयी कविता हिंदी साहित्य के दो महत्वपूर्ण काव्य आंदोलन थे जिन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा को कई तरह से प्रभावित किया। इन दोनों आंदोलनों का सांस्कृतिक संदर्भ भारतीय समाज और साहित्य के विकास को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। उदाहरण अज्ञेय की कविताओं 'असाध्य वीणा', "एक बूंद" में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और बोद्ध दर्शन के प्रभाव को नए रूप में प्रस्तुत किया है।
6. **समकालीन साहित्य (1960 के बाद)** :– समकालीन हिन्दी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की गहरी छाप देखने को मिलती है। देवदत्त पट्टनायक की 'सीता एक योद्धा राजकुमारी' और 'महाभारत एक आधुनिक व्याख्या' जैसी रचनाएँ प्राचीन कथाओं को समकालीन दृष्टिकोण से देखती हैं।

निष्कर्ष :– अतः भारतीय ज्ञान परंपरा भारत की अमूल्य धरोहर के रूप में प्राचीन काल से ही बहुआयामी संदर्भों में हमारे बीच उपस्थित रही है। जिसमें से साहित्य इस ज्ञान परंपरा का महत्वपूर्ण आयाम है। आदिकाल में सिद्धों नाथों से चलकर मध्यकाल के भक्त कवि तथा रीतिकालीन कवियों से होते हुए आधुनिक काल तक भारतीय ज्ञान परंपरा सम्पूर्ण रूप से साहित्य में देखी जा सकती है। सभी साहित्यकारों ने अपने अपने दृष्टिकोण से प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों एवं सिद्धांतों को साहित्य के माध्यम से लोगों तक पहुंचाने का कार्य किया और आज भी हिन्दी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा को अपनी कुक्षि में सँजोय हुए जनमानस तक इसके महत्व को रेखांकित कर रहा है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, चंद्रलोक प्रकाशक, कानपुर, 2015, पृष्ठ –134।
2. कंवल भारती, संत रैदास एक विश्लेषण, बोद्धिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ. प्र., द्वि. सं. 2000, पृ. सं. 165।
3. संपा. टंडन, प्रो. पूर्णचंद टंडन, संत परंपरा और गुरु नानक देव, हेमादि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2024, पृष्ठ–149।
4. गिरी, स्वामी श्री अखिलेश्वरनन्द, मानस मंजूषा, महादेवी ज्ञान मंदिर, नई दिल्ली, संस्करण –2004, पृष्ठ –14।
5. डॉ० हरबंशलाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य, भारत प्रकाशन मन्दिर (रजि०), अलीगढ़, संस्करण–1995, पृष्ठ–336।
6. सिंह, रविनंदन, जायसी आलोचना के निकष पर, एकेडेमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद, 2016, पृष्ठ–204
7. रत्नाकर', जगन्नाथदास; बिहारी रत्नाकर; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–211001; संस्करण 2008; पृष्ठ. 226; दोहा संख्या – 489।

✿★✿

कोलरिज के काव्य-संबंधी सिद्धांत

डॉ. योजना कालिया*

सैमुएल टेलर कोलरिज की गणना उन प्रतिभाशाली लोगों में की जाती है, जिनको प्रकृति ने विशाल मस्तिष्क, तीव्र विवेक–शक्ति एवं मनन–चिंतन की विशिष्ट प्रवृत्ति से विभूषित किया है। उन्होंने अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय से उस विशाल मस्तिष्क को विविध भाषा–साहित्य, दर्शन, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, तत्वमीमांसा के गहन अध्ययन से संपन्न बना दिया था। परंतु वह एक संतप्त प्राणी थे, जिन्हें जीवन पर्यंत अर्थाभाव झेलना पड़ा। इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व में भी कुछ ऐसी कमियाँ थीं, जिनके कारण उनकी काफी आलोचना होती है। जैसे कि उनमें इच्छाशक्ति की कमी थी, जिसकी वजह से वे अपने महान संकल्पों को कार्य रूप में परिणत करने में निरंतर असफल रहे। इसके साथ ही शारीरिक दुर्बलताएँ भी असफलताओं का प्रमुख कारण रहीं, जिनसे उभरने के लिए उन्होंने अफीम जैसे नशीले पदार्थों का व्यसन भी अपनी जीवनशैली में पाल लिया, जिस कारण उनका पारिवारिक जीवन भी विभिन्न कटुताओं का ही प्रतिरूप था। धन के अभाव के चलते उन्हें दोस्तों और प्रकाशकों से ऋण लेने के लिए विवश होना पड़ता था, जिसके परिणामस्वरूप मित्रों की दृष्टि में उनके सम्मान का तो ह्रास होता ही था, साथ ही प्रायः प्रकाशक उनसे अपनी इच्छा के अनुसार लेखन करवाना चाहते थे– कुछ ऐसा जो उनकी प्रतिभा एवं प्रकृति–लेखन के अनुकूल न होता था। अपने एक मित्र को पत्र के माध्यम से अपनी व्यथा वे यूँ कहते हैं– "रचना ऐच्छिक व्यापार नहीं है; इसको करने की आवश्यकता और अनिवार्यता ही मुझे इसके करने की शक्ति से वंचित कर देती है। यदि मेरे पास पर्याप्त धन होता तो मैं अवश्य ही बहुसर्जक लेखक होता।" उन्होंने अपने लोकप्रिय काव्य Desetion : An Ode में लिखा है कि उनका हृदय एक घनीभूत ऐसी पीड़ा से आक्रांत है जिसकी व्याख्या असंभव है। इस मानसिक यातना से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने अपनी अनुभूतियों को निष्प्राण करने का प्रयास किया और सरस साहित्यानुशीलन के स्थान पर शुष्क दर्शन के जटिल जाल में अपने मन को फँसाए रखने की चेष्टा की, जिसके कारण उनकी मूल रचनात्मक शक्ति को ठेस पहुँची और धीरे–धीरे सर्जन का स्रोत शिथिल पड़ने लगा। इस प्रकार दार्शनिक उत्कर्ष के साथ ही उनका सर्जनात्मक अपकर्ष हुआ।

प्रोफेसर सेंटसबरी कोलरिज को अरस्तू और लोंगिनस के समकक्ष मानते हैं, वे कहते हैं– आई. ए. रिचर्ड्स एवं टी. एस. एलियट प्रभृति समालोचक भी कोलरिज की भावयित्री प्रतिभा का लोहा मान चुके हैं, परंतु फिर भी उनकी उधार लेने की प्रवृत्ति को उनका मुख्य दोष माना जाता है। यह उधार धन के रूप में तो है ही, विचार के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। रेने वेलेक के अनुसार कोलरिज ने जर्मन आलोचकों– कांट, शेलिंग और ए. डब्ल्यू. श्लेगल– के वाक्य विन्यासों एवं शब्दावली को बिना किसी परिवर्तन अथवा संशोधन के उद्धृत किया है। वे मानते हैं कि कोलरिज का प्रसिद्ध भाषण 'ऑन पोएट्री ऐज़ एन आर्ट' शेलिंग के एकेडमी वोरेशन ऑन का अनुवाद मात्र है। कोलरिज की सर्वोत्तम मानी जाने वाली कृति उनकी लेखमाला 'ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ जेनुइन क्रिटिसिज़्म' वास्तव में कांट के प्रसिद्ध ग्रंथ क्रिटिक ऑफ जजमेंट का स्मरण दिलाती है। ग्रीक नाटक पर लिखा गया उनका व्याख्यान श्लेगल का अनुवाद मात्र है।

रेने वेलेक के विचारों से असहमत होते हुए डॉ. विक्रमादित्य राय कहते हैं– "रेने वेलेक महोदय का यह निष्कर्ष तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। कोलरिज गंभीर विद्वान थे और कई संहित्यों का ज्ञान रखते थे। इनके अतिरिक्त प्लेटो से लेकर कांट तक के सभी दार्शनिक विद्वानों के विचारों से पूर्णतः परिचित थे। उनकी सर्जनात्मक एवं समीक्षात्मक कृतियों में अनेक अंश अन्य लेखकों से लिए गए हैं, परंतु उन सबको संगठित करके कोलरिज ने एक पूर्ण इकाई का रूप दे दिया है। कोलरिज ने जर्मन लेखकों के उन विचारों को ग्रहण किया जो उन्हें अपनी विचारधारा के अनुकूल जान पड़े और उनकी सहायता से उन्होंने जिस समीक्षा का निर्माण किया वह

*** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, विवेकानन्द महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

आज भी प्रभावशाली है, जबकि उनके जर्मन ऋणदाता काल के गर्त में विलीन हो गए हैं।" इस प्रकार कोलरिज की गरिमा अनेक सीमाओं के बावजूद अक्षुण्ण है।

अच्छे कवि के गुण बताते हुए कोलरिज कहते हैं कि कवि में कुछ ऐसी शक्ति होती है जिसका संस्कार और परिष्कार तो हो सकता है, पर उसे किसी अन्य से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस शक्ति को वह प्रतिभा कहते हैं, जो कि जन्मजात होती है। प्रतिभा और काव्यत्व अभिन्न गुण हैं। इस काव्य–प्रतिभा के अंतर्गत कोलरिज चार गुण मानते हैं–

1. **पद्य माधुर्य–** वह काव्य में संगीत के आनंद की अनुभूति को आवश्यक बताते हैं।
2. **विषय का चुनाव–** उनका मानना है कि कवि को अपने वैयक्तिक जीवन की सीमा से बाहर निकलकर विषय–वस्तु का चुनाव करना चाहिए, अपनी अनुभूतियों का नितांत तटस्थ रूप से चित्रण और विश्लेषण करना चाहिए। जब तक कवि 'स्व' में रमा रहेगा, तब तक उसकी सृष्टि उत्कृष्ट नहीं हो सकती। इसलिए उसे 'स्व' को 'पर' में बदल देना चाहिए। उसकी काव्यानुभूति व्यापक होनी चाहिए।
3. **मूर्ति विधान –** इस विषय में कोलरिज का मत है कि काव्य को एक प्रमुख भाव द्वारा निश्चित रूप प्राप्त होना चाहिए। उसमें अनेकता को एकता में बदलने की शक्ति होनी चाहिए। वही कवि उच्चकोटि का होगा जो अपनी कल्पना में जागृत भावोत्तेजना को मूर्ति–विधान द्वारा व्यक्त कर सके, अर्थात कवि मानव–जीवन के किसी एक परंतु पूर्ण अंश पर अपनी कल्पना का ऐसा प्रकाश डाल दे कि उसके सभी अवयव उचित अनुपात में उस प्रकाश के अंतर्गत स्पष्ट दिखाई दें।
4. **विचार की गहराई–** अनुभूति के साथ कवि में चिंतन की शक्ति को भी कोलरिज प्रमुख मानते हैं। उनका मानना है कि आज तक कोई ऐसा महान कवि नहीं हुआ जो कि महान दार्शनिक न रहा हो, क्योंकि कविता सभी मानवीय ज्ञान, विचारों, भावों, भावावेगों और भाषाओं का सुंदर सामंजस्य है। धार्मिक प्रवृत्ति को भी कोलरिज आवश्यक गुण मानते हैं। इतिहास–ज्ञान और प्रकृति–ज्ञान को वह कवि का वांछनीय गुण मानते हैं। उनके अनुसार किसी भी कवि की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह पाठक के मन में अपनी रचना के माध्यम से तीव्र भावों का आंदोलन कर पाता है या नहीं।

अच्छे कवि की विशेषताओं पर इस विस्तृत विवेचन के पश्चात उनकी अच्छी कविता संबंधी धारणाएं भी दृष्टव्य हैं।

1. कविता की व्याख्या करते हुए कोलरिज कहते हैंः "It is the excitement of emotion for the purpose of immediate pleasure through the medium of poetry." अर्थात् कविता सौंदर्य के माध्यम से तात्कालिक आनन्दोद्रेक के लिए भावों को उद्वेलित करती है। वह कविता को विज्ञान से भिन्न मानते हैं। विज्ञान, इतिहास और दर्शन का तत्काल लक्ष्य सत्य को व्यक्त करना है, इसके विपरीत काव्य का तात्कालिक लक्ष्य आनंद देना है। वह कविता के आनंद को विशुद्ध आनंद मानते हैं, जो किसी अन्य भाव या रुचि को संतुष्ट करने से नहीं, उसी से उद्भूत होता है।
2. वैयक्तिक आत्म–निवेदन से अधिक वह भावों के निर्वैयक्तिकीकरण पर बल देते हैं और कविता की महानता उसके पाठक के मन पर प्रभाव डालने की सामर्थ्य में समझते हैं।
3. वह कविता में बुद्धि और हृदय का सम्मिलन चाहते हैं। जो कवि हृदय तत्व और बुद्धि तत्व को कविता के बाह्य श्रृंगार और अलंकरण पर ही लुटा देता है, उनके अनुसार वह सच्चा कवि नहीं है।
4. कविता में भाव की अन्तर्धारा का निरंतर प्रभाव होना चाहिए। अच्छी कविता की कसौटी ही यह है कि पाठक उसे बार–बार पढ़े और हर बार उसे एक अभिनव आनंद प्राप्त हो।
5. कोलरिज छंद को उत्कृष्ट काव्य का महत्वपूर्ण गुण मानते हैं। उनके अनुसार बिना छंद के, संगीतात्मक अभिव्यक्ति के महान काव्य की रचना नहीं हो सकती। साथ ही वह यह भी मानते हैं कि छंद काव्य का अंतरंग गुण है, जो काव्य के सभी तत्वों को संयोजित करता हुआ अन्विति की प्रतिष्ठा करता है। इसलिए यह गुण कवि में जन्मजात होता है, अभ्यास द्वारा वह इस गुण का विकास कर सकता है, मगर मात्र अभ्यास से वह इसे अर्जित नहीं कर सकता। कोलरिज छंद को कविता का प्राकृतिक अनिवार्य अंश मानते हैं। वह मानते हैं कि छंद का उद्गम स्वतः स्फूर्त प्रयास द्वारा मन में होता है। कविता में छंद संभावित रूप से उत्पन्न होते हैं क्योंकि छंदों की उत्पत्ति उस मानसिक संतुलन से होती

है, जो भावों के वेग को नियंत्रित करने की सहज आंतरिक क्रिया द्वारा स्थापित होता है। आनंद की उपलब्धि के लिए हमारी इच्छा, हमारे भावों के आवेग का नियंत्रण करती है, इसी नियंत्रण से छंद की उत्पत्ति होती है।

कोलरिज छंद को कविता का मुख्य गुण मानते हुए कहते हैं कि यह पाठक की अनुभूति को भी अधिक सप्राण बना देता है। वह गद्य और पद्य को भिन्न मानते हैं क्योंकि गद्य के भावों और पद्य के भावों में भिन्नता है, इसलिए उनकी अभिव्यंजना पद्धतियाँ भी भिन्न हैं। अर्थात् कविता में छंद स्वतः निर्मित होने चाहिए, ऊपर से जोड़े गए नहीं।

6. कोलरिज के अनुसार उत्कृष्ट रचना में एक प्रधान भाव का गुण भी होना चाहिए, अर्थात उसमें एक प्रधान भाव हो जो उसके सभी बिंबों को, सभी घटनाओं आदि की अनेकता को एक सूत्र में बाँध सके। रचना में अन्विति का सिद्धांत अत्यंत प्राचीन सिद्धांत है। कोलरिज का मानना है कि बिंब चाहे कितने ही सुंदर एवं प्रकृति के अनुरूप क्यों न हों, उनमें संबद्धता का होना अनिवार्य है और यह संबद्धता प्राप्त होती है एक प्रधान भाव से।
7. कोलरिज कवि को अनिवार्यतः एक दार्शनिक मानते हैं। इस प्रकार कविता संपूर्ण मानव ज्ञान, मानवीय विचारों, मानवीय आवेगों, भावों एवं भाषा की चरम परिणति है। दर्शन या ज्ञान का यह महत्व वस्तुतः कवि–शिक्षा से संबंध रखता है, क्योंकि इसका आधार कवि का व्यक्तित्व है।

काव्य का कला पक्ष

काव्य के कला पक्ष का मूल्यांकन करते समय कोलरिज ने अरस्तू के सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए उनकी दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार, सामान्यतः कवि सृष्टि या प्रकृति का अनुकरण करता है, परंतु यह अनुकरण केवल बाह्य रूपों पर आधारित नहीं होता। वास्तव में, कलाकार को उस तत्व का अनुकरण करना चाहिए जो वस्तुओं के अंतर्निहित स्वरूप में निहित होता है– जो प्रकृति के विविध रूपों और चित्रों में सक्रिय रहता है तथा प्रतीकों के माध्यम से हमें अपनी स्थिति का बोध कराता है। यही है प्रकृति की अंतरंग शक्ति या आत्मा। उनके अनुसार, जिसे हम अनुकरण कहते हैं, वह वास्तव में आत्माभिव्यक्ति होती है, क्योंकि मानव मन और प्रकृति का मूल तत्व अभिन्न है। यदि पाठकों के लिए काव्य जीवन अथवा प्रकृति का अनुकरण है, तो कवि के लिए वह सृष्टि–प्रक्रिया प्रतीकीकरण का रूप धारण कर लेती है, क्योंकि इस प्रक्रिया में कवि अपने ज्ञान और कौशल को बाह्य पदार्थों में समाहित कर देता है, जिससे बाह्य प्रकृति कवि के मानस व्यापार की प्रतीक बन जाती है।

कोलरिज भी अरस्तू की भांति काव्य को सार्वभौमिक मानते हैं। जो रचना प्रतिनिधित्व और सार्वजनीनता से रहित होती है, वह भाषा की श्रेष्ठता के बावजूद काव्य नहीं कही जा सकती, क्योंकि कविता वास्तव में एक आदर्श सृष्टि है जो सभी आकस्मिक और गौण तत्वों को अपनी परिधि से बाहर कर देती है। काव्य का माध्यम भाषा है, और भाषा विभिन्न शब्दों का समूह है, जिसे गद्य और पद्य लेखक अपनी आवश्यकतानुसार प्रयोग करते हैं। अंतर केवल इतना है कि गद्य में सामान्य शब्द कलात्मक क्रम में सजाए जाते हैं, जबकि पद्य में श्रेष्ठतम शब्द श्रेष्ठतम क्रम में रखे जाते हैं। यहाँ 'श्रेष्ठतम शब्द' से तात्पर्य है वह शब्द जो अपने स्थान पर अनिवार्य हो, अर्थात जिसका विकल्प अर्थ की पूर्णता को बाधित करे। इसलिए कोलरिज वास्तविक काव्य का अनुवाद असंभव मानते हैं, क्योंकि शब्द–परिवर्तन से काव्य की आत्मा नष्ट हो जाती है। उनके अनुसारः "Poetry is the best words in the best order," जबकि गद्य के लिए वह मानते हैंः "Prose is words in their best order."

कोलरिज वड्र्सवर्थ की उस मान्यता से असहमत हैं जिसमें वे काव्य और गद्य की भाषा में कोई तात्त्विक भेद नहीं मानते और भाषा को जनसामान्य में प्रयुक्त रूप ही स्वीकार करते हैं। कोलरिज का मानना है कि जैसे तर्कप्रधान एवं विचारात्मक रचनाओं की भाषा बोलचाल से भिन्न होती है, उसी प्रकार गद्य और पद्य की भाषा में और भी अधिक भेद होना चाहिए। अतः वे वड्र्सवर्थ के दोनों विचारोंकृगद्य–पद्य की भाषा में कोई तात्त्विक भेद नहीं है, और कविता की भाषा जनसामान्य की चयनित भाषा होनी चाहिएकृका खंडन करते हैं। उनका मत है कि प्रत्येक व्यक्ति की भाषा उसके ज्ञान, चिंतन और भावनात्मक गहराई के कारण दूसरे से भिन्न होती है। समुदाय विशेष, पारिवारिक, क्षेत्रीय और व्यावसायिक भिन्नताओं के कारण भी भाषा में विविधता आती है। कोलरिज के अनुसार, यदि कोई सिद्धांत शिक्षित–अशिक्षित, ग्रामीण–नागरिक सभी पर समान रूप से लागू नहीं हो सकता, तो

'जनसामान्य की भाषा' का कोई निश्चित स्वरूप निर्धारित करना संभव नहीं है। इसलिए उनका विश्वास है कि सार्वजनिक भाषा का कोई एक रूप संभव नहीं है।

कल्पना संबंधी दृष्टि

संपूर्ण रूमानी आलोचना भाव, आवेग और आनंद को प्रमुख मानती है। कोलरिज भी आनंद को काव्य की मूल उपलब्धि मानते हैं, साथ ही ज्ञान और पांडित्य को भी स्वीकार करते हैं। उनकी यह मान्यता उनकी कल्पना की अवधारणा पर आधारित है, जो उनके अनुसार एक ऐसी शक्ति है जो भाव और विचार– जो सामान्यतः विरोधी माने जाते हैं– के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। चूंकि कल्पना एक आध्यात्मिक शक्ति है, इसलिए वह आत्मा की मूलभूत एकता को सहजता से ग्रहण कर उसे अभिव्यक्त करने में समर्थ होती है।

कोलरिज से पूर्व की आलोचना में कवि की उस शक्ति की चर्चा होती थी जिससे वह विविध विचारों और भावों को संयोजित कर नवीन बिंबों की रचना करता था। इसके लिए 'फैंसी' (ललित कल्पना) और 'इमेजिनेशन' (कल्पना) शब्दों का उपयोग हुआ करता था। ड्राइडेन ने 17वीं शताब्दी में इन दोनों शब्दों का समान रूप से उपयोग किया, परंतु कोलरिज ने इन दोनों में स्पष्ट और वैज्ञानिक अंतर प्रस्तुत किया, जो आगे चलकर साहित्य–आलोचना में मान्य हो गया।

कल्पना के दो भेदः प्राथमिक कल्पना एवं गौण या विशिष्ट कल्पना।

कोलरिज ने दिवास्वप्न में बिंबों के निर्माण की शक्ति को 'ललित कल्पना' कहा और कविता में प्रयुक्त रचनात्मक बिंबों की शक्ति को 'कल्पना'।

ललित कल्पना (Fancy): यह एक यांत्रिक प्रक्रिया है जो वस्तुओं को संग्रहित करती है, संयोजित करती है, लेकिन कोई नई रचना नहीं करती। यह स्मृति की एक शाखा है और रचनात्मक नहीं होती। कोलरिज इसे देश–काल में बंधी, यांत्रिक और जड़ शक्ति मानते हैं।

कल्पना (Imagination): यह आत्मा की शक्ति है जो रचनात्मक, सजीव और सर्जनात्मक होती है। यह बिंबों को जोड़ने के बजाय उन्हें एकीकृत करती है, उनमें जीवन का संचार करती है। कोलरिज इसे उच्चतर और दिव्य शक्ति मानते हैं। कल्पना रचना का मूल तत्व है और यथार्थ को आदर्श रूप में पुनर्निर्मित करने में सहायक होती है। इसके लिए कोई बाहरी नियम आवश्यक नहींकृयह स्वतंत्र और स्वाभाविक होती है।

प्राथमिक कल्पना: यह मनुष्य की सहज मानसिक क्रिया है, जो इंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवों को व्यवस्थित कर ज्ञान में रूपांतरित करती है। यह हर व्यक्ति में पाई जाती है और बिना किसी प्रयास के कार्य करती है।

गौण कल्पनाः यह प्राथमिक कल्पना का सचेतन उपयोग है, जो कलाकारों में विशेष रूप से पाई जाती है। यह कवि को बाह्य जगत का पुनः सृजन करने में सहायक होती है।

कोलरिज मानते हैं कि कल्पना ही कला की आत्मा है। यह केवल अनुकरण नहीं करती, बल्कि पुनर्निर्माण करती है। उसके अनुसार, "The imagination is a power which the artist can only use when he is at his best– when he is in the fullest possession of himself." अर्थात्, कल्पना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति तभी संभव है जब कलाकार पूर्ण रूप से अपने आत्मबोध में हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र– डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा।
2. बृहत् साहित्यिक निबंध– डॉ. राम सागर त्रिपाठी, डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त।
3. पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास– डॉ. तारकनाथ बाली।
4. आलोचक और आलोचना– सिद्धांत– डॉ. रतनकुमार पांडेय।
5. काव्य में उदात्त तत्व– डॉ. नगेंद्र।
6. आलोचक और आलोचना सिद्धांत – डॉ० राम रतन पाण्डेय।

ꕤ★ꕤ

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता और कुँवर नारायण

डॉ. सुनील कुमार मिश्र*

'स्वातंत्र्योत्तर' पद का अभिग्रहण हिंदी में दो स्तरों पर किया जाता है– पहला स्वतंत्रता के बाद का समय एवम् दूसरा द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर काल। इस काल में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर ऐतिहासिक स्तर की घटनाएँ घटित हो रही थी। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं, ''सामयिक साहित्य अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय महायुद्ध (1935–1945 ई.) के फलस्वरूप उत्पन्न जीवन की नवोत्पन्न परिस्थितियों और राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद की परिस्थितियों के बाद के साहित्य को बाहर–भीतर से परिवर्तित इसी साहित्य को द्वितीय महायुद्धोत्तर या स्वातंत्र्योत्तर साहित्य या सामयिक साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है।''[1]

हर युग की कविता की एक पृष्ठभूमि होती है। कविता निर्वात में जन्म नहीं लेती। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता का अध्ययन करते हुए तत्कालीन राजनीतिक–सामाजिक परिदृश्य का विश्लेषण–विवेचन आवश्यक है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक परिदृश्य को देखें तो, देश की स्वतंत्रता के साथ ही देश का बँटवारा, बँटवारे की आग में फैले सांप्रदायिक दंगे उसके बाद गाँधी की हत्या ये सभी घटनाएँ तत्कालीन समय का बहुत ही वीभत्स चित्र प्रस्तुत करती हैं। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं, ''स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जन्म धारण करने वाली युवा पीढ़ी ने अपने चारों ओर भ्रष्टाचार, घूसखोरी, चोरबाजारी, मंहगाई, अंधकारपूर्ण भविष्य, जीवन की सुख–सुविधाओं का अभाव, राजनीतिज्ञों की अनैतिकता और आदर्शहीनता, स्वार्थपरता, भाई–भतीजावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, जीर्णशीर्ण शिक्षा–पद्धति, बेकारी–संक्षेप में, जीवन की सारी विद्रूपताएँ, कुरूपताएं और जीवन के अभाव आदि को सुरसा की भाँति मुँह बाए खड़ा देखा।''[2] स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता उपरोक्त पृष्ठभूमि पर सृजनरत थी। दूसरे शब्दों में कहें तो ये सारी विषम राजनैतिक–सामाजिक परिस्थितियाँ उसके केन्द्र में थीं। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दो तरह की पीढ़ी रचनारत थी। एक पीढ़ी वह थी जिसका जन्म स्वतंत्रता के पहले परतंत्र भारत में हुआ था दूसरी पीढ़ी स्वतंत्रता के बाद अपना होश संभाली। इन दोनों पीढ़ियों के सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य में बहुत बड़ा अंतर था। मूल्यों के स्तर पर भी देखें तो इन दोनों पीढ़ियों के बीच एक बड़ा फासला साफ–साफ दिखाई देगा। पहली पीढ़ी ने स्वतंत्रता का संघर्ष देखा था, गाँधी–नेहरू और उन जैसे अनेक नेताओं की स्वार्थरहित राजनीति देखी थी। अनुशासन, अपरिग्रह, समर्पण, बलिदान की भावना से प्रेरित उस समय के राजनीतिज्ञों को देखा था। एक महान स्वप्न के लिए बलिदान होते अपने पूर्वजों को देखा था। कुल मिलाकर कहें तो स्वतंत्रता के पूर्व की परिस्थितियाँ विषम तो थी पर मानवीय मूल्य उस समय केन्द्र में था। स्वतंत्रता के बाद की पीढ़ी ने इसके ठीक उलट टूटते मानवीय मूल्यों को महसूस किया। जिसके बारे में ऊपर लिखा जा चुका है। किसी भी रचनाकार की कलात्मक या सर्जनात्मक चेतना उसके तत्कालीन परिदृश्य से निर्मित होती है। वह किस समाज में किन लोगों के बीच सृजन कर रहा है, ये सभी महत्त्वपूर्ण कारक हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता को इसी दृष्टि से विश्लेषित करने की कोशिश की गई है।

स्वातंत्र्योत्तर–हिंदी कविता इन अर्थों में अपने पूर्ववर्ती काव्य–प्रवृत्तियों से अलग है कि इसमें नए प्रयोग स्पष्ट तौर पर परिलक्षित किये जा सकते हैं। छायावाद और प्रगतिवाद से यह इन्हीं अर्थों में भिन्न है। परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य अंग है और यह परिवर्तन साहित्य में भी देखने को मिलता रहता है। साहित्यिक विकास परिवर्तन पर ही निर्भर है। छायावाद और प्रगतिवाद के काव्य मूल्य से इतर सन् 1943 ई. में 'तारसप्तक' का प्रकाशन स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की पृष्ठभूमि तैयार करता है। 'तारसप्तक' के प्रकाशन के पूर्व ही अज्ञेय 1930 के (दशक) में प्रगतिवाद से अपनी दूरी प्रकट कर रहे थे। अज्ञेय को तत्कालीन काव्य मूल्य अपर्याप्त ला

*** सहायक प्राध्यापक–हिंदी, सरकारी कला और वाणिज्य महाविद्यालय, लालपुर, जामनगर।**

रहे थे और अज्ञेय का यह स्पष्ट मानना रहा है कि, ''कला... अपर्याप्तता के प्रति विद्रोह है।''[3] 'तारसप्तक' के प्रकाशन को उपरोक्त कथन के आलोक में भी देख सकते हैं। साथ ही ''सन् 1947 में अज्ञेय ने 'प्रतीक' प्रकाशित किया और उन्होंने 'कला कला के लिए' की घोषणा की।''[4]

सन् 1947 में स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जो बदलाव उपस्थित हुए, उसक प्रभाव साहित्य में देखने को मिला। कविता के मानदंड भी बदल गए क्योंकि कविता सदैव युग की परिस्थितियों से प्रभावित होती रही है। कविता की शुरुआत अर्थात् आदिकाल से लेकर समकालीन कविता को यदि हम विश्लेषित करें तो यह प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित कर सकते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर कविता ने भी युगानुरूप पुराने काव्य प्रतिमानों के स्थान पर नए प्रतिमानों का सृजन किया।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता एक ऐसे माहौल में विकसित हो रही थी जो राजनीतिक–सामाजिक दृष्टि से बहुत ही उथल–पुथल का समय था। ऐसी परिस्थिति ने हिंदी साहित्य में जिस काव्य–प्रवृत्ति को जन्म दिया डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में कहें तो, ''वह मूलतः एक होते हुए भी, थोड़े–थोड़े अंतरों के साथ जो स्वाभाविक है, प्रयोगवाद, रूपवाद, नकेनवाद (प्रपद्यवाद), नई कविता आदि विभिन्न नामों से अभिहित की जाती है और जिनके कारण हिंदी का साधारण पाठक अपने को 'भूला–सा, भ्रमा–सा, ठगा–सा' पाता है।[5] अर्थात् जिसे हम स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता कहते हैं वह प्रयोगवाद, नकेनवाद, नई कविता और नवगीत जैसे काव्य–आंदोलन हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति को जैनेन्द्र कुमार के इस कथन से समझा जा सकता है, ''सन् 1947 का वर्ष भारत के लिए एक साथ अदम्य आशा और घोर निराशा का वर्ष था। यह नया वर्ष खुला तो गहरे बादल छाये हुए थे।''[6] भारत की स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेज शासकों ने द्विराष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता की आग को जो हवा दी वह स्वतंत्रता के बाद और भी भड़क गई। और जिसकी परिणति विभाजन के फलस्वरूप भयंकर दंगों में हुई। लोग विस्थापित हुए। जान–माल की क्षति हुई। दोनों ही तरफ के लोग शरणार्थी शिविरों में रहने को मजबूर हुए। पाकिस्तान में जो हिंदू थे वे नया मुल्क बनने के बाद भारत आए। पाकिस्तान में हिंदुओं पर खासकर महिलाओं पर जोर–ज्यादती हुई ठीक यही हालात सीमा के इस पार भी थे। पर महात्मा गाँधी की वजह से सांप्रदायिक दंगों में कुछ कमी जरूर आयी। पर वह नाकाफी था। शरणार्थियों को लेकर दूसरे बड़ी मुश्किल ये हुई कि जो भारतीय मुसलमान बंटवारे के बाद पाकिस्तान चले गए, बाद में उन्हें यह महसूस हुआ कि भारत में ही वे अच्छे थे। इस तरह हम देखते हैं कि 1948 के आस–पास पश्चिमी पाकिस्तान से भारतीय मुसलमान दुबारा भारत आते हैं। भारत की स्थिति विकट थी क्योंकि यहाँ से (भारत से) जो मुसलमान पाकिस्तान चले गए उनकी संपत्तियाँ पुनर्वास केन्द्र के रूप में इस्तेमाल की जाने लगीं थी। और इन लोगों को शरणार्थी शिविरों में रहना पड़ा। कुल मिलाकर कहें तो '47 और '48 के आस–पास भारतीय उपमहाद्वीप पूरी तरह से अस्थिर था। दूसरी बड़ी समस्या छोटी रियासतों के एकीकरण की थी। स्वतंत्रता से पूर्व भारत छोटी–छोटी रियासतों में बंटा हुआ था। इन रियासतों के सामंत या जमींदार होते थे। जो जनता से टैक्स वसूल करके अपना और ब्रिटिश हुकूमत का पेट भरते थे। ब्रिटिश हुकूमत इन सामंतों–जमींदारों को आपस में लड़ाती थी और इन रियासतों पर अपना नियंत्रण रखती थी। ब्रिटिश हुकूमत का नारा ही था– 'बाँटो और राज्य करो'। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद ये सभी रियासतें अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखना चाहती थी। पर केन्द्रीय नेतृत्त्व को यह स्वीकार न था। किसी भी संप्रभु राज्य के लिए यह उचित नहीं है कि वह विभिन्न रियासतों में विभाजित हो। केन्द्रीकृत शासन–प्रणाली संप्रभु राज्य का अनिवार्य अंग है। रियासतों का एकीकरण स्वातंत्र्योत्तर भारत की महत्त्वपूर्ण घटना है। हैदराबाद की रियासत के एकीकरण के लिए केन्द्रीय शासन को पुलिस एक्शन लेना पड़ा था। वहीं कश्मीर समस्या अभी तक बरकरार है। कश्मीर पर भारत और पाकिस्तान दोनों दावा करते हैं और इस पर युद्ध भी हो चुका है। परोक्ष युद्ध तो अभी भी चलता ही रहता है। कश्मीर समस्या भारत की सबसे बड़ी समस्या है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण (दुः) घटनाओं में से एक महात्मा गांधी की हत्या भी है। नाथूराम गोडसे ने महात्मा गाँधी की हत्या कर दी थी। गोडसे अतिवादी था। गाँधी जिनका जीवन–भर

अहिंसा में विश्वास रहा एक क्रूर हिंसा की भेंट चढ़ गए। गाँधी, जिन्होंने विश्व के सबसे ताकवर साम्राज्य की जड़े हिला दी थी, उन्हीं गाँधी को अपने ही देश के एक सिरफिरे और अतिवादी गोडसे ने मृत्यु के घाट उतार दिया। गाँधी की कमी देश की सबसे बड़ी क्षति थी, क्योंकि गाँधी भारत के प्रायः सर्वमान्य नेता थे। डॉ. देवराज के शब्दों में कहें तों, ''छोटा से छोटा व्यक्ति भी गाँधी को अपना समझता था और श्रद्धा रखता था। इसी कारण गाँधी में केन्द्रीय नेतृत्व सिमट आया था। यदि कुसमय ही उनकी मृत्यु न होती तो अनेक समस्याएँ यों ही हल हो जातीं।''[7]

उपरोक्त वातावरण और विषम परिस्थितियों के बीच प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा पर विचार हुआ और सन् 1951 के दिसंबर में उसे लागू कर दिया गया। इस पंचवर्षीय योजना में भारत की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक खाद्यान्न की समस्या को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया था। स्वतंत्रता के बाद भारत को स्थिर करने में इस योजनाओं का विशेष महत्त्व था। साथ ही सन् 1951–52 ई. में हुए पहले आम चुनाव में कांग्रेस को नेहरू के नेतृत्व में बहुमत प्राप्त हुआ। नेहरू ने समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित किया। इतनी अधिक अस्थिरता और उथल–पुथल झेल चुकी जनता को नेहरू में एक युगनेता की छवि दिखाई देने लगती है। पिछले तीन–चार वर्षों के बाद जनता ने सन् 1951–52 में स्थिरता का अनुभव किया। नेहरू की छवि स्वप्न–द्रष्टा की छवि थी। उन्होंने राष्ट्रीय महत्त्व की कई संस्थाओं की स्थापना की। नेहरू की इन कोशिशों का परिणाम यह हुआ कि, ''जो सामान्य भारतीय तात्कालिक विषम स्थितियों के कडुए घूँट पीने के कारण व्याकुल था, वह सुखद भविष्य की सम्भावनाओं में खो गया और उसने अनुभव किया कि स्वतंत्रता का भी एक मंगलकारी अर्थ होता है।''[8] स्वप्नों, आकांक्षाओं, उम्मीदों से भरे इस युग को ही स्वातंत्र्योत्तर भारत के इतिहास में 'नेहरू युग' कहा जाता है। नेहरू के महत्त्व और उनकी कार्यप्रणाली को बताते हुए देवराज लिखते हैं, ''सत्तारूढ़ होते ही पं. जवाहरलाल नेहरू ने अनेक समाजवादी देशों की यात्रा की। वहाँ की व्यवस्था का अध्ययन किया तथा अपने मस्तिष्क में समाजवादी व्यवस्था को स्पष्ट किया। परिणामस्वरूप सन् 1955 में आवड़ी के कांग्रेस अधिवेशन में इस विषय पर खुलकर विचार–विमर्श हुआ और विभिन्न संकटों के होते हुए भी नेहरू ने समाजवादी व्यवस्था लाने की घोषणा की। समाजवादी व्यवस्था अपने मूल रूप में अत्यन्त सुंदर व्यवस्था है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति के समान और पूर्ण विकास की कल्पना निहित है।''[9] समाजवादी व्यवस्था की ओर भारतीय जनमानस सहज ही आकृष्ट हुआ। समाजवादी व्यवस्था के साथ–साथ नेहरू ने भारत को औद्योगीकरण की ओर अग्रसर किया। इसके साथ ही नेहरू ने पंचशील जैसे सिद्धांत को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर स्वीकृत कराया जिसके फलस्वरूप नेहरू की छवि अन्तर्राष्ट्रीय नेता की बन गई। पर नेहरू का यह आभामंडल कुछ समय पश्चात् क्षीण पड़ने लगा। स्वातंत्र्योत्तर भारत का इतिहास यह बताता है कि नेहरू युग से लोगों का मोहभंग हो गया। समाजवाद एक नारा भर होकर रह गया सामान्य लोगों के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। लोगों ने नेहरू से जो उम्मीदें की थी वह पूरी नहीं हुई। बेरोजगारी, खाद्यान्न संकट पहले की ही तरह बरकरार था। वास्तव में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में एक विशेष उच्चवर्ग पूरी राजनीतिक व्यवस्था पर हावी हो गया था। इसी उच्च वर्ग ने पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ भी उठाया। जिसका परिणाम यह हुआ कि समाजवादी व्यवस्था और औद्योगीकरण महज एक नारा बनकर रह गया। स्वतंत्रतापूर्ण की समस्याएँ जस की तस स्वतंत्रता के बाद भी बरकरार थी। इन दोनों स्थितियों में फर्क इतना ही था कि स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर प्रत्येक भारतवादी आत्मसम्मान और गर्व का अनुभव करता था बाकी परिस्थितियाँ वही थीं।

उपरोक्त इन्हीं राजनीतिक परिवेश ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के स्वरूप को रूपायित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं एक के बाद एक होने वाली राजनीतिक घटनाओं ने कवियों कलाकारों की मानसिकता को प्रभावित किया है। देवराज, डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय के हवाले से लिखते हैं कि ''सन् 1947 का साम्प्रदायिक मुस्लिम लीग नेताओं और कूटनीतिक ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा देश का विभाजन, हिंदू–मुस्लिम दंगे, सांप्रदायिकता के कारण गाँधी जी की मृत्यु, स्वतंत्रता के उपरान्त देश का इच्छित विकास न होना, पंचवर्षीय योजनाओं की कच्छप गति, बेकारी–समस्या आदि ने बुद्धिजीवियों में घुटन पैदा कर दी।''[10] इन सभी घटनाओं की प्रतिच्छाया स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में उभरी है।

अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों का भी विश्लेषण यहाँ जरूरी है। क्योंकि आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि विश्व के किसी भी कोने में घटित होने वाली घटना का प्रभाव संपूर्ण विश्व पर पड़ता है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय मन विश्व युद्धों की परिणति से खिन्न एवम् आहत था। विश्वयुद्धों की त्रासदी ज्ञात मानवीय इतिहास की भयंकर त्रासदियों में से एक है। बीसवीं सदी इस मामले में 'विरुद्धों का सामंजस्य' वाली सदी भी रही है। इसमें एक तरफ बड़े स्तर पर जनसंहार होते हैं वहीं दूसरी ओर अहिंसा के सबसे बड़े पुजारी महात्मा गाँधी क्रियाशील होते हैं। एक ओर गैर–बराबरी को बढ़ावा देने वाली पूँजीवादी सभ्यता विकसित हो रही होती है दूसरी ओर ठीक उसी समय मार्क्स और एंगेल्स की विचारधारा का प्रभाव विश्व पर पड़ रहा होता है।

सोवियत संघ की सेनाओं ने मई 1945 में बर्लिन में प्रवेश किया। बर्लिन में सोवियत सेना के आने के बाद हिटलर ने आत्महत्या कर ली थी। तत्पश्चात् जर्मनी ने आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मनी के आत्मसमर्पण के बाद विश्वयुद्ध समाप्त हो गया था लेकिन सन् 1945 ई. के अगस्त में अमेरिका ने जापान के नागासाकी और हिरोशिमा पर अणु बम गिराए जिससे लाखों लोग तुरंत मारे गए थे। अमेरिका हमले के बाद जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया और विश्वयुद्ध समाप्त हो गया। यह विश्वयुद्ध ज्ञात मानवीय इतिहास का सबसे विनाशकारी युद्ध था। इस युद्ध में करोड़ों लोग मारे गए और उतने ही बेघर हुए। इस अभूतपूर्व त्रासदी ने मानवीय चेतना को कई अर्थों में प्रभावित किया। द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर समाज और संस्कृति को हम इन विभीषिकाओं के पृष्ठभूमि में देखते हैं। देवेन्द्र इस्सर का मत है कि, ''दो विश्वयुद्धों के भयावह संहार, आणविक विनाश के खतरे तथा विभिन्न देशों में गृह–युद्धों ने 'अंतबोध' को अधिक प्रखर बना दिया है। आज हर व्यक्ति के सामने एक ही प्रश्न है कि मैं कब कहाँ भक से उड़ जाऊँगा।''[11]

विश्वयुद्धों की परिणति ने मानवीय चेतना को गहरे झकझोरा था। पहली बार लोगों को यह लगने लगा था कि उनकी इयत्ता, अस्तित्व कुछ भी नहीं है। 'अंतबोध' सबके भीतर घर कर गया था। यह 'अंतबोध' की धारणा विश्वयुद्धोत्तर समाज और संस्कृति की ही देन है। और यह अकारण नहीं है कि इस दौरान एक के बाद एक ऐसी रचनाएँ सामने आई जो भविष्य का दहशतभरा चित्र प्रस्तुत करती है। द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर समाज और संस्कृति की जो परिस्थितियाँ थीं उसका चित्रण केवल साहित्य ही नहीं बल्कि अन्य कला माध्यमों में भी हुआ। पिकासो की 'गुएर्निका' इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। यहाँ सैमुअल बैकेट के नाटक 'वेटिंग फॉर गोडो' का भी जिक्र आवश्यक है। निरर्थकता बोध का यह सबसे अच्छा उदाहरण है। और यह निरर्थकता बोध इसी द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर समाज और संस्कृति से उपजा है। इस तरह हम देखते हैं कि बीसवीं शताब्दी के पाँचवें और छठे दशक की दुनिया खासकर, यूरोप दोनों विश्वयुद्धों के उपरान्त थकी–हारी दुनिया थी। एक तरफ इस दुनिया में गहरी निराशा और नकार की भावना का उदय हो रहा था वहीं दूसरी ओर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था भी अपने पैर फैला रहा था। साथ ही इस दशक में यूरोप की समूची चेतना पर द्वितीय विश्वयुद्ध एक सदमें की तरह था। इस सदमें ने पूरे यूरोप को खामोश और चेतनाशून्य कर दिया था। यूरोप का इतिहास एक त्रासदी की तरह दिखने लगा। लोग इतिहास से अपना पीछा छुड़ाने लगे। इतिहास की जो क्रमिकताएँ थी वह टूटने लगीं। इन्हीं दिनो फ्रैंकफर्ट स्कूल के दार्शनिकों ने इस प्रश्न को उठाया कि आखिर हर नई अवधारणा, सभी नया यूटोपिया अंततः एक वर्चस्व में कैसे परिवर्तित हो जाता है। अतीत के संघर्ष वर्तमान के दमन से कैसे जुड़ जाते हैं? क्या इतिहास की शक्तियाँ मनुष्य को हर बार बेबस और निरीह बना देती हैं। फिर उस इतिहास का क्या मतलब जो हर बार दमन में तब्दील हो जाता है। फिर उस समय के विचारकों के भीतर यह प्रश्न उठने लगा कि क्या हम इतिहास से मुक्त होकर मनुष्य की परिकल्पना रच सकते हैं?

सच बात तो यह है कि कई बार इतिहास में ऐसे मोड़ आते हैं जो क्रमभंगता का सृजन करते हैं। बीसवीं शताब्दी का छठवाँ दशक कुछ ऐसा ही था। दोनों विश्वयुद्धों ने पूरे यूरोप में ऐसा ही क्रमभंग रचा। इस दौरान यूरोप में एक नए युग की शुरुआत होती है। इस दशक में जो आरंभ होता है, वह कई मायनों में पिछले का अंत भी था। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि एक साथ बहुत सारी अवधारणाओं और परिघटनाओं के अंत की घोषणा इसी समय में की जाने लगी।

उपर्युक्त समय और विषम परिस्थितियों ने जिस तनाव–युक्त परिवेश का निर्माण किया उसकी अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में बहुतायत से हुई है। ये सभी घटनाएँ इतनी तेजी से विश्व में व्याप्त हुई कि किसी भी सजग व्यक्ति का इससे अछूता रहना अस्वाभाविक था। ऊपर जिन राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक– राजनैतिक परिस्थितियों की चर्चा की गई है, इन्हीं माहौल में कुँवर नारायण की रचनात्मक यात्रा प्रारंभ होती है। कुंवर नारायण का जन्म सन् 1927 में स्वतंत्रता के पूर्व होता है। कुँवर नारायण जन्मे पराधीन भारत में और होश संभाला स्वतंत्र भारत में। कुँवर नारायण की ख्याति एक कवि के साथ बौद्धिक के रूप में भी है। तत्कालीन राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ उनकी कविता का प्रस्थान बिंदु बनती है। कुँवर नारायण की कविता का अध्ययन करते समय उन परिस्थितियों का विश्लेषण भी अनिवार्य हो जाता है। राजनीतिक रूप से अशांत भारत में कुँवर नारायण का जन्म होता है उनके लेखन की शुरुआत जिन परिस्थितियों में होती है, उसके बारे में कुँवर नारायण एक साक्षात्कार में कहते हैं, ''देश आजाद हुआ तो मन में भरपूर उत्साह था। आज लगता है मानो हमने आजादी के सबसे अनैतिक और फूहड़ अर्थ को ही अपना लिया हो। निराशा होती है, फिर भी निराशावादी नहीं हूँ। इसी देश में, गाँधी जैसा महामानव हुआ और यहीं उसकी हत्या हुई।''[12] कुँवर नारायण का लखनऊ वाला घर स्वतंत्रता आंदोलन का केन्द्र था। विनोद भारद्वाज लिखते हैं, ''स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान और बाद में चौथे, पाँचवें और छठे दशकों में लखनऊ वाला कुँवर नारायण का घर देश के नेताओं की सरगर्मी का एक छोटा–मोटा केन्द्र सा ही बन गया था। आजादी के ठीक पहले मुम्बई में कुँवर नारायण को आचार्य नरेन्द्र देव और आजादी के बाद दिल्ली में आचार्य कृपलानी के साथ कुछ समय रहने का मौका मिला। इन लोगों के साथ ने कुँवर नारायण को वैचारिक स्तर पर समृद्ध किया।''[13] इस तरह हम देखते हैं कि कुँवर नारायण की वैचारिक चेतना आजादी के नायकों के साथ निर्मित हो रही थी। कुँवर नारायण का पहला काव्य–संगह 'चक्रव्यूह' 1956 में प्रकाशित हुआ था। दूसरा काव्य–संग्रह 'परिवेश हम–तुम' 1961 में आया, हालाँकि इसी बीच कुँवर नारायण की कविताएँ 1959 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' में शामिल की गई थी। सन् 1965 में 'आत्मजयी' का प्रकाशन होता है, जिसे बहुत ख्याति मिली। इन संग्रहों को हम स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के अन्तर्गत विश्लेषित करेंगे। किस भी कवि के चेतना का निर्माण उसके परिवेश, उसके अध्ययन आदि से होता है। कुँवर नारायण की काव्य–चेतना पर तत्कालीन परिवेश का प्रभाव साफ तौर पर देखा जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो विश्वयुद्धों की त्रासदी ने उन्हें हिला कर रख दिया था। 'चक्रव्यूह' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं:–

''मेरे हाथ में टूटा हुआ पहिया
पिघलती आग–सी सन्ध्या,
बदन पर एक फूटा कवच,
सारी देह क्षत–विक्षत,
धरती–खून में ज्यों सनी लथपथ लाश,
सिर पर गिद्ध–सा मँडला रहा आकाश...''[14]

विश्वयुद्धों ने मानवता/मनुष्यता की देह को क्षत–विक्षत कर दिया था। 'चक्रव्यूह' संग्रह की कविताओं का संदर्भ वैश्विक है। साथ ही यह स्वातंत्र्योत्तर भारतीय मन को भी अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

कुँवर नारायण ने शुरुआती काव्य–लेखन अंगरेजी में किया। लेकिन थोड़े ही समय बाद हिंदी में लिखना प्रारंभ कर दिया। कुँवर नारायण एक बातचीत में कहते हैं, ''मैं अट्ठाईस वर्ष का था, जब मेरा पहला कविता संग्रह 'चक्रव्यूह' प्रकाशित हुआ था। इसके पूर्व मैंने अंग्रेजी में लिखना प्रारंभ किया था, और इस निर्मित काल में मुझ पर यूरोप की रोमानी कविताओं का पुरजोर असर था। अंग्रेजी रोमानी कवियों की अपेक्षा मैं फ्रांसीसी प्रतीकवादियों, विशेषकर बॉदलेयर, मलार्मे, वर्लै, रैम्बो आदि से अधिक प्रभावित था।''[15] कुँवर नारायण की ख्याति हिंदी में बहुत पढ़े लिखे लेखक की है। लेकिन हिंदी में ज्यादा पढ़े–लिखे लेखकों को आम जिंदगी से कटे हुए लेखक के तौर पर लिया जाया जाता है। एक बार एक साक्षात्कारकर्ता के ऐसे ही सवाल पर कुँवर नारायण ने थोड़ा खीजते हुए कहा था कि, ''पढ़ना–लिखना मेरे लिए विभक्त नहीं एक संयुक्त कार्रवाई है। जो मेरे जीने के साथ जुड़ी है। आपके सवाल से ऐसा लगता है मानो ज्यादा पढ़ना भी

किसी प्रकार की ज्यादती है उन लोगों के खिलाफ जो कम पढ़े हैं या अपढ़ हैं।''[16] कुँवर नारायण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की पृष्ठभूमि और परिवेश को लेकर सचेत हैं। वह परिवेश युद्ध, हिंसा और उन्माद का है। युद्ध के बारे में वे कहते हैं, ''दुनिया का इतिहास युद्धों से पटा पड़ा है कोई युद्ध अंतिम नहीं होता। न कोई जीतता है, न कोई हारता : दोनो पक्ष नष्ट होते हैं।''[17] 'चक्रव्यूह' युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ काव्य–संग्रह है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के आस–पास हिंदी कविता में कुँवर नारायण का आगमन होता है और उनकी काव्यरुचि निर्मित होती है। उनकी प्रारंभिक कविताएँ इसी दौरान लिखी गईं। उसके बाद 'नयी कविता' से लेकर साठोत्तरी कविता, आठवें दशक की कविता से लेकर समकालीन हिंदी कविता के परिदृश्य पर वे निरंतर सक्रिय रहे। इन सबमें स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता का परिवेश कुँवर नारायण की कविताओं में अभिव्यक्ति हुआ है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 9–10।
2. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 9।
3. अज्ञेय – 'कला का स्वभाव और उद्देश्य' ;भ्पदकपेंउंलण्बवउद्ध
4. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 108।
5. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 103।
6. देवराज, नई कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति 2009, पृ. 15।
7. देवराज, नई कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति 2009, पृ. 16।
8. वही, पृ. 17।
9. देवराज, नई कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति 2009, पृ. 17।
10. देवराज, नई कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति 2009, पृ. 24।
11. देवेन्द्र इस्सर, बीसवीं सदी की सोच का सफर : स्वप्न और स्मृति के बीच, संवाद प्रकाशन, पहला संस्करण, 2004, पृ. 24।
12. तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, संपा.– विनोद भारद्वाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010, पृ. 15।
13. वही, पृ. 13।
14. कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति 2011, पृ. 135।
15. तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, संपा.– विनोद भारद्वाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010, पृ. 85
16. वही, पृ. 12।
17. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2013, पृ. 99।

तमस उपन्यास की कथात्मक विशिष्टता

डॉ. सुनील कुमार मानस*

शोध सार :— भीष्म साहनी का उपन्यास तमस अपनी कथात्मक विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है, जो विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिक हिंसा को गहराई से प्रस्तुत करता है। उपन्यास में साहनी ने जटिल पात्रों और उनकी मनोवैज्ञानिक स्थिति का सटीक चित्रण किया है। मुराद अली, रिचर्ड, और जसवीर कौर जैसे पात्रों के माध्यम से उन्होंने समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है। साहनी की भाषा सरल और सहज है, जो घटनाओं और पात्रों की भावनाओं को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करती है। उपन्यास की संरचना घटनाओं के बजाय पात्रों के आंतरिक संघर्षों और विचारों पर केंद्रित है, जो इसे एक गहरी और बहुआयामी कृति बनाती है। शिल्पीय दृष्टि से भी तमस में कोई अतिनाटकीयता नहीं है, बल्कि यथार्थवादी दृष्टिकोण और संवादों के माध्यम से वास्तविकता को उजागर किया गया है। यह उपन्यास आज भी सांप्रदायिकता और सामाजिक संघर्ष पर एक महत्वपूर्ण टिप्पणी प्रदान करता है।

की वर्ड :— उपन्यास का यथार्थवाद, सांप्रदायिकता एवं हिंसा, विस्थापन की त्रासदी, भाषा एवं शिल्प एवं मानवीय संदेश।

प्रस्तावना :— भीष्म साहनी का उपन्यास तमस भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सांप्रदायिक दंगों और विभाजन की पीड़ा को मार्मिक रूप से प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास केवल एक ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं, बल्कि मानवीय त्रासदी की गूंज है। लेखक ने हिंदू—मुसलमानों के बीच बढ़ती कट्टरता, अंग्रेजों की "फूट डालो और राज करो" नीति तथा साधारण जनता की असहायता को गहन संवेदना के साथ चित्रित किया है। तमस राजनीति की अमानवीयता, धार्मिक अंधता और सामाजिक विघटन पर तीखा प्रश्नचिह्न उठाता है। यह उपन्यास हमें न केवल अतीत की भयावहता दिखाता है, बल्कि वर्तमान को समझने की दृष्टि भी देता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और यथार्थवाद :— तमस उपन्यास 1947 में हुए भारत—पाकिस्तान विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित है, जिसमें लेखक ने सांप्रदायिक दंगों की भयावहता को अत्यंत सजीव और संवेदनशील ढंग से चित्रित किया है। भीष्म साहनी ने विभाजन के समय हुई हिंसा, लूटपाट, हत्या, बलात्कार, और सामूहिक पलायन जैसी घटनाओं को इतनी गहराई और सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है कि पाठक उस दौर के भयावह सामाजिक और राजनीतिक वातावरण को प्रत्यक्ष अनुभव करता है।

लेखक ने केवल घटनाओं का वर्णन नहीं किया, बल्कि उनके पीछे की मानसिकता, भय, घृणा और असुरक्षा की भावना को भी उजागर किया है। तमस में वर्णित घटनाएँ केवल इतिहास की कड़वी सच्चाई नहीं, बल्कि इंसानी संवेदनाओं का आईना हैं। उपन्यास में यथार्थ का चित्रण इतना प्रभावी है कि यह किसी दस्तावेज़ की तरह इतिहास को जीवंत कर देता है। भीष्म साहनी की लेखनी विभाजन की त्रासदी को मानवीय दृष्टिकोण से देखने की एक नई दिशा प्रदान करती है।

चरित्र चित्रण की सजीवता :— भीष्म साहनी ने विभिन्न वर्गों और समुदायों के पात्रों को न केवल सजीव रूप में प्रस्तुत किया है, बल्कि उनके आंतरिक संघर्षों और मानसिक जटिलताओं को भी गहराई से उकेरा है। मुराद अली जैसे पात्र सांप्रदायिकता के उस चेहरे को उजागर करते हैं, जो स्वार्थवश आग भड़काता है। वहीं रिचर्ड ब्रिटिश हुकूमत की "फूट डालो और राज करो" नीति का प्रतिनिधि बनकर सामने आता है।

***अध्यक्ष : हिंदी विभाग, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)**

नत्थू का चरित्र विशेष रूप से संवेदनशील है, जो अनजाने में हिंसा का कारण बनता है और अंततः अपराधबोध से ग्रस्त हो जाता है। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यास यह दर्शाता है कि कैसे आम आदमी राजनैतिक चालों का मोहरा बन जाता है।

भीष्म साहनी ने हिंदू और मुस्लिम दोनों पक्षों के पात्रों को निष्पक्षता से चित्रित किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सांप्रदायिक हिंसा किसी एक समुदाय की करतूत नहीं, बल्कि व्यापक राजनीतिक षड्यंत्र का परिणाम थी। इन सजीव और बहुआयामी चरित्रों के कारण तमस पाठकों की स्मृति में लंबे समय तक बना रहता है।

सांप्रदायिकता की समस्या का चित्रण :– तमस उपन्यास में यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि किस प्रकार धार्मिक पहचान को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करके आम जनता को एक–दूसरे के विरुद्ध खड़ा किया गया। लेखक ने दर्शाया है कि यह संघर्ष मात्र धर्म का नहीं था, बल्कि इसके पीछे सत्ता की भूख, राजनीतिक स्वार्थ और विदेशी हुकूमत की चालें छिपी थीं।

मुराद अली जैसे पात्र इस कुटिल राजनीति के प्रतीक हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए हिंसा फैलाने से भी नहीं हिचकते। वहीं दूसरी ओर, आम जनता भय, भ्रम और असुरक्षा की स्थिति में पिसती रहती है। उपन्यास यह संदेश देता है कि सांप्रदायिकता केवल दो समुदायों के बीच का संघर्ष नहीं, बल्कि एक सुनियोजित षड्यंत्र है, जिसमें मासूम लोग बलि चढ़ते हैं। तमस इस बात को भी रेखांकित करता है कि किस तरह सत्ता प्राप्ति की लालसा में इंसानियत कुचली जाती है। यह उपन्यास आज भी हमें सांप्रदायिक सौहार्द और सामाजिक एकता की आवश्यकता का गहरा बोध कराता है।

ब्रिटिश शासन की भूमिका :– तमस उपन्यास में अंग्रेजों ने "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाकर हिंदू–मुसलमानों के बीच कटुता को जानबूझकर बढ़ावा दिया। उनका उद्देश्य था कि भारतीय समाज आपसी संघर्षों में उलझा रहे ताकि वे लंबे समय तक शासन कर सकें।

उपन्यास का पात्र रिचर्ड इस मानसिकता का प्रतिनिधि है। वह भारत की सांप्रदायिक जटिलताओं को भलीभांति समझता है, लेकिन उसे शांत करने या सौहार्द स्थापित करने के लिए कोई ठोस प्रयास नहीं करता। इसके विपरीत, वह निष्क्रियता का मुखौटा ओढ़े उस हिंसक वातावरण को और भड़काने में परोक्ष रूप से सहायक बनता है।

रिचर्ड जैसे पात्रों के माध्यम से भीष्म साहनी ने दिखाया है कि कैसे अंग्रेजों ने सत्ता के लिए भारतीय समाज की एकता को तोड़ा और आम जनता को सांप्रदायिक आधार पर बाँट दिया। तमस इस ऐतिहासिक सच्चाई को न केवल उजागर करता है, बल्कि पाठकों को चेताता भी है कि औपनिवेशिक चालें कितनी गहराई तक समाज को प्रभावित कर सकती हैं।

विभाजन की त्रासदी और विस्थापन :– तमस में भीष्म साहनी ने भारत–पाकिस्तान विभाजन के दौरान हुई मानवीय त्रासदी का जीवन्त रूप से उकेरा है। सांप्रदायिक दंगों के कारण लाखों लोग भय और असुरक्षा के माहौल में अपने घर–बार छोड़ने को विवश हो जाते हैं। हिंदू अपने मोहल्लों से पलायन कर रहे थे, वहीं मुस्लिम समुदाय के लोग भी अपने ही देश में अजनबी और असुरक्षित महसूस करने लगे थे। इस भयावह स्थिति को लेखक ने उपन्यास के पात्र हरनाम सिंह और उनकी पत्नी बन्तो के माध्यम से संवेदनशील रूप में चित्रित किया है। हरनाम सिंह का अपने पुश्तैनी घर को छोड़ना, और बन्तो का उस घर से जुड़ी यादों को न छोड़ पाने का दर्द, विभाजन की त्रासदी को पाठकों के हृदय तक पहुँचा देता है।

भीष्म साहनी ने दिखाया कि यह विस्थापन केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक भी था। यह केवल जमीन खोने की पीड़ा नहीं थी, बल्कि जड़ों से उखड़ने और अपने अस्तित्व को खोने का गहरा आघात था। तमस इस मानवीय त्रासदी को गहन संवेदना और यथार्थ के साथ प्रस्तुत करता है।

सामाजिक और राजनीतिक नेतृत्व की विफलता :– जिस समय समाज सांप्रदायिक तनाव और हिंसा की चपेट में था, उस समय राजनीतिक और धार्मिक नेतृत्वकर्ता अपने–अपने स्वार्थों में उलझे हुए थे। कांग्रेस के

नेता जनता की वास्तविक समस्याओं को समझने और समाधान खोजने के बजाय सत्ता की राजनीति और आपसी प्रतिस्पर्धा में व्यस्त थे।

धार्मिक नेता भी समाज को शांति और एकता की दिशा में ले जाने के बजाय अपने प्रभाव और वर्चस्व को बनाए रखने की चिंता में लगे थे। उन्होंने धर्म को एकजुटता का माध्यम बनाने के बजाय उसे विभाजन और घृणा का औजार बना दिया।

यह नेतृत्व की वह असफलता है जिसने न केवल सांप्रदायिकता को रोका नहीं, बल्कि अनजाने में या स्वेच्छा से उसे बढ़ावा दिया। तमस में यह संकेत मिलता है कि जब नेतृत्व संवेदनहीन और स्वार्थपरक हो जाता है, तो समाज में अराजकता, भय और विनाश स्वाभाविक रूप से पनपते हैं। उपन्यास पाठकों को चेताता है कि सच्चे नेतृत्व की पहचान संकट में होती है, और उस परीक्षा में तत्कालीन नेतृत्व विफल रहा।

नारी पात्रों की भूमिका :– तमस उपन्यास की महिला पात्र विभिन्न सामाजिक और मानसिक परिस्थितियों का सामना एवं प्रतिनिधित्व करती हैं। लीज़ा, जो अंग्रेज अधिकारी रिचर्ड की पत्नी है, अपने पति की नीतियों को लेकर अंदरूनी असहमति और चिंता तो प्रकट करती है, लेकिन उसे रोक पाने में असमर्थ रहती है। यह स्त्री की सीमित भूमिका और उसकी बेबसी को दर्शाता है। वहीं जसवीर कौर, हरनाम सिंह की बेटी, अपने आत्म–सम्मान और मर्यादा की रक्षा के लिए आत्मबलिदान कर देती है। उसका यह कृत्य विभाजन और सांप्रदायिक दंगों के दौर में महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों की गहन तस्वीर पेश करता है।

तमस में महिलाएँ केवल पीड़िता नहीं, बल्कि समाज के आंतरिक घावों की संवेदनशील अभिव्यक्ति भी हैं। उनका चित्रण यह दर्शाता है कि किसी भी सामाजिक या राजनीतिक उथल–पुथल का सबसे गहरा प्रभाव स्त्रियों पर ही पड़ता है। भीष्म साहनी ने इन पात्रों के माध्यम से उस मौन वेदना को शब्द दिए हैं, जो इतिहास के पन्नों में अक्सर अनकही रह जाती है।

भाषा और शिल्प :– भीष्म साहनी ने उपन्यास में अत्यंत सरल, सहज और प्रभावशाली भाषा का प्रयोग किया है, जो पाठकों को सीधे घटनाओं और पात्रों से जोड़ देती है। उन्होंने कृत्रिम या क्लिष्ट भाषा से बचते हुए बोलचाल की भाषा को अपनाया है, जिससे संवाद अधिक स्वाभाविक और सजीव प्रतीत होते हैं। यह शैली पात्रों की भावनाओं, भय, क्रोध और पीड़ा को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। उपन्यास का शिल्प भी अत्यंत सुगठित और संतुलित है। घटनाओं की प्रस्तुति में न तो अनावश्यक विस्तार है, न ही कहीं गति का अभाव। भीष्म साहनी ने कथानक को इस प्रकार गढ़ा है कि प्रत्येक पात्र और घटना उपन्यास की मूल थीमकृसांप्रदायिकता, विभाजन और मानवीय त्रासदीकृसे जुड़ी हुई प्रतीत होती है। उनकी लेखनी में कहीं भी अतिनाटकीयता नहीं है, बल्कि सधा हुआ यथार्थवाद है जो पाठकों को सोचने पर मजबूर कर देता है। यही भाषा और शिल्प की ताकत है जो तमस को न केवल साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध बनाती है, बल्कि एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में भी प्रस्तुत करती है।

संदेश और प्रासंगिकता :– भीष्म साहनी का उपन्यास तमस केवल भारत–पाकिस्तान विभाजन की कहानी नहीं है, बल्कि यह सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता और मानवीय मूल्यों के संकट की एक गहरी पड़ताल है। उपन्यास यह दिखाता है कि कैसे धार्मिक पहचान और अंधविश्वास के नाम पर समाज को न केवल विभाजित किया गया, बल्कि पूरे समाज के सामूहिक ताने–बाने को भी नुकसान पहुँचाया गया। तमस का मुख्य संदेश यह है कि जब तक समाज में यह "तमस" (अंधकार) कायम रहेगा, तब तक सच्ची स्वतंत्रता संभव नहीं हो सकती।

यह उपन्यास हमें यह याद दिलाता है कि सांप्रदायिकता और कट्टरता से न केवल समाज के भीतर नफरत बढ़ती है, बल्कि यह मानवता के अस्तित्व को भी चुनौती देती है। आज के समय में जब समाज में सांप्रदायिक तनाव और धार्मिक भेदभाव की समस्याएँ बनी हुई हैं, तमस उतना ही प्रासंगिक है। यह उपन्यास पाठकों को चेतावनी देता है कि हमें इन समस्याओं को सुलझाने के लिए एकजुट होकर काम करना होगा, ताकि समाज में शांति, समझ और सहनशीलता की पुनःस्थापना हो सके।

निष्कर्ष :– तमस केवल एक ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, बल्कि यह एक गहरी मानवीय संवेदना से ओत–प्रोत कृति है, जो समाज के अंधकारमय पक्ष को उजागर करती है। भीष्म साहनी ने इसे केवल विभाजन की कथा नहीं रहने दिया, बल्कि इसे एक व्यापक सामाजिक और राजनीतिक दस्तावेज बना दिया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिक दंगों की भयावहता को एक नयी दृष्टि से प्रस्तुत किया, जो पाठकों को तत्कालीन समाज की पीड़ा और अंधकारमय स्थिति का एहसास कराती है। यह उपन्यास हमें इतिहास की उन त्रासदियों से सबक लेने को प्रेरित करता है और बताता है कि सांप्रदायिकता और नफरत से कोई भी समाज सुरक्षित नहीं रह सकता।

भीष्म साहनी ने इस उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि सांप्रदायिकता का जहर समाज को भीतर से खोखला कर देता है, और इससे बचने का एकमात्र उपाय आपसी भाईचारे, प्रेम और समझदारी है। तमस यह भी रेखांकित करता है कि जब तक यह "तमस" (अंधकार) दूर नहीं होगा, तब तक समाज में वास्तविक स्वतंत्रता का प्रकाश नहीं फैल सकता। यह उपन्यास आज भी उतना ही प्रासंगिक है क्योंकि सांप्रदायिक तनाव और धार्मिक भेदभाव आज भी हमारे समाज का हिस्सा हैं। इस प्रकार, तमस केवल अतीत का दस्तावेज़ नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक चेतावनी है, जो हमें एकजुट होकर शांतिपूर्ण और समरस समाज की दिशा में कदम बढ़ाने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ सूची :–

1. तमस– भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. कालजयी उपन्यास, ममता देवी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली–110002] वर्षः 2018
3. समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष दृ डॉ. अर्जुन चव्हाण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002] वर्षः 2012
4. समकालीन हिंदी उपन्यासः दशा और दिशा, डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, वर्षः 2018
5. भारत–विभाजन और हिंदी उपन्यास, हरियश, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली–110015] वर्षः 1986
6. भीष्म साहनीः व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर (संपादक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002] वर्षः 1982
7. शैली और शैली विश्लेषण, डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002] वर्षः 2014
8. हिंदी उपन्यास का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्षः 2014
9. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–110002] वर्षः 2016
10. हिंदी उपन्यासः सामाजिक चेतना, डॉ. रजनीकांत एस. शाह, संस्कृति, अहमदाबाद–380001] वर्षः 1990

★

प्राचीन आयुर्वेद में वर्णित त्रिदोष अवधारणा

रोहित कुमार पाण्डेय *
डॉ. त्रिभुवन सिंह**

सारांश :– आयुर्वेद का मूलभूत सिद्धांत त्रिदोष सिद्धांत है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के सम्यक अवलोकन से यह विदित होता है कि रोग से बचने और स्वस्थ रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को आयुर्वेद सम्मत ऐसा आहार– विहार अपनाना चाहिए जिससे त्रिदोष की विषमावस्था अर्थात वात, पित्त और कफ प्रकोप से बचाव हो सके और यदि गलत आहार–विहार के कारण किसी एक या अधिक दोष के प्रकुपित हो जाने से किसी रोग की उत्पत्ति हो जाय तो पहले यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि रोग में किस दोष का प्रकोप हुआ है। यह समझ इस बात पर जोर देता है कि दोषो के बीच संतुलन बनाये रखना बीमारी को रोकने और उपचार को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है।

प्रस्तावना :– आयुर्वेद का प्राचीन चिकित्सा पद्धति में एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन समय में चिकित्सा पद्धति उन्नत अवस्था में थी। आज के दौर में चिकित्सा के क्षेत्र में नई–2 तकनीक से युक्त यन्त्र प्रणाली विकसित है। उस समय जब यह नवीनतम यन्त्र प्रणाली विकसित नहीं थी तब भी ऋषि मुनि कुशलतापूर्वक रोगो का निदान करते थे। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में रूद्र और आश्विनौ की चिकित्सक के रूप में ख्याति प्राप्त थी।[1] इनके चिकित्सीय कार्यो का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है। इन्होने विशाला नामक स्त्री को जॉघे प्रदान की और युद्ध में लड़ने योग्य बनाया ऋषि च्यवन को वृद्ध से युवा बनाया। पिता के शाप से अन्धे हुये ऋजास्व को दृष्टि प्रदान की।[2] आज के दौर में इस प्रकार की चिकित्सा नहीं मिलती। जिस समय वर्तमान युग की तरह आधुनिक यन्त्र नहीं थे तब भी चिकित्सक इतनी कुशलापूर्वक शल्य और काय चिकित्सा में सिद्धहस्त थे। प्राचीन समय मे जनसमाज आयुर्वेदिक जीवन पद्धति को अपनाकर स्वस्थ रहते हुये शतायु जीवन प्राप्त करते थे। प्राचीन ऋषि लोग शरीर निर्माण आहार–विहार पथ्य अपथ्य से भली भाँति परिचित थे और जनसमाज को अपने ज्ञान के माध्यम से भली भांति परिचित कराते थे जिसका अनुसरण करते हुये व्यक्ति स्वस्थ रहता था।[3]

आयुर्वेद चिकित्सा से अधिक रोगो के बचाव पर ध्यान केन्द्रित करता है। आयुर्वेद के अनुसार हर व्यक्ति में एक ऊर्जा होती है जो मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर नियंत्रण रखती है। आयुर्वेद के अनुसार तीन जैविक ऊर्जा होती है। जो व्यक्ति के शरीर और मन में स्थित होती है। इन ऊर्जाओं को दोषों के रूप में व्यक्त किया गया है। जिसे त्रिदोष भी कहा जाता है। ये त्रिदोष वात पित्त और कफ हैं। ये त्रिदोष पंच मूल तत्वों से उत्पन्न होते हैं[1] जिन्हें पंचमहाभूत कहा जाता है ये है पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश। मानव शरीर के प्रत्येक रोग में इन त्रिदोषों की भूमिका होती है।[4]

त्रिदोष अवधारणा :– यह शरीर पंचमहाभूतो (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) से निर्मित है पृथ्वी तत्व आधार है शरीर और आकाश तत्व शरीर में रिक्त स्थान के रूप में विद्यमान रहता है जैसे मुख गुहा नाक के छिद्र तथा कानों आदि में इस आधार पर देखा जाय तो दोनो तत्व शरीर मे निष्क्रिय है। इनमें किसी प्रकार की क्रिया नहीं होती शेष तत्वो में जल तत्व कफ है। अग्नि तत्व पित्त है और वायु तत्व वात है। [5]

वात पित्त कफश्र्चेति त्रयो दोषाः समासतः।
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च।।

ये तीनों शरीर का धारण अपनी प्रकृत अवस्था में करते हैं जब इन तत्वों में विकृति आ जाती है तो ये शरीर के अन्दर विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न करते हैं। जब इनका ठीक तरह से प्रतिकार नही किया जाता है तो शरीर का नाश कर देते हैं। जब ये प्रकृत या साम्यावस्था में रहते हुये शरीर धारण करते हैं तो वे धातु कहलाते हैं। जब इनके अन्दर विकृति या विषमावस्था आ जाती है और शरीर को दूषित करते हैं तो इन्हें दोष कहा जाता है।[6]

*** शोधार्थी, सामाजिक एवं मानविकी विभाग के अन्तर्गत इतिहास विषय, महात्मा गॉधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म0प्र0)**
****शोध निर्देशक, वरिष्ठ प्रवक्ता, इतिहास विषय, महात्मा गॉधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म0प्र0)**

चरक संहिता में भी इस बात का जिक्र किया गया है कि वात, पित्त, कफ ये त्रिदोष मानव शरीर मे सर्वदा विद्यमान रहते हैं।

दोषा पुनस्त्रयो वात पित्त श्लेष्माणः।
ते प्रकृति भूताः शरीरोपकारका भवन्ति।।
विकृतिमापन्नास्तु खलु नानाविधैविर्कारेः
शरीरमुपतापयन्ति।

अर्थात्– प्राकृतावस्था में लाभ प्रदान करते हैं और विकृति की स्थिति उत्पन्न होने पर शरीर में रोगों का सृजन करते हैं अर्थात इनका साम्यावस्था में रहना आरोग्यता प्रदान करता है और जब इसमे विषमावस्था की स्थिति होती है तो विकार का जन्म होता है।[7] महाकाव्य महाभारत में वर्णित है–

शीतोष्ण चैव वायुश्र्च शारीरजा गुणाः।
तेषा गुणाना साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम्।

शीत, उष्ण, वायु अर्थात कफ, पित्त और वायु अगर ये तीनो गुण समान अवस्था मे रहते हैं तो व्यक्ति नीरोगी रहता है। यही स्वास्थ्य के लक्षण हैं।[8] वेदों में वायु के पाँच प्रकार बताये गये हैं प्राण, उदान, व्यान, समान तथा अपान इस भेद से वात के भी पाँच प्रकार होते हैं।

प्राण वायु शिरः प्रदेश में चलायमान रहता है। उर नाासिका नाभि तथा कण्ठ प्रदेश में **उदानवायु** गतिशील रहती है यह वायु वाक प्रवृति, कर्म करने का भाव, ऊर्जा बल और स्मृति का कार्य करती है। **व्यान वायु** का मुख्य स्थान हृदय प्रदेश है यह सम्पूर्ण शरीर में गतिशील रहती है ये वायु वेगवान होती है गति प्रदान करना अंगो को नीचे ऊपर की ओर ले जाना, ऑखे बन्द करना खोलना, जॅभाई आदि का कार्य व्यान वायु करती है। **समान वायु** पाचक अग्नि के पास रहती है यह वायु कोष्ठ प्रदेश के चारो तरफ घूमती है आमाशय से अन्न को ले जाने और पचाने का कार्य करती है पचे हुये आहार से रस मूत्र–मल को अलग–अलग कर उन्हे उनका जो स्थान है वहाँ पहुँचाता है।

अपानवायु मुख्य रूप से गुदा प्रदेश में व्याप्त रहता है यह कमर मूत्राशय एवं मूत्रवाही स्त्रोतो, मूत्रमार्ग तथा ऊरूओ में पाया जाता है यही शुक्र, मलमूत्र, गर्भाशय से गर्भ की उचित समय पर निकालने का भी कार्य करता है।

अग्नि तत्व अर्थात पित्त के भी पाँच प्रकार हैं

१. पाचक २. रंजक ३. साधक ४. आलोचक ५. भ्राजक

पाचक पित्त खाये हुए आहार को पचाने तथा रस एवं मलमूत्र को विभाजित करता है ओर वहाँ रहकर रंजक आदि पित्तों को शक्ति प्रदान करता है उसे पाचक पित्त कहते हैं।

रंजक पित्त आमाशय में रहता है वह रस को रंग प्रदान करता है।

साधक पित्त हृदय में रहता है यह पित्त बृद्धि अहंकार आदि के माध्यम द्वारा इच्छित पदार्थो की सिद्धि करने का कार्य करता है जो पित्त स्वरूप, आकार या वर्ण को देखने में सहायक होता है। यह पित्त दृष्टि मण्डल में रहता है उसे **आलोचक** पित्त कहते हैं।

भ्राजक पित्त त्वचा में रहता है यह त्वचा को सौन्दर्यता प्रदान करता है।

जल तत्व अर्थात् कफ भी पाँच प्रकार का होता है–

१. अवलम्बक २. क्लेदक ३. बोधक ४. तर्पक ५. श्लेष्क

अवलम्बक कफ उरः प्रदेश में रहता है त्रिकास्थि और हृदय को सहारा प्रदान करता है और हृदय में व्याप्त होकर जलकर्म के माध्यम से आमाशय आदि अन्य कफ के स्थानो को सहायता करता है। **क्लेदक** कफ आमाशय में रहकर कार्य करते हुये आहार समूह को गीला करता है।

बोधक कफ जीभ में रहता है और वही पर रहकर मीठे खट्टे आदि रसो का आभास कराता है

तर्पक कफ मस्तिष्क में रहता है यह शरीर की इन्द्रियों को अपने माध्यम से तृप्त करता है।

श्लेष्क कफ यह शरीर के सन्धिस्थलो में रहता है सन्धियों को यह जोड़ने का काम करता है।[9] ऋतुओं का त्रिदोष पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसकी चर्चा अग्नि पुराण में की गई है

शिशिर च वसन्ते च निदाघे च तथा क्रमात्।

चयप्रकोपप्रशमाः कफस्य तु प्रकीर्तिता।।22।।
निदाघवर्षारात्रौ च तथा शरदि सुश्रुत।
चयप्रकोपप्रशमाः पवनस्य प्रकीर्तिता।।23।।
मेघकाले च शरदि हेमन्ते च तथा क्रमात्।
चयप्रकोपप्रशमास्तथा पित्तस्य कीर्तिताः।।24।।[10]

कफ के चय प्रकोप तथा प्रशमन क्रमशः शिशिर वसन्त तथा शरद ऋतु में बताये गये हैं अर्थात कफ का चय शिशिर ऋतु में तथा प्रशमन ग्रीष्म ऋतु में होता है। ग्रीष्म ऋतु में वायु का संचय प्रकोप वर्षा तथा रात्रि में और शरद ऋतु में शमन होता है। इस प्रकार पित्त का संचय वर्षा में प्रकोप शरद में तथा शमन हेमन्त ऋतु में बताया गया है।[11] अग्निपुराण में त्रिदोष लक्षणों की चर्चा करते हुये कहा गया है।

अस्थिभंगः कषायत्वमास्ये शुष्कास्यता तथा।
जृम्भणं रोमहर्षश्र्च वाातिकव्याधिलक्षणम् ।।44।।[12]

अस्थिभंग अर्थात हड्डियों का टुटना या व्यथित होना, मुख का स्वाद कसैला होन, मुख का सूखना जम्भाई आना, रोये खड़े होना वात रोग के लक्षण हैं।[13] वात व्याधि से ग्रसित व्यक्ति में गले का स्वर दुर्बल हो जाता है। आवाज अस्पष्ट फटा हुआ होता है। ऐसे व्यक्तियों मे कार्य के प्रति उतावलापन होता है। और मनोविकार ज्यादा होते हैं। इनमे भय द्वेष भी शीघ्रता से होते हैं इनके केश, रोम, नख, दन्त चेहरा आदि देखने मे कठोर प्रतीत होते हैं। चलते समय इनके जोड़ो से ध्वनि होती है।[14]

नखनेत्रशिराणां तु पीतत्वं कटुता मुखे।
तृष्णा दाहोष्णता चैव पित्तव्याधिनिदर्शनम्।।45।।

नाखून नस एवं नाड़ियों का पीला होना मुख में कडवापन प्यास लगना शरीर में दाह या गर्मी ये पित्तव्याधि के लक्षण हैं।[15] पित्त के अधिक होने से व्यक्ति अपने कार्यो के प्रति तीक्ष्ण होता है। ऐसे व्यक्तियो मे अग्नि तत्व ज्यादा होते हैं ऐसे व्यक्ति ज्यादा आहार लेते है इनका व्यवहार भी तीक्ष्ण होता है।[16] पित्त प्रकृति के विषय में सुश्रुत संहिता में कहा गया है।

मेधावी निपुणमतिर्विगृह्य वक्ता
तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्यः।
सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान्
सम्पश्येदपि च हुताशविद्युदुल्काः।
न भयात् प्रणमेदनतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानरूचिः।
भवतीह सदा व्यथितास्यगतिः स भवेदिह पित्तकृतप्रकृतिः।।[17] **(सु. शा.4)**

पित्त गुण वाला व्यक्ति मेधावी होता है। उसकी बुद्धि तेज व अपने शब्दों को अच्छी तरह से व्यक्त करने वाला वह सभाओ में हारता नहीं है। ऐसे व्यक्ति के स्वप्न में लाल रंग का कोई पदार्थ या पुष्प दिखाई पड़ता है। उसे स्वप्न में विद्युत, अग्नि, या उल्का दिखाई देता है। ऐसा व्यक्ति भयभीत नहीं होता अर्थात भय के आगे घुटने नही टेकता उदण्ड व्यक्तियों के प्रति वह कठोर होता है। मृदु व्यक्तियो के प्रति सान्त्वना रखता है दान देने वाला होता है तथा उसके चेहरे पर सदैव चिन्ता व विचार मग्न की स्थिति होती है।[18]

आलस्यं च प्रसेकश्र्च गुरूता मधुरास्यता
उष्णाभिलाषिता चेति श्लैस्मिकव्याधिलक्षणम्।।46।।[19]

आलस्य मुँह में पानी आना, भारीपन, मुँह में मीठेपन का अहसास धूप या आग के पास बैठने की इच्छा उष्ण पदार्थो को खाने की इच्छा ये उष्ण अर्थात् कफ के लक्षण हैं।[20] कफ प्रवृत्ति का व्यक्ति दूसरे के अहसानो को मानने वाला धैर्यवान, सहिष्णु, किसी के लालच में न आने वाला तात्कालिक बातों को देर से समझता है। उसका स्वर गंभीर होता है उसे स्वप्न में अधिकतर जलाशय दिखाई पड़ते हैं उसका शरीर सौन्दर्यमय होता है। वह कष्टों को सहन करने वाला बड़ो को सम्मान करने वाला साथ ही साथ दृढ निश्चयी भी होता है।[21] त्रिदोष शमन के बारे में चर्चा करते हुये बताया गया है।

स्निग्धोष्णमन्नमभ्यङगस्तैलं पानादि वातनुत्।
आज्य क्षीरं सिताद्यं च चन्द्ररश्म्यादि पित्तनुत्।47।।

सक्षौद्र त्रिफला तैलं व्यायामादि कफापहम् ।48।।[22]

स्नग्ध और गरम–गरम भोजन तेल का मालिश और तेलपान से वातरोग का निवारण हो जाता है। घी दूध मिश्री आदि एवं चन्द्रमा की किरण से पित्त रोग का शमन होता है। शहद के साथ त्रिफला का तैल लेने व्यायाम आदि से कफ का शमन होता है।[23] इस प्रकार इन ग्रन्थों में शारीरिक लक्षणों के साथ मानसिक प्रवृत्तियों का भी वर्णन किया गया है। आज के दौर में भी होम्योपैथ और आयुर्वेद चिकित्सा में कुशल चिकित्सक रोगियों में व्याप्त शारीरिक व्याधि के साथ–साथ उसके मानसिक लक्षणों को ध्यान में रखते हुए उपचार करते हैं।

निष्कर्ष :– प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में बताया गया है कि किस पदार्थ को कब कैसे ग्रहण करना चाहिए किसके ग्रहण करने से कौन से दोष की अधिकता होगी, किस ऋतु में कौन से दोष बढ़ते हैं ऋतु के अनुसार कौन से पदार्थ त्याज्य और कौन से उपयोगी हैं। इसकी पूरी सारणी भी मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति को इन दोषों इसकी प्रकृति के बारे में जानना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति के अनुसार औषधियों का सेवन करना चाहिए। आयुर्वेद की अद्भुत खोज त्रिदोष सिद्धांत है। त्रिदोष सिद्धांत जो एक पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांत है। जिसके ज्ञान के अभाव में कोई भी चिकित्सा पूर्ण नहीं हो सकती। इसके द्वारा रोग का निदान और उपचार के अलावा रोगी की प्रकृति को समझने में सहायता मिलती है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. पाण्डेय गोविन्द चन्द, वैदिक संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन प्रयाग, संस्करण 2001, पृष्ठ 527।
2. आचार्य शर्मा प्रियव्रत, आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, चौखम्भा ओरियन्टालिया वाराणसी, संस्करण 2012, पृष्ठ 16,15
3. आचार्य शर्मा श्रीराम, वेदो का दिव्य संदेश, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि मथुरा, संस्करण 2015, पृष्ठ 366।
4. http://Litrature.awgp.org/book/aayurved ka vyapak kshetra/vi.9.
5. त्रिपाठी, डॉ0 ब्रह्मानन्द, अष्टांगहृदयम सूत्रस्थानम, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, संस्करण 2022, पृष्ठ 8।
6. वैद्य पाठक रामरक्ष, त्रिदोष–तत्व विमर्श, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, संस्करण 1950, पृष्ठ 1।
7. चरक संहिता, विमानस्थानम, अध्याय 1।
8. महाभारत, शान्ति पर्व 16 / 11।
9. त्रिपाठी डा0 ब्रह्मानन्द अष्टांगहृदयम, पृष्ठ 171, 172, वही।
10. अग्निपुराण 280 / 22 / 23 / 24
11. खण्डेलवाल एस.एन (भाषानुवाद तथा संकलनकर्ता) पुराणों में आयुर्वेद, चौखम्भा कृष्णदास, अकादमी वाराणसी संस्करण 2020, पृष्ठ 10,11,12
12. अग्नि पुराण 280 / 44।
13. खण्डेलवाल एस.एन (भाषानुवाद तथा संकलनकर्ता) पुराणों में आयुर्वेद पृष्ठ 11, वही।
14. श्री धर्मदत्त वैद्य, त्रिदोष संग्रह, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण 1968, पृष्ठ 53।
15. अग्नि पुराण 280 / 45।
16. श्री धर्मदत्त वैद्य, त्रिदोष संग्रह, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण 1968, पृष्ठ 53।
17. सुश्रुत संहिता शारीरस्थानम 4।
18. श्री धर्मदत्त वैद्य, त्रिदोष संग्रह, पृष्ठ 75, वही।
19. अग्नि पुराण 280 / 46।
20. खण्डेलवाल एस.एन (भाषानुवाद तथा संकलनकर्ता) पुराणों में आयुर्वेद पृष्ठ 12, वही।
21. श्री धर्मदत्त वैद्य, त्रिदोष संग्रह, पृष्ठ 75, वही।
22. अग्नि पुराण 280 / 47 / 48।
23. खण्डेलवाल एस. एन (भाषानुवाद तथा संकलनकर्ता) पुराणों में आयुर्वेद पृष्ठ 12, वही।

★

‘अगम बहै दरियाव’ (शिवमूर्ति) में अभिव्यक्त भारतीय जन संवेदना के विविध स्वर

डॉ. अंकिता विश्वकर्मा*

शोध सार :– ‘अगम बहै दरियाव’ उपन्यास में उत्तर भारतीय जनमानस के संवेदनाओं का वर्णन हुआ है। कथाकार शिवमूर्ति ने भारतीय समाज की जातिगत संरचना, राजनीति, जनता की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। भारतीय न्यायव्यवस्था की लंबी प्रक्रिया के कारण किसानों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है। जातिगत कुसंस्कारो के कारण सवर्णों के आदर्श महापुरूष भी सवर्ण ही होते है। वोट की राजनीति तथा आरक्षण जैसे ज्वलंत मुद्दों को उठाया गया है। किसानों के जीवन में आजादी के बाद भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। पहले वे सेठ साहूकारों की मार झेलते थे; वर्तमान में फर्जी लोन, किसान क्रेडिट कार्ड तथा जमीन कुर्की के कारण आत्महत्या का रास्ता अपना रहे है।

बीज शब्द :– न्याय व्यवस्था, जमीन, दलित, राजनीति, किसान, लोन, फसल, मौसम, सरकार।

मूल आलेख :– शिवमूर्ति द्वारा लिखित उपन्यास ‘अगम बहै दरियाव’ उत्तर भारतीय ग्रामीण जनजीवन को चित्रित करने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसके माध्यम से कथाकार ने हासिये पर खड़े किसान को मुख्य केन्द बिन्दु में स्थापित किया हैं।इस उपन्यास का कुछ भाग आखिरी छलांग, पगडंडिया, पांडे की पकड़ तथा संतोखी की विपत्ति नाम से प्रकाशित हुआ है। उपन्यास कुल 22 उपशीर्षकों से भारतीय किसान जीवन उसकी समस्याओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास करती हैं।

‘अगम बहै दरियाव’ उपन्यास में आजादी से पूर्व और बाद के भारतीय समाज की त्रासदी को अभिव्यक्त करने के साथ भारतीय न्यायव्यवस्था में दम तोड़ते किसानों का मार्मिक चित्रण हुआ हैं। भारतीय किसान संतोखी के जमीन पर जमींदार छत्रधारी ठाकुर ने जबरदस्ती कब्जा कर लेते है। स्वतंत्रता के बाद भी छोटे किसान भू–माफियाओं एवं जमींदारों के शोषण से मुक्त नहीं हो पायें है। संतोखी अपनी जमींन को प्राप्त करने के लिए न्यायालय की शरण लेता हैं। संतोखी भारतीय न्याय व्यवस्था में संघर्ष करते हुए 70 वर्ष का हो गया था। किंतु हाइकोर्ट में जीतने के बाद भी छत्रधारी और उसके जमीन पर पुनः कब्जा कर लिया । जिससे आहत संतोखी दलित और गरीबों के मसीहा जंगू से मदद की गुहार लगाता है। ‘‘अदालत ने डुग्गी पिटवाकर हमारा कब्जा बहाल किया, लेकिन उनकी नंगई के आगे मेरी बोई फसल को उलट दिया। इनका भतीजा कहता है कि बाँसकोरट से ऊपर होता है।’’[1] जंगू ने उन्हे जमीन पर कब्जे का आश्वासन दिया।

गजाधर छत्रधारी के यहाँ मुंशी का काम करते था, वह उनका स्वामि–भक्त सेवक था , वर्तमान समय की कालाबाजारी को दर्शाते हुए कथाकार ने दिखाया है कि किस प्रकार पूँजीपति अपने सेवको के नाम पर अपना व्यवसाय और सम्पत्ति को बढाने का काम करते है। छत्रधारी भी गजाधर के नाम पर जालसाजी करके भट्ठा खुलवाता है, किन्तु आगे चलकर वह टैक्स की अदायगी नहीं करता है। जिससे गजाधर के ऊपर सरकारी वसूली चढ़ जाता है। गजाधर बहुत खोजबीन के बाद यह पता लगा लेता है कि छत्रधारी सिंह ही भट्ठे का मालिक है। किन्तु अदालत में पेश होने के पहले ही छत्रधारी सिंह का भाँजा दुर्गेश पैसे चोरी के आरोप में गजाधर के घर पर आकर उसको जमकर पीटता है। स्वामी भक्ति में गजाधर ने मुखबिरी की थी। शायद उसे आज उसी का फल मिल रहा था। सद्गति के दुःखी चमार की भाँति दलित गजाधर की इस प्रकार मत्यु उसकी सेवा का प्रतिफल था। ‘‘लेकिन नहीं खड़े हो सके। मार के तेरहवें दिन मर गए।’’[2] जंगू उर्फ जंगबहादुर जिसे गजाधर पढ़ा–लिखाकर एक योग्य व्यक्ति बनाना चाहते थे, किन्तु

*** असिस्टेंट प्रोफेसर (वरीय प्राध्यापक) विभागाध्यक्ष–हिन्दी, पूर्णियाँ कॉलेज (पूर्णियाँ विश्वविद्यालय), पूर्णियाँ।**

उनकी मृत्यु के बाद गजाधर बहू को अपना घर छोड़ना पड़ा। शिक्षण संस्थानों में जाति के नाम पर सवर्ण विद्यार्थियों में विद्यमान कुसंस्कारों का वर्णन हुआ है। जातिगत संकीर्णता बच्चों को उनके परिवार से मिलता है। जंगू गलत आरोप में फसकर जेल चला जाता है। जेल से लौटने के बाद वह दलितों के हित में बंदूक उठा लेता है और उनके हित के लिए संकल्पित होकर जंगल में छिपकर रहने लगता है।

जंगू की भाति तूफानी दलित चेतना से परिपूर्ण पात्र है वह समाज में दलितों की स्थिति में सुधार हेतु हमेशा लगा रहता है। भारतीय संविधान ने समाज के सभी लोगो के राजनीति में प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। किन्तु जब यह व्यवस्था लागू हुआ तब सवर्ण समाज की प्रतिक्रिया को इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है– ''ठाकुर–बाभन के रहते दलित गाँव की परधानी करेगा। लेकिन कांग्रेस ने वह भी कर दिया। जो थोड़ी बहुत इज्जत गाँव के सवर्णो की बची थी, उसे भी मटियामेट कर दिया।''[3] तूफानी की माँ दहबंगा प्रधान की आरक्षित सीट पर मात्र बाईस सीटों के अंतर से चुनाव जीत जाती है।

भारतीय समाज जातिगत वर्गों में विभाजित है। जिससे यहाँ की राजनीति अछूती नहीं है। गाँव की राजनीति में भी जातिगत समीकरणों की बड़ी भूमिका होती है। जातिगत विद्वेष के कारण आजादी के बाद भी 'अंग्रेजों के फूट डालो राज करो' के समर्थक दलित और पिछड़ों पर राज करते है। उन्हें अपने प्रत्येक कार्य के लिए सवर्ण प्रतिनिधियों के दरवाजे की परिक्रमा करना पड़ता है। जातिगत संर्कीणता के कारण भारतीय जनता के पूज्य और आर्दश महापुरुष भी उनकी ही जाति के होना चाहिए। नेल्सन मंडेला को भारतरत्न देने की घोषणा पर लोगो में उनकी जाति जानने की उत्सुकता पहले थी। अंबेडकर की प्रतिमा को स्थापित करने से पूर्व ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रसित लोगों की मनोदशा का चित्रण किया है– ''इसी जमीन को बुधइया ने चोरी–चोरी पट्‌टा करा दिया। हमारे टोले की जमीन पर चमार की मूर्ति कैसे लग जाएगी ?''... ''चमार क्यों कहते है ? वे हमारे संविधान के निर्माता है।''... ''निर्माता है तो क्या ? रहेगा तो चमार ही। बाभन तो नहीं हो जाएगा!'[4]

भारतीय राजनीति में टिकट केवल पूँजीपति और धन सम्पन्न व्यक्तियों को ही मिलता है। तूफानी वकील आजीवन सत्ता पक्ष दलित पार्टी की सेवा की। लेकिन चुनाव का समय आने पर जब टिकट देने की घोषणा जब हुयीं तब टिकट किसी दूसरे सवर्ण जाति के प्रभुत्वशाली व्यक्ति को दे दिया गया– ''क्या दलित की बेटी को दलित की हालत का पता नही है।''[5] राजनीति का सामाजिक यथार्थ अर्थ पर भारी है।

'अगम बहै दरियाव' उपन्यास में किसान जीवन की समस्याओं को भी चित्रित किया गया है। कल्याणी नदी के कंठ पर बसे बनकट गाँव के सभी किसानों की समस्याएँ एक जैसी है। बिना किसी अपराध के मौसम और प्रशासन की दोहरी मार को झेल रहे है। मौसम के आकस्मिक परिवर्तन के कारण अत्यधिक वर्षा, सूखा और पाला से फसल बर्बाद हो जाता है– ''आजा पूरखा कहते आए हैं कि भादो में सुग्गा उपवास करते है, माघ में मजूर। उस पर आठ दिन की बदरी–बरसात। मजदूरी धतूरी एकदम ठप्प। दोनो जून उपवास हो रहा है।''[6]

उदासी पूरब के किसानों की स्थायी मनोदशा है। भारत विकास के पथ पर अग्रसर है; विश्व की तीसरी अर्थव्यवस्था बनने का दम्भ भरता है; फिर भी उसी दौर में किसानों की स्थिति स्वतंत्रता पूर्व में जैसी थी वैसी ही बनी हुयीं है– ''सबकी किस्मत बदल गई। बस हम किसानों की नहीं बदली। जब नवाबों अंग्रेजों जमींदारों का राज था; तब भी हम भिखारी थे और आज भी भिखारी है सुराज मिलने के इतने सालो बाद भी।''[7]

अगम बहै दरियाव उपन्यास में किसानो की फसल ब्रिक्री सम्बंधी समस्याओं का चित्रण हुआ है। कथा की प्रमुख पात्र पहलवान गेहूँ बेचने के लिए मंडी जाते है लेकिन सरकारी खरीद बिक्री केन्द्र पर किसानों की नकली खतौनी निकलवाकर बिचौलिए किसान के नाम पर अपनी खरीदी गेहूँ सरकारी सेंटर पर बेचने का कार्य करते है। बाजारीकरण के कारण सरकार किसानों के हित के स्थान पूँजीपतियों के लाभ की चिंता करती है। भारत सरकार को गेहूँ आयात करने की आवश्यकता क्यों पड रही है? यदि सरकार किसानों से सीधे गेहूँ खरीदे तो सरकार और किसान दोनो का हित होता लेकिन वस्तुस्थिति इससे इतर है।

फसलो का भंडारण न कर पाना भी किसानों की प्रमुख समस्या है– ''जिन प्राइवेट कंपनियों ने सीजन में साढ़े सात–आठ सौ रुपये कुंटल की दर से गेहू खरीदकर पास के बाजार में किराए के गोदाम लेकर भंडारण कर दिया था उन्होने आयात के लिए टेंडर भरा और सरकार ने उनसे वही गेहूँ सोलह सौ रुपये प्रति कुंटल की दर से खरीद लिया। चार पाँच महीने में ही इन कंपनियों को सौ प्रतिशत का मुनाफा हो गया।''[8] सरकार को किसानों के फसल की लागत मूल्य देने में कष्ट होता है।

भारत में गन्ना किसानों की समस्या हमेशा बनी रहती है। गन्ना किसानों के बकाया भुगतान हेतु किसानों को मिल मालिकों तथा सरकार के खिलाफ लंबित भुगतान हेतु धरना प्रर्दशन का सहारा लेना पडता है। यह बकाया बढ़कर लगभग दो अरब सत्तर करोड़ हो गया है। मिल के बिगड़ने और गन्ना की खरीद न होने से किसानों को अपनी फसल खेत में ही जलानी पड़ती है। फसल के साथ उनकी खुशियाँ जलकर खाँक हो जाती है। किसानों की समस्याओं के समाधान हेतु सन् 1980 से 2003 और आज तक गन्ने, आलू और गेहूँ का सही दाम देने के लिए संघर्ष करना पड रहा है। सरकार उद्योगपतियों के विभिन्न सुविधाओं का ध्यान रखती है, किन्तु किसानों का हित उनकी कार्यसूची में भी नहीं है– ''उद्योगपतियों से तो मर्चेंट चैम्बर में जाकर पूछ लेती। कब तक सरकार उद्योगपतियों को सगा और किसानों को सौतेला मानती रहेगी?''[9]

बनकट गाँव की नाटक मंडली में पांडे कृषि के अतिरिक्त कार्य करते थे। ट्रैक्टर के लिए उन्होने बैंक से लोन लिया था; जिसे उनका पुत्र दिवाकर चलाता था। किन्तु दिवाकर की पुलिस में नौकरी लगने के बाद ट्रैक्टर दरवाजे पर शोभा की वस्तु मात्र बनकर रह गयी थी। बाद में सरकार बदलने पर पुलिस भर्ती को रद्द कर दिया। जिससे आर्थिक अभाव के कारण पांडे ट्रैक्टर की किश्ते समय पर नहीं भर पाता है। बैंक से रिकवरी आ जाता है। 31 मार्च 2007 तक के लघु एवं सीमांत किसानों के सभी ऋण माफ कर दिए जाते है, किन्तु 1996–1997 के किसानों का ऋण माफ नहीं किया गया। सरकार की विषम नीतियों के कारण भी किसानों की समस्याएँ कम होने की बजाय बढ़ रही है। बकाया राशि का भुगतान न होने पर सरकार किसानों की माँ समान भूमि कुर्की करके वसूली कर लेती है। समाज में उनका मान सम्मान मिट्टी में मिल जाने से पांडे जैसे ना जाने कितने ही किसान आत्महत्या कर लेते है। ''पांडे की कमर में केवल पटरे का जांघिया था। धड़ पर जनेउ और दाहिने कलाई में लाल–पीले धागे का रक्षासूत्र बँधा था। सिर तनिक बाई तरफ झुका हुआ था।''[10] किसान जीवन की समस्याएँ अनेक है। बिजली–पानी और खाद न मिलने की समस्या के अतिरिक्त गन्ना तथा अनाज का सही दाम न मिलना किसान जीवन की सनातन समस्याएँ है; किन्तु इनके साथ आज लोन की किश्त न चुका पाने पर जमींन की नीलामी, फर्जी लोन, तथा फर्जी क्रेडिट कार्ड के कारण जेल जाने का दंश यह वर्तमान की देन है।

इस प्रकार अगम बहै दरियाव उपन्यास में शिवमूर्ति ने ग्रामीण जीवन के अगड़े पिछड़े दलित अल्पसंख्यक सभी की अनुभूतियों के वास्तविक यथार्थ का चित्रण किया है। भारतीय राजनीति के विद्रूप रूप, न्याय व्यवस्था की लेट–लतीफी, थाने तहसीलों का वर्णन हुआ है। किसान जीवन की त्रासद जीवन के साथ उसके जीवन में आए नवीनतम समस्याओं का मर्मस्पर्शी रेखांकन हुआ है।

संदर्भ–सूची :–

1. शिवमूर्ति , अगम बहै दरियाव , 2024 ,राजकमल पेपरबैक्स नई दिल्ली , पृष्ठ – 392।
2. वही, पृष्ठ– 126।
3. वही, पृष्ठ – 303।
4. वही, पृष्ठ – 219।
5. वही, पृष्ठ – 509।
6. वही, पृष्ठ – 74।
7. वही, पृष्ठ – 518
8. वही, पृष्ठ – 491।
9. वही, पृष्ठ – 580।
10. वही, पृष्ठ – 559।

लोक गीतों में नारी संवेदना

डॉ. कुमारी मनीषा*

शोध–सारांश :– लोक साहित्य मानव जीवन का अभिन्न अंग है। यह अलिखित होकर भी जन–जन के अधरों पर विद्यमान है। लोक साहित्य के अंतर्गत लोक गीतों के अध्ययन से नारी जीवन पर जितना प्रकाश पड़ा है उतना अन्य किसी विधा में नहीं। नारियों ने लोक गीतों के माध्यम से अपनी संवेदनाओं को व्यक्त किया है। इन गीतों के भीतर टटोला जाए तो उनके मन के दर्द की गांठे, कई परतें खुलती नजर आती हैं। लोक गीत सामूहिक रचना होती हैं। स्त्रियाँ सबके साथ हँसकर बतकही कर अपनी संवेदनाओं को खुलकर इन गीतों में अभिव्यक्त करती है। दूसरी बात, महिलाएँ अपनी उन मनोभावों को भी खुलकर इन गीतों में अभिव्यक्त करती हैं जिसे वह समान्य जीवन में कहने से झिझकती है। लोक साहित्य ग्रामीण स्त्रियों के हृदय में बसा वह मनोहारी साहित्य है जो उसके जीवन के सुख–दुःख, हर्ष–उल्लास, जय–पराजय, तीज–त्यौहार आदि का यथार्थ और भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है। भोजपुरी, राजस्थानी, बुंदेली, अवधी, हरियाणवी, मैथिली आदि लोक गीतों में स्त्री की दशा का चित्रण, उसके अव्यक्त मनोभावों का चित्रण समान भावभूमि पर हुआ है। इसमें स्त्री संवेदना के साथ–साथ स्त्री के स्वाभिमान की भी झलक इन गीतों में दिखाई देता है। इन लोक गीतों की अभिव्यक्तियाँ सीधी, सरल, यर्थाथ होने के कारण अत्यंत मार्मिक है और सीधे–सीधे हृदय को स्पर्श करने में समर्थ है।

संकेत शब्द :–लोक साहित्य, संवेदना, लोकगीत, नारी, मनोभाव, अव्यक्त के विभिन्न मनोभाव।

लोक साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है, जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप से भावमयी अभिव्यक्ति करती है। सृष्टि के विकास के साथ ही लोक साहित्य का उद्भव माना जाता है। लोक साहित्य वर्त्तमान उन्नत एवं कलात्मक साहित्य का जनक है। लोक साहित्य जनता जनार्दन को ही अपना प्रभु मानता है, उसमें किसी का व्यक्तित्व नहीं झलकता, बल्कि इसमें समस्त समाज की आत्मा मुखरित होती है। पं. रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि ''जिस तरह वेद अपौरूषेय माने जाते हैं उसी तरह ग्राम गीत भी अपौरूषेय हैं।''[1] लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक गीतों के अध्ययन से नारी जीवन पर जितना प्रकाश पड़ता है, उतना अन्य किसी विधा में नहीं। नारी ने लोक गीतों में अपने जीवन की दुःखमय गाथाओं विभिन्न तरह के मनोभावों को बहुत मुखर होकर अभिव्यक्त किया है। श्रम करते हुए, खेत में धान रोपती महिलाओं द्वारा गाए जानेवाले गीत महिलओं के पक्ष को सामने रखते हैं। इन गीतों के भीतर टटोला जाए, तो उनके मन के दर्द की गांठे, कई परतें खुलती नजर आती है। लोक गीत में इस प्रकार की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अन्य माध्यमों की अपेक्षा ज्यादा है। लोक साहित्य इस मामले में उदार है। इन लोक गीतों में स्त्रीवादी आलोचना के कई बिंदू हो सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात है स्त्री मन की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। यहाँ इस बात को भी समझना होगा कि ग्रामीण महिलाओं की अभिव्यक्ति का एक माध्यम लोक गीत ही तो है, जहाँ वे बेझिझक अपनी बात बिना पहचान दिए रख सकती हैं। लोक गीत सामूहिक रचना होते हैं। सबके साथ हंसकर बतकही कर अपना दुःख, अपनी कुंठाएँ भुलाने का जरिया गीत ही तो होते हैं। दूसरी बात महिलाएँ अपनी भावनाओं को खुलकर इन गीतों में अभिव्यक्त करती है। इनकी विरह व्यथा का मार्मिक चित्रण 'बारहमासा' गीतों में मिल जाती है कारण है रोजी रोटी के जुगाड़ में प्रिय से अलग रहने की विवशता ग्रामीण स्त्री जीवन की कड़वी सच्चाई है। आज भी ''रेलिया बैरन पिया को लिए जाये रे...'' रेल, जहाज आदि में मजदूर विदेश कमाने जाते हैं अपनी पत्नी बच्चों को छोड़कर। ऐसे में बारह मास का एकांकी जीवन स्त्रियों के लिए बड़ा ही कष्टप्रद होता है।

आज भी ग्रामीण स्त्रियाँ विवशता, कुठांओं और अतृप्त इच्छाओं के संदर्भ में जो बातें कहने से झिझकती है उन सभी बातों और संवेदनाओं को लोक गीतों के माध्यम से खुलकर अभिव्यक्त करती हैं। लोक साहित्य ग्रामीण स्त्री के हृदय में बसा वह मनोहारी साहित्य है जो उसके जीवन के सुख–दुःख, हर्ष,

***शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)**

उल्लास, जय–पराजय, तीज –त्योहार आदि का यर्थाथ एवं भावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करता है। डॉ. अर्जुनदास केशरी का मानना है कि ''मौखिक परम्परा से प्राप्त समस्त साहित्य लोक साहित्य कहलाता है।''[2] लोक साहित्य मानव जीवन का अभिन्न अंग है। यह अलिखित होकर भी जन–जन के अधरों पर विद्यमान है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सर्वजन का साहित्य समान्य जन का साहित्य तक समष्टि जीवन की परम्परा से विकसित् साहित्य लोक साहित्य है।

लोक साहित्य में अनेक राजाओं के जीवन की घटनायें, प्रादेशिक वीरों का जीवन चरित्र तथा सती स्त्रीयों के जीवन की घटनायें आदि का बड़े मार्मिक रुप में चित्रित रहती हैं। अतः लोक साहित्य के अध्ययन से तत्कालीन स्त्रियों की स्थिति का पता लगाया जा सकता है। स्त्री समाज का निर्माण करने वाली जननी और अनुपूर्णा है। वैदिक कालीन स्त्री ''कुन्ती होकर भी मातृत्व की गरीमा में रह सकती थी। द्रौपदी होकर भी पतिव्रता के आसन से नहीं हटायी जा सकती थी । वह समाज की स्थिति के लिए सहधर्मिणी थी।''[3] पर, बाद में स्त्री का गौरव धीरे–धीरे विलुप्त होने लगा। रामायण काल में स्त्री–प्रश्नों के घेरे में आ गयी। सीता की अग्नि परीक्षा ज्वलन्त प्रमाण है। बौद्धकाल में भगवान बुद्ध को नारियों के उद्धार के लिए भिक्षुणी बनने की स्वीकृति देनी पड़ी, फिर भी स्त्री समाज में अपना स्थान नहीं बचा सकी। लोक गीतों में स्त्री अपने पहले मिले स्थान को पाने के लिए भी ललायित दिखती है, तो दूसरी ओर वह स्थान न मिलने की टीस भी दिखाई देती है। लोक गीतों में, भोजपुरी और राजस्थानी क्षेत्र प्रमुख स्थान रखते हैं। हालांकि अन्य क्षेत्रों के लोक गीतों में भी स्त्री ने जो भावात्मक उद्‌गार अभिव्यक्त किये है उनमें काफि समानता दृष्टिगोचर होती है। स्त्री की दशा सदा ही सोचनीय रही है।

भोजपुरी लोक गीतों में स्त्री के अव्यक्त मनोभावों की अभिव्यक्ति :– भोजपुरी लोक गीत स्त्री जीवन के सबसे. निकट प्रतीत होती है। जीवन के हर सुख–दुःख में सच्चे साथी की तरह साथ खड़े ये लोक गीत मन के सांसों के चिर सहचरी है। लोक गीतों में स्त्री का परिवार से लेकर समाज तक हर स्तर पर शोषण दृष्टिगोचर होता है। कहीं उसे बांझ होने पर परिवारों द्वारा व्यंग्य और यातनाएँ दिये जाते है तो कहीं विधवा बहु को धार्मिक– सांस्कारिक कार्यों के लिए प्रतिबंधित किया जाता है। यहां तक कि पति भी उसे अपमानित तथा प्रताड़ित करने में पिछे नहीं रहा है। हर क्षण उसके चरित्र. पर संदेह किया जाता है। भोजपुरी लोक गीतों मे स्त्री जीवन का अत्यन्त मार्मिक चित्रण दुआ है। निश्चय ही स्त्री ने अपने ऊपर किये गये हर अत्याचार का कड़ा प्रतिरोध किया है किन्तु जीवन के हर मोड़ पर उसकी चीख, कराह व क्रंदन पुकार लोक गीतों में ध्वनित होती है। इस प्रकार लोक गीतों को स्त्री के दुःख का दस्तावेज कहे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। किन्तु अत्यन्त कष्ट सहन करके भी स्त्री पुरुष के प्रति समर्पित रहती है। इसी प्रकार लोक विश्वासों में स्त्री की दुर्बलताओं के प्रति नाकारात्मक दृष्टिकोण ही दृष्टिगोचर होता है।

भोजपुरी लोक गीतों में स्त्री के समग्र जीवन की अभिव्यक्ति है। गीतों के बोलों के माध्यम से स्त्री अपनी सम्पूर्ण मनोभावों को समझा देती है। स्त्री जीवन भर परतंत्र रहती है। उसे हर कदम पुरुषों से पुछकर ही बढ़ाना होता है।, स्त्री को बंधन में तड़पते देखकर उसकी पीड़ा को गहराई से अनुभूति करने वाली प्रख्यात लेखिका सीमोन द बुवा कहती है – ''स्त्री पैदा नहीं होती बना दी जाती है।[4] पुरूष अपनी हर उचित अनुचित बात स्त्री से मनवाना चाहता है। स्त्री के विद्रोही मन को लोक गीतों में चित्रित किया गया है। ससुराल गयी बहन से जब उसका भाई मिलने आता है और भाई उसका, हाल–चाल पूछता है तो वह गीत के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करती है–

''पीठ देखो भैयन पीठ तो देखों,
जैसे धोबी का पाट रे ।
कपड़ा, देखों भैया, कपड़ा देखों।
जैसे समनवाँ की बदरी रे .....।''

परदेश में काम करने वाले पतियों के पत्नियों को सत्य परीक्षा के त्रास से सीता की तरह गुजरना पड़ता था। इसका भी कुछ मार्मिक प्रसंग लोक गीतों में है –

''आग जल उठी, तेल खौलने लगा ।

बहन पास खड़ी होकर सपथ देने लगी
जब वह गंगा की सपथ देने लगी,
घड़े का जल सूख गया।
जब वह सूर्य को सपथ देने लगी,
तो सूर्य छिप गया।
जब वह आग का सपथ देने लगी,
तो खौलता तेल ठंडा हो गया।
लांछित स्त्री ने एक बार हाथ डाला,
दूसरी बार हाथ डाला, तीसरी बार में वह पार हो गयी।''[5]

यह पुरूष प्रधान समाज देवी स्वरूपा सीता को भी नहीं छोड़ता है, तो भोजपुर की स्त्रियों की क्या बिसात। यह लोक गीत में सीता माता की विवशता देखी जा सकती है–

''सीता अंखियों में भरली विरोग
एकटक देखिन हो।
सीता धरती में गइली समाई कुछों नहीं
बोलिन हो।''[6]

सीता के इस मौन ने ना जाने भोजपुर क्षेत्रों में कितने लोक गीतों को जन्म दिया। लोक गीतों में एक मौन प्रतिरोध व्यक्त है। यदि पति छोड़कर कही दूर चला जाये तो स्त्री कितनी व्याकुल हो जाती है इसका अनुमान इन पक्तियों से लगाया जा सकता है –

''चैन जोहत गुजर गइले सउँसे उमिर
धाव मानवता के भइले अउरी गहिर
जिनिगिए लगा गइल जिनगी लहना ।
जीयल– मुअल अबत एके बुझाए
कहीं जाई न हमके राह सुझाए।''[7]

इस प्रकार न आने कितने गीत लोक जीवन में गुनगुनाये जाते हैं, जिसमें स्त्री के विभिन्न मनोभावों को व्यक्त किया गया है। भोजपुरी लोक साहित्य में एक ओर स्त्री के उपेक्षा, अपमान, वेदना, यातना आदि की मार्मिक चित्रण है तो दूसरी ओर लोक गीतों में विरह, जन्मोत्सव, शोक, विवाह आदि के साथ–साथ अनेक ऐसे प्रसंग भी आये है जहाँ स्त्री ने पति प्रेम के सामने समस्त ऐश्वर्य को ठोकर, मार दिया है। डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय लिखते है – ''इन लोक गीतों में स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही उदात्त, शुद्ध तथा पवित्र दिखलाया गया है। स्त्री एक पतिव्रमा, सती, साध्वी के रूप में चित्रित की गई है।''[8]

राजस्थानी लोक गीतों में स्त्री के अव्यक्त मनोभावों की अभिव्यक्ति :– राजस्थानी समाज एक बंद समाज हैं, जिसमें महिलाओं को बहुत कम अवसर मिलते हैं, जहाँ वे अपने आपको किसी भी प्रकार व्यक्त कर सके। शादी–ब्याह के मौके पर उन्हें जो सीमित स्वतंत्रता मिलती हैं उसमें वे पुरुष सत्ता को ललकारती है। बारात के आगमन पर वह बरातियों के लिए गारी गीत गाती हैं.–

''काला – काला ही आया रै
गोरो एक न आयो
बूढ़ा–बूढ़ा ही आया रै
छोरो एक न आयो
छोटा–छोटा ही आया रै
लांबों एक न आयों.......।''

राजस्थान में सती स्त्री के गीत, वीरता के गीत, प्रेम–विरह के गीत बारहमासा गीत के अलावा प्रेमगीत भी गाये जाते है। प्रेमगीत में पति प्रेम के गीत है स्वतंत्र प्रेम के नहीं। जहाँ भी लड़की ने किसी दूसरे प्रेमी की कल्पना की तो वह निषिद्ध हैं, फिर वे चाहे मोर जैसा सुन्दर पक्षी ही क्यों न हो। मोहित होने का मतलब मारे जाएगें। राजस्थान में प्रेम गीत में 'कुरजा' बहुत लोकप्रिय गीत है। पीहर और ससुराल के

गीतों में नारी की वही सनातन कोमल भावनाएँ है जिसमें स्त्री की भावनाओं को सीमित कर देता है। वह कविता या प्रतीकों में अपनी बात गीत में कहती है। राजस्थान में किसी भी जन्म–मरण के अवसर पर सबसे पहले गाया जाने वाला गीत एक भगवान की वंदना है– ''घर आओ गजानंद राज......''

यह भगवान गणेश की वंदना है जिसमें तमाम देवी देवताओं को घर आने का निमंत्रण है। इसके गाने की गति आगे बढ़ने पर ओज आगे बढ़ने लगता। सुनने से लगता है जैसे स्त्री जाति तमाम देवी देवताओं को ललकार रही हो कि आओ हमें देखो हम किस हाल में जी रहे हैं। यह वंदना कम विद्रोह गीत ज्यादा लगता है। स्त्री को जहाँ भी जगह मिली वह अपनी मनोभावों को कहने में पिछे नहीं रही है। लोक साहित्य में स्त्री मनोभावों का जितना अवगाहन करते हैं, हमें लोक संस्कृति के उतने ही नए और महत्वपूर्ण पहलू नजर आते चले जाते हैं। राजस्थानी लोक गीत में संतानहीन स्त्री की मानसिक वेदना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है–

''सासू तौ कैवे म्हारी बहुवड़ बाँझड़ी
परणियों लावै ल्योडी सौक।
कासी रा बासी उमर बाधादौनी जंग म पालणौ
देराणी जेठानी बोले अबला बोल।''[9]

राजस्थानी लोक गीतों में कन्या का जन्म लेना एक अपराध की तरह वर्जित है। पुत्र को ही विशेष सम्मान दिया जाता है। पुत्र होने पर ही खुशियाँ मनाई जाती है। पुत्री होने पर शोक मनाया जाता है। रामनरेश त्रिपाठी, लिखते हैं– ''शूरता के लिए प्रशंसित जातियों में कन्या के जन्म से खुशी का न मनाया जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। उनको समाज के लिए वीर मर्द चाहिए।''[10]

बुन्देली लोक गीतों में स्त्री के अव्यक्त मनोभावों की अभिव्यक्ति :–

''अंगना में बिछ गयी खटिया
हाय राम टोटे में होय गयी बिटिया।
बिटिया भये की ससुरा ने सुन लयी
हाथ से छूट गयी लठिया,
हाय राम टोटे में होय गयी बिटिया।''

बुन्देल के जिस समाज में लड़की के जन्म लेने पर ये गीत गाया जाता हो निश्चित ही उस समाज में स्त्री की कैसी स्थिति हो सकती है। बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, और वैधव्य क बंधनों से आबद्ध स्त्री जीवन, घर के आंगन की चार दीवारी में सिसकती रहती है। स्त्री प्रतिदिन घर परिवार और रिस्तेदारों की मानसिक प्रताड्ना और दबाब का शिकार होती थी। उस समय वह इन सबका खुलकर विरोध नहीं कर पाती थी। फलतः उसके मन में कई प्रकार की धारणाएँ बैठ जाती थी, जिन्हे वह गीतों के माध्यम से प्रकट करती थी। बाल–विवाह का दुःख, सास, ननद के द्वारा परेशान करने का दुःख, क्रोध का अतिरेक और भावनाओं का आवेग सब कुछ भीतर ही उमड़ता रहता था। ऐसी परिस्थितियों में लोक गीत उस पीड़ा की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम बना, जिसमें उसने अपने ससुराल जनों को हँसी–ठिठोली के साथ अपने भावों को निशाना बनाया। दादरे गीतों में सास, ससुर, जेठ, जेठानी, देवर, देवरानी, ननद, ननदोई तक पर टीका टिप्पणी और व्यंग्य के द्वारा अपने भावों को व्यक्त करती थी। वह लोक गीत में सब कुछ, हर दर्द, हर पीड़ा को अभिव्यक्त कर जाती है। सदियों से चारदीवारियों में रहकर औरत ने जो लोक गीतों के भंडार भरे हैं, वहीं उसकी असली आवाज है। इनमें उस समय की सामाजिक, मानसिक, और लोक लहर की धड़कनों को मोतियों की तरह पूरे भारत में बिखेर दिया है।

लोक गीतों में दलित और आदिवासी स्त्री के अव्यवत मनोभावों की अभिव्यक्ति :– लोक गीतों और लोक गाथाओं का सृजन आम जनजीवन की भावनाओं की उन्मुक्त स्थिति है। लोक गीतों से ही जन मानस के दुःख, दर्द, आशा, निराशा, पीड़ा, संवेदना, छटपटाहट, चिंताएँ, कष्ट और जीवन के प्रति उनका दर्शन समझना संभव है। लोक साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि इसके मूल में मनुष्य होने का दर्द छिपा है। श्री कृष्ण देव उपाध्याय लिखते हैं – ''लोक गाथा की प्रमुख विशेषता उसका मौखिक होना है।''[11]

स्त्री के संदर्भ में लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उनके मनुष्य होकर भी, मनुष्य के समान ना जीने के अवसर मिलने की पीड़ा और उसके अनुभव का व्यक्त होना है। स्त्रियों में खासकर दलित और आदिवासी स्त्री के साथ तो यह पीड़ा बहुत ही मर्मांतक है। जहाँ आदिवासी लोक गीतों की रचना उनकी संस्कृति और उसके रहन–सहन, उनके जल, जंगल, जमीन से जुड़ाव के गीत हैं, तो वहीं दलित समाज के गीत समाज में अन्याय, पीड़ा, अभाव और मजबूरी में बने रचे हैं। लोक गीत समाज में व्याप्त भेदभाव, शोषण, उत्पीड़न की बेबाक अभिव्यक्त करते हैं। अधिकतर लोक गीत कन्या विवाह, कन्या विदाई, कन्या जन्म, पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले लोक गीतों की भरमार है। कन्या के जन्म माँ–पिता, दादा–दादी सबके लिए मायुस और दुःखी होने की स्थिति को ही दर्शाते है, तो पुत्र ही वंश–वृद्धि और मोक्ष का द्वार है यही दर्शाया गया है।

बंजारा समाज में पुत्री के जन्म के समय थाली और पुत्र के जन्म के समय नगाड़ा बजाया जाता है। पुत्र के लिए तरह–तरह की दुआएं मांगी जाती है छठी माता से अनुरोध किया जाता है कि आगे भी उसे पुत्र ही देना, पुत्री नही। बंजारा लाकगीत में एक स्त्री कहती है –

''वे माता हासत–हासत आयेस
रोतो–रोतों पर जायेस
सण ढेरों लेने बर आयेस
सुई दोरा लेने पर आयेस
सुओ सुतली लेन वर जायेस।''[12]

यानी, हे माता जन्म देनेवाली देवी ! सन से सुतली कातने तथा बुनने वाला पुरूष जाति को स्त्री के गर्भ से जन्म देना, सुई–धागे से कपड़े सीने वाली स्त्री जाति को हमारे कोख से जन्म न देना। इसका कारण यह है कि स्त्री होने की पीड़ा से अपनी बेटी को बचाना है या फिर दहेज प्रथा या महिलाओं को समाज में निम्न स्थान देना। शायद यही व्यथा लोक गीतों में फूट पड़ती है कि मुझे बेटी नहीं देना। यह महत्वपूर्ण और रोचक तथ्य है कि लोक साहित्य में जहाँ कन्या जन्म की चर्चा बहुत ही कम है जबकि पुत्र जन्म के ऊपर हजारों गीत है। आदिवासी समाज में भी जन्मगीत खूब मिलते है, पर आदिवासी समाज में लड़की होना शर्म की बात नहीं है। वहाँ स्त्री–पूरूषों में समानता है। आदिवासी स्त्री द्वारा रचे गए गीत–प्रगीत, किस्से–कहानियाँ उनके शारीरिक शोषण से लेकर, मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना की शिकायत करते हैं। उसके प्रति की जा रही घरेलु और समाजिक हिंसा की मार्मिक दास्तान सुनाते हैं।

दलित स्त्री जाति को एक तरफ दलित समझकर उसको उपभोग की वस्तु समझा जाता है तो दूसरी तरफ उसको सबसे ज्यादा सामाजिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है। सवर्ण समाज के पुरूष उसका यौन शोषण करते हैं। दलित स्त्रियाँ ऐसे ढोंगी ब्राह्मण पर, सवर्णों पर ताने कसते हुए गाती हैं –

''अरे हो बुड़बक बमना, अरे हो बुड़बक बमना
चुम्मा लेते में जात नहीं जाए रे।
सुपति–मडनियाँ लाए डोमनियाँ
माँगे प्यास से पनियाँ ....।''[13]

इस तरह, दलित स्त्रियाँ लोक गीतों के माध्यम से अपने मन की दबी इच्छाओं को भी व्यक्त करती हैं। कुछ ऐसे भी लोक गीत है जहाँ कुँवारी लड़कियाँ अपने होने वाले पति से मिलना चाहती है । ऐसे लोक गीतों की रचयिता स्वयं औरतें ही रही है और वे इन्हीं गीतों के माध्यम से अपने मन की इच्छाओं को बताती रही है। कुछ गीतों में पति–पत्नी के विनोद भी हैं। दलित और आदिवासी स्त्रियों की एक बड़ी खूबी है कि वे अपने जीवन को पूरी जीवंतता से जीती हैं। वे किसी भी परिस्थितियों में हार नहीं मानती है। लोक साहित्य उनके हर्ष–विषाद के क्षणों को खोजने की कुंजी है।

हरियाणवी लोक गीतों में स्त्री के अव्यक्त मनोभावों की अभिव्यक्ति :– हरियाणा के अनेक लोक गीतों में कन्या जन्म पर घर पर छा जाने वाले मातम तथा पुत्र जन्म पर माता–पिता की मनोस्थिति पूरी तरह अलग बदल जाने का चित्रण है, जो संपूर्ण समाज की मानसिकता का प्रतीक है। तत्कालीन समाज में बेमेल विवाह

भी बहुत होते थे, जो बहू के लिए मानसिक संताप का कारण बनती थी। हरियाणवी समाज में व्याप्त बेमेल विवाह एवं युवा स्त्री के मनोभावों को व्यक्त करता है –

"देस विराणा, बालम पुराणा,
बूढ़ा बाबा बंदर
कभी धमकावें कभी दे घुड़की
मेरे प्रेम के अंदर
मरियों मात पिता अन्यायी
बिन मिलती जोट मिलाई।"[14]

इन लोक गीतों में हरियाणा की स्त्रियाँ बेमेल विवाहों का शाब्दिक विरोध भी करती है। युवा स्त्री अपनी सहेलियों से अपने मन की बात को भी व्यक्त करती है और अपने मन की पीड़ा कम करती है। इन लोक गीतों में एक सखी दूसरी सखी से कहती है–

"चारों सखी चारों ही पनियाँ को जायें
कुँए पर चढ़के चारों करें विचार
अरी सखी तुझे कैसे मिले भरतार
एरी! पतले कुँवर कन्हैया हम पाये भरतार
सखी! बीस बरस के है वे सचमूच राजकुमार
सखी! फूटा पर भाग्य हमारा
अस्सी बरस के हमें मिले भरतार........।"[15]

तत्कालीन समाज में बाँझ होना एक अभिशाप था । बाँझ होने पर सारा दोष स्त्री पर ही मढ़ा जाता था और पुरुष को इस आधार पर बहुविवाह करने का अधिकार मिल जाता था। हरियाणवी गीतों में स्त्रीयों के विवाह में सहमति न लेने का दर्द, विवाह में सगे–संबंधियों से बिछड़ने का दर्द, दहेज की असीमित माँग की कल्पना, आदि को दर्शाता है। इस प्रकार हरियाणवी लोक गीतों में स्त्री विरोध एवं तत्कालीन परिस्थितियों के खिलाफ स्त्री विद्रोह के स्वर छिपे हैं।

अवध के लोक गीतों में स्त्री के अव्यक्त मनोभावों की अभिव्यक्ति :– अवध के लोक गीतों में स्त्री प्रतिशोध का स्वर है। जब हम अवध के इतिहासं को देखते है तो एक गिरती फिर से उठती प्रतिरोध परम्परा की रोशनी दिखती है। तभी तो ये लोक गीत बने और सदियों से जीवित हैं। समाज की विवाह संस्था को जिस तरह लोक गीत उघाड़ते हैं ये दुर्लभ दिखती है। यह इस लोगीत में देख सकते हैं–

"मंगिया के सिंदुरा मंहग भइले बाबा चुनरी बिचाये अनमोल...।
यही रे सिन्दुरवा के कारण बाबा छोड़ऊ देश तोहार ....।"

लोकगीत लोकचेतन से ही जन्मे है। जब हम इन गीतों की पंक्तियों को देखते हैं तो लगता है कि इसमें स्त्री के विभिन्न मनोभावों का चित्रण है। जिसमें पिता द्वारा बेटी के लिए वर चयन, राम जैसे पति पाने की स्त्रियों की आकांक्षा, शिव भगवान जैसा दामाद आदि का चित्रण है। गीतों में कहीं कहीं बेटी का प्रतीक गौरा (पार्वती जी) है तो कहीं कहीं सीता। कहीं स्त्री मर्यादा के बोझ से डूबी तो कहीं विद्रोहिणी बनकर विवाह के कलश को तोड़ देती है क्यांकि जिस कन्या का विवाह होना है उसे पता है वर अयोग्य है। इसमें एक मुक्ति के मनोभाव है कि ऐसे वर से मैं विवाह नहीं करना चाहती। अवध के लोक गीतों में होली के गीत, विवाह के गीत, जन्मोत्सव के गीत, विरह गीत आदि की अभिव्यक्ति की गई है। ये महज स्त्रियों द्वारा गाये जानेवाले एक परम्परागत गीत समझकर अपनी धुन में जाने कितनी कोमल मनोभावों को कुचलता हुआ चला जा रहा है।

मैथिली लोक गीतों में स्त्री के अव्यक्त मनाभावों की अभिव्यक्ति :– मिथिला में अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं जिसमें प्रेम–गाथा, पराक्रम गाथा, योग गाथा, जाहू गाथा, पौराणिक गाथा गंगो गोढ़िन आदि प्रमुख है। लोरिकायन, बिहुला, मीरायण आदि में स्त्री मन के विभिन्न भावों को वाणी दिया गया है। मैंथिली के लोक गीतों में विरह के गीतों का क्या कहना। ग्रामीण स्त्रियों के कंठ से निकलने वाली लफ्जों में न

जाने कितने वियोगिनीयों के ह्रदय तड़प रहे हैं। बन्धया स्त्री समाज के लिए कलंक मानी जाती है, उसकी पीड़ा लोक गीत में वर्णित है तो अनमेल विवाह गीत में वेदना की तड़प है। मैथिल कवि विद्यापति रचित गीत में अनमेल विवाह से व्यथित स्त्री अपने भागय की चूक के लिए स्वयं को कोस रही है और कह रही है– ''पिया मोर बालक हम तरुणी गे, /कोन तप चुकल, भेलहुँ जननि गे ......।'' मैथिली लोक गीतों में स्त्री के विविध रूप, मनोभाव, शिकायत, नफरत, प्रेम, लज्जा, सहनशीलता, करूणा के चित्र देखने को मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मौन रहकर सभी प्रकार की यातना सहन करने वाली स्त्री की वेदना, कष्ट, विभन्न मनोभावों, भावात्मक संवेदना, विभिन्न अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति अनेक अवसरों, वैवाहिक गीतों, त्योहारों, परिश्रम करते समय गाये जाने वाले गीतों में हो सकी है। भोजपुरी, राजस्थानी, बुंदेली, अवधी, हरियाणवी, मैथिली आदि लोक गीतों में स्त्री की दशा का चित्रण समान भावभूमि पर हुआ है।

निष्कर्ष :– हम कह सकते हैं कि लोक गीतों का अधिकांश भाग स्त्री ह्रदय की सम्पत्ति है। इन गीतों में स्त्री मन के विविध पक्षों का उद्‌घाटन हुआ है। विभिन्न अवसरों तीज, त्योहारों, श्रमगीतों, विवाह आदि पर गाये जाने वाले गीतों में स्त्री ह्रदय की संवेदनाओं ने अभिव्यक्ति पाई है। स्त्री ने लोक गीतों को अपनी आवाज से जितना मधुर बनाया उतना ही लोक गीतों में स्त्री की मनोव्यथा, पीड़ा, अभिलाषा, मनोकामना, वेदना आदि को स्वर मिला है। स्त्री सारी प्रताड़नाओं, अत्याचारों यातनाओं को आज तक मौन रहकर सहती आई है और जब नहीं सहा गया तो उसी पीड़ा, वेदना लोक गीतों में अनायास ही प्रकट होने लगी।

स्त्री वेदना के साथ–साथ स्त्री के स्वाभिमान की भी झलक इन गीतों में दिखाई देती है। इन लोक गीतों की विशेषता है कि उनमें अभिव्यक्तियाँ सीधी सरल यथार्थ होने के कारण अत्यंत मार्मिक है और सीधे–सीधे ह्रदय को स्पर्श करने में समर्थ हैं इन लोक गीतों में हम भारतीय नारी की मर्यादा और उसकी बिडंबनाओं की सजीव प्रतिछवियाँ देख सकते है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. ''ग्राम साहित्य'', जनपद पत्रिका (अक्टूबर – 1952), पं0 रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, पृ.सं. 11।
2. ''लोरिकायन एक अध्ययन'', डॉ0 अर्जूनदास केशरी, लोकरूपी प्रकाशन, राबर्टगंज, सोनभद्र 1988, पृ.सं. 17।
3. ''हिन्दूस्तान'' (त्रैमासिक), अप्रैल–जून 2007, सं. डॉ0 योगेन्द्र प्रतान सिंह, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, पृ.सं. 17।
4. ''अमर उजाला'' (दैनिक सामाचार पत्र), 22 नवम्बर 2008, पृ.सं. 4।
5. ''लोकवार्ता शोध पत्रिका'' (जनवरी–जून 2008), सं0 – अर्जूनदास केशरी, लोकवार्ता शोध संस्थान, सोनभद्र, पृ. सं. 48।
6. वही, पृ. सं. 49।
7. ''समकालीन भोजपूरी साहित्य'', सुभद्रा वीरेन्द्र, साहित्य रत्न भंडार, आगरा 2000, पृ. सं. 261।
8. ''भोजपूरी लोक गीत'', कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण 2011, पृ.सं. 20।
9. ''राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन'', सोहनदास चारण, राजस्थान साहित्य मंदिर, सोजती दरवाजा, जोधपुर, संस्करण 1980, पृ.सं. 31।
10. ''हमारा ग्राम साहित्य (सोहर)'' रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर, प्रयाग, संस्करण 1951, पृ. सं. 2।
11. ''लोक साहित्य की भूमिका'', श्री कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा0 लि0, 1970, पृ. सं. 121।
12. ''बंजारा जाति, समाज और संस्कृति'', जशवंत जाघवे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 25–26।
13. ''लोक गीतों में क्रांतिकारी चेतना'', विश्वमित्र उपाध्याय, प्रकाशन विभाग, पृ. सं. 18।
14. ''हरियाणा के लोक गीत'', लेखक शारदा, सं0 साधुराम, भाषा विभाग, हरियाणा संस्करण 1970, पृ. सं. 318।
15. वही, पृ.सं. 314।

धर्मशास्त्रीय आयाम भट्टिकाव्य के विशेष संदर्भ में

डॉ. सागर कुमार पाण्डेय*

प्राचीनकाल से ही धर्म भारतीय समाज का प्रमुख अङ्ग रहा है। पुरूषार्थ चतुष्टयी का मूल धर्म ही है। धर्म का पालन करने से अन्य सभी पुरूषार्थ स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। संस्कृत वाङ्मय में धर्म शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः यह शब्द 'धृ' धातु से बना है। जिसका अर्थ है – धारण करना, आलम्बन देना एवं पालन करना। इन अर्थों को ध्यान में रखते हुए ही धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है– **"धृति लोकान् सः धर्मः अथवा धृयतेपुण्यात्मभिः यः सः धर्मः।"**[1] अर्थात जो लोक को धारण करने वाला धर्म ही है। धर्म का मूल वेद है। कहा भी गया है कि– **वेदोऽखिलोधर्ममूलम्।**[2]

ऋग्वेद में कई स्थानों पर धर्म शब्द धार्मिक विधियों या धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में प्रयुक्त हुआ है। जैसे – **तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।**[3] शुक्ल यजुर्वेद में कहा गया है कि इन्द्रादि देवताओं ने ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों के द्वारा यज्ञपुरूष का विधिपूर्वक यजन किया। वही यजन रूप धर्म पहले था।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्मानि प्रथमान्यासन।
तेहनाकमहिमानः सचन्त्र यत्रपूर्वेसाध्याः सन्ति देवाः।[4]

यही यजनरूप धर्म ही सभी धर्मों का मूल है। मनुस्मृति में पाँच महायज्ञों को नित्य करने के लिये कहा गया है –

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति ना हापयेत।[5]

ये पंच महायज्ञ नित्य करणीय हैं। इसके न करने से हानि होती है। जैसे – दन्तधावन शौचादि नित्य कर्म है। इनके न करने से मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है तथा वह कोई भी कार्य करने में अक्षम हो जाता है। उसी तरह नित्य पंचमहायज्ञादि का विधिवत सम्पादन नहीं करने पर व्यक्ति की दिव्य चेतना हमेशा के लिये बाधित हो जाती है। एकमात्र धर्म ही तो है जो पशु और मानव में अन्तर करता है। कहा भी गया है कि –

आहार निद्राभयमैथुनंच समानमेतद् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।[6]

अर्थात भोजन, निद्रा, भय, हर्ष, सन्तति उत्पन्न करना आदि कार्य पशु और मनुष्य दोनों में समान ही हैं। विशेष रूप से धर्म ही मनुष्य में अधिक है। यदि मनुष्य में धर्म नही तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर ही नहीं है। धीरे धीरे धर्म शब्द का अर्थ विस्तारित होता गया। जैसे मानव के विशेष अधिकारों, कर्तव्यों एवं बन्धनों का द्योतक तथा आचारविधि का परिचायक हो गया। इस तरह हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति तथा विचारधारा में धर्म शब्द का प्रयोग बड़े ही व्यापक अर्थ में हुआ है। अपनी इसी व्यापकता के कारण ही धर्म की परिभाषाएँ अलग अलग रूपों में दर्शनशास्त्रियों, धर्माचार्यों, स्मृतिकारों इतिहासविद् आचार्यों ने की है। जो धर्म व्यापकता को ही सिद्ध कर रही है।

अलग–अलग क्षेत्रों अलग–अलग स्तरों तथा सामाजिक भूमिकाओं में जिस धर्म शब्द का प्रयोग हम करते हैं वह कर्त्तव्य के अर्थ में हैं। जैसे – राजधर्म, प्रजाधर्म, स्त्रीधर्म, पतिधर्म, सेवकधर्म, पुरोहितधर्म आदि जो अलग–अलग पदों तथा सम्बन्धों से जुड़े हैं। इसी प्रकार परिस्थितियों तथा समूहों के लिये भी धर्म को अलग श्रेणियों तथा–राष्ट्रधर्म, आपद्धर्म, जीविका धर्म आदि रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है। चूँकि कर्ता की भूमिका परिवार, समाज राष्ट्र जाति एवं परिस्थितियों में अलग अलग होती है और जब उसे दो ऐसी भूमिकाओं में धर्म का निर्वाह करना होता है। इसी परिस्थिति को धर्म संकट कहा जाता है। ऐसे में धर्म शास्त्रियों द्वारा धर्म के बारे में प्राथमिकता या श्रेष्ठता क्रम भी प्रतिपादित किया है जिसमें धर्मसंकट की स्थिति में विवेकपूर्ण निर्णय होने का रास्ता मिल सके। पुराणों, रामायण तथा महाभारत के आख्यानों में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते है।[7]

***अतिथि विद्वान, प. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)**

भट्टि काव्य में धर्म संबन्धी मानदण्ड दो प्रकार से दिखाई दे रहे है। एक तो नामतः उल्लेख द्वारा दूसरा पात्रों की दैनिन्दिनी कार्यप्रणाली द्वारा प्रदर्शितगुण एवं कर्त्तव्य के रूप में। कविवर भट्टि महाराजा दशरथ के गृहस्थाश्रम के प्रवेश प्रसंग में लिखते हैं कि –

धर्म्यासु कामार्थ–यशस् करीषु, मतासु लाकेऽधिगतासु काले।
विद्यासु विद्वानिव सोऽभिरेमे, पत्नीषु राजा तिसृषूत्तमासु।।[8]

वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम में तपस्वियों का जीवन निःस्पृह होता है। ऐसी ही तपस्वियों की निःस्पृह जीवन चर्या का उल्लेख नायक रामचंद्रराक्षस मारीच की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि –

आत्मम्भरिस, त्वं पिशितैर् नराणां, फलेग्रहीन हंसि वनस्पतीनाम्।[9]

धर्मों की विविधता के इस आधार में यदि देखा जाये तो भारतीय संस्कृति की पूरी परम्परा ही आ जाती है। जिसे सनातन धर्म कहा जाता है और जो दूसरे अर्थों में व्यापक परिवेश लिये हुए ही मानव धर्म ही है। अतः धर्म के लक्षणों को संक्षेप में गिनाते हुए मनुस्मृतिकार ने कहा है कि –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[10]

धैर्य, क्षमा, सहनशीलता, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियसंयम गहरी समझ, विद्या, सत्य बोलना और क्रोध न होना ये दश धर्म के लक्षण है। ये सब केवल विचार में ही नहीं जब तक आचरण में न हों तब तक निष्क्रिय हैं। इसलिये कहा गया है कि – **आचारः प्रथमोधर्मः**[11]

इसीलिये सत्पूरूषों द्वारा आचरित मार्ग एवं लोकनिन्दित धर्मविरूद्ध आचरण का परित्याग धर्म का प्रयोगिक लक्षण हैं। भारतीय संस्कृति एवं जीवन पद्धति में इसी क्रम में वर्ण तथा आश्रम धर्म को प्रतिपादित किया गया है। श्रीमद्भागवत् में धर्म के इन लक्षणों की संख्या तीस तक बढ़ाते हुए भागवत् धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है – **सत्यं दया तपः शौचे तितिक्षा शमो दमः।**
अहिंसा ब्रह्मचर्या च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
संतोषः समदृक् सेवा .... [12]

इस प्रकार धर्म को सम्पूर्ण मानव जाति के विहित आचार के रूप में प्रतिपादित किया गया है जिससे उसका समाज एवं सम्पूर्ण जगत के साथ शारीरिक तथा मानसिक विकास हो तथा उन्नति हो सके। साथ ही जीवन के लौकिक एवं पारलौकिक उद्देश्यों को वह सभी के साथ समन्वय रखते हुए क्रमिक एवं प्रणालीबद्ध रूप में प्राप्त कर सके। इसी उद्देश्य से महर्षि कणाद ने धर्म का लक्षण बताते हुए संक्षेप में यह कह दिया कि– **यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।**[13]

धर्म की यही व्यापकता अन्य पुरूषार्थों के रूप में देखी जा सकती है। जैसे – धर्म ही अर्थ को उपयोगी एवं दिशावान बनाता है तथा वही काम (इच्छा) को सोद्देश्य एवं विनियमित करते हुए उसको सदोपलब्धि पूर्ण बनाता है। जो त्यागयुक्त भोग के लक्ष्य को प्राप्त करते हुए मोक्ष में प्रवृत्त हो पाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म एक नियम है, रीति–रिवाज है, आस्था है, अधिकार है, सिद्धान्त है जो लोगों को सहयोग और स्थिरता प्रदान करता है। यह मानव मात्र का आदर्श मार्ग है। धर्म के द्वारा ही व्यक्ति उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। धर्म यथार्थ जीवन का सिद्धान्त है अतः निश्चित रूप से यह एक उत्तम जीवन चर्या भी है। धर्म पुरूषार्थ के नाम से कोई पृथक ग्रन्थ नहीं लिखा गया है अपितु वेद, स्मृति, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत ही हमारे धर्म ग्रन्थ हैं जो कर्तव्य अकर्तव्य की शिक्षा देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मनुस्मृति – 02/6
2. ऋग्वेद – 01/164/43
3. मनुस्मृति – 4/21
4. मनुस्मृति
5. नीतिशतकम् – 26
6. ज्ञानायनी – पुरूषार्थ विशेषांक – भाग–2
7. मनुस्मृति – 6/62
8. भट्टिकाव्य – 01/09
9. भट्टिकाव्य – 02/33
10. मनुस्मृति – 4/176
11. श्रीमद्भागवत् पुराण – 7/11–12

ꕥ★ꕥ

विश्व पुस्तक मेला : ज्ञान एवं संस्कृति का महाकुम्भ

सुनील कुमार साहू*

शोध सार : हाल ही में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा विश्व पुस्तक मेला का 32 वां संस्करण का आयोजन भारत सरकार के विभिन्न उपक्रमों के सहयोग से दिल्ली के भारत मंडपम, प्रगति मैदान में 1–9 फरवरी के मध्य आयोजित किया गया था। इस पुस्तक मेले में मुख्य विषय पर केन्द्रित विशेष प्रदर्शनियों के अतिरिक्त विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया, जिससे पाठको को भारतीय संस्कृति का ज्ञान हो साथ ही साथ उनमे अभिरुचि पैदा हो। इस पुस्तक मेले में सभी उम्र के लोगों का ध्यान रखा गया था। ज्ञान–विज्ञान के इस पर्व में देश से ही नहीं अपितु विश्व के विभिन्न कोनों से पुस्तक प्रेमी एवं दर्शक इस भव्य मेला को देखने आये। भारत में इस वर्ष दो कुम्भ का आयोजन हुआ एक आस्था का प्रतिक था वही दूसरा ज्ञान का, ज्ञान के इस महासागर में सर्वत्र अनमोल खजाने दिखाई दे रहे थे। इस पुस्तक मेला में रूस भी अतिथि के रूप में भाग लिया जिससे दोनों देश की आपसी मित्रता मजबूत हुआ साथ ही साथ एक दुसरें के बिच ज्ञान का प्रसार भी हुआ। इस आलेख में हमें विश्व पुस्तक मेला के बारे में विस्तार से ज्ञान मिलेगा जिससे आगामी मेला के प्रति हमारा रुझान बढ़ेगा।

बीज शब्द : पुस्तक, विश्व पुस्तक मेला, पुस्तक मेला, महाकुम्भ, ज्ञान सागर।

प्रस्तावना : पुस्तक मेला जिसे सुन कर लगता हैं, ऐसा मेला जहाँ बस पुस्तके ही पुस्तके हो, परन्तु ऐसा नहीं हैं। पुस्तक मेला में वो सारे चीज शामिल होते हैं जो मनुष्य के विकास को सहयोग करता हो। पुस्तक मेला एक सांस्कृतिक और साहित्यिक पर्व है, जहाँ किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति के साथ साथ, शब्द–विचार तथा भावनाएँ एक मंच पर एकत्र होती हैं। ये पुस्तकों की खरीद–बिक्री का स्थान नहीं हैं अपितु यह एक ऐसे आयोजन हैं, जो लोगो को साहित्यिक वार्तालाप, सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता और ज्ञान के आदान–प्रदान का माध्यम हैं। ये मेला भारत के भाषाई और साहित्यिक विविधता के साथ ही साथ सांस्कृतिक विविधता को भी प्रोत्साहित करता हैं। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों को एक ही मंच पर खड़ा करके उनके विचारों को साझा करने का अवसर भी प्रदान करता हैं। यह पुस्तक मेला न केवल पुस्तकों को प्रदर्शित करने का माध्यम हैं अपितु पाठक को पुस्तकों के प्रति जागरूक करने का एक सकारात्मक प्रयास भी था। सरकार के इस तरह के आयोजन प्रशंसनीय हैं, और उन्हें सदैव ऐसे कार्य करते रहना चाहिए।

मूल आलेख :

4.1.विश्व पुस्तक मेला का इतिहास :–पुस्तक मेला की परंपरा भारत और विश्व में सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है। प्राचीन भारत में पांडुलिपियों के द्वारा ज्ञान आदान–प्रदान और साहित्यिक संचार की परंपरा थी। पुस्तक मेले का आयोजन विश्व स्तर पर पहली बार यूरोप में 15वीं शताब्दी में हुआ था। गुटेनबर्ग द्वारा जब से मुद्रण तकनीक का आविष्कार हुआ उसके बाद पुस्तकों के वितरण तेज़ी आई और इसने पुस्तक मेलों के आयोजन को अभिप्रेरित किया। भारत में पुस्तक मेला की शुरुवात 1970 के दशक में प्रारंभ हुई, जिसका आयोजन पहली बार नेशनल बुक ट्रस्ट ने 1972 में दिल्ली प्रगति मैदान किया था। प्रारंभ में यह मेला मुख्य रूप से भारतीय प्रकाशकों और लेखकों पर केंद्रित था, परन्तु वर्तमान में 50 से अधिक देशों के प्रकाशक और लेखक इस मेला में भाग लेते हैं। इस प्रकार यह मेला विश्व के सबसे बड़े पुस्तक मेलों में से एक है। आधुनिक भारत एवं डिजिटल युग में इस मेले का स्वरूप बदला है, इसमें परंपरागत पुस्तकों एवं पाठ्य सामग्रियों के अतिरित अब ई–बुक्स, ऑडियोबुक्स आदि भी शामिल हो गया हैं। यह मेला साहित्यिक संचार का माध्यम ही नहीं, बल्कि विभिन्न भाषाओं, सभ्यता और संस्कृतियों को एक साथ जोड़ने का एक सशक्त माध्यम बना।

4.2.विश्व पुस्तक मेला 2025 : भारत :– भारत में इस वर्ष विश्व पुस्तक मेला के 32 वां संस्करण का आयोजन 1 से 9 फरवरी 2025 को दिल्ली के भारत मंडपम, प्रगति मैदान में नवनिर्मित हॉल 2–6 (ग्राउंड फ्लोर) में प्रतिदिन सुबह 11:00 बजे से शाम 8:00 बजे के बिच किया गया। इस मेले का आयोजन नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा भारत व्यापार संवर्धन संगठन, वाणिज्य मंत्रालय के सहयोग से किया गया। इस वर्ष विश्व पुस्तक मेला 2025 का विषय "भारत :

***सहायक प्राध्यापक (अतिथि) पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, शासकीय राम भजन राय एन. ई. एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जशपुर नगर (छ.ग.)**

गणतंत्र / 75" था, जो गणतंत्र भारत की 75वीं वर्षगांठ का स्मरण कराता है। यह थीम राष्ट्र के निर्माण, स्वतंत्रता, समानता, एकता एवं अखंडता और शासन के संदर्भ में भारत की यात्रा के पर्व को इंगित करती है। विश्व पुस्तक मेले का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक न्याय, मौलिक अधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे महत्वपूर्ण आदर्शों पर प्रकाश डालना है, जो भारतीय संविधान में निहित हैं। इस थीम से जुड़ा नारा है "हम भारत के लोग" हैं, जो भारतीय लोगों की सामूहिक आकांक्षाओं पर जोर देता है। यह मेला न केवल एक पाठक के लिए महत्वपूर्ण था अपितु सम्पूर्ण समाज के लोगों (बच्चों से लेकर बुजुर्ग तक) के लिए महत्वपूर्ण था। इस मेले में सब आयु वर्ग के लोगों का ध्यान रखा गया था। इस मेले में छोटें बच्चें (1 साल से प्रारंभ) से लेकर स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी, पुस्तक प्रेमियों, लेखकों और उद्योग के पेशेवरों को आकर्षित किया।

4.2.(1) विश्व पुस्तक मेला 2025 का मुख्य आकर्षण केंद्र :– बच्चों का मंडपः बच्चों के लिए समर्पित इस जहग पर प्रसिद्ध लेखकों और शिक्षकों द्वारा कहानी सुनाने का सत्र, कार्यशालाएँ, मनोरंजक एवं रचनात्मक गतिविधियाँ आयोजित की गई। इस मंडप का मुख्य उद्देश्य बच्चों में पढ़ने की रुचि को बढ़ावा देना था।

युवा का कॉर्नर : इस खंड में राष्ट्रीय मार्गदर्शन योजना के तहत अखिल भारतीय प्रतियोगिता के माध्यम से चुने गए युवा लेखकों पर प्रकाश डाला जाएगा, जिससे उपस्थित लोगों को भारतीय युआ लेखकों के साहित्य में नई आवाज़ों की खोज करने का अवसर मिलेगा।

लेखकों का कॉर्नर : मेले के विभिन्न हॉलों में बनाए गए लेखक कॉर्नर प्रकाशकों, लेखकों और पुस्तक प्रेमियों के लिए संवाद, चर्चा, पुस्तक विमोचन के लिए मंच प्रदान करता हैं। ये कॉर्नर उभरते लेखकों को अपने दर्शकों से जुड़ने का मंच प्रदान किया और आगंतुकों के लिए बैठक स्थल के रूप में भी प्रयुक्त हुआ।

अंतर्राष्ट्रीय इवेंट कॉर्नर : इस मेले में अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शक और लेखक शामिल हो सकेंगे, जिससे सांस्कृतिक आदान–प्रदान हो सकेगा और पाठकों को विदेशी संस्कृति का ज्ञान हो सकेगा। अंतर्राष्ट्रीय मंडपों में उपस्थित लोगों को विदेशी साहित्य देखने और पढने का मौका मिलेगा जिससे उनमे रुचि पैदा होगा। 'रूस से आई किताबें' नामक प्रदर्शनी रूस की समृद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक धरोहर को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

थीम मंडप : इस मंडप में भारत के गणतंत्र की झलक दिखाई देगी, जिसमें पुस्तकें, फिल्में और सांस्कृतिक कार्यक्रम होंगे। इसे नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन, अहमदाबाद द्वारा डिजाइन किया है।

सांस्कृतिक कार्यक्रमः इस मेले में विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियां की जाएगी, जो भारत की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विरासत को दर्शाएगी और साहित्य में बहुभाषिकता को बढ़ावा देंगी।

विश्व पुस्तक मेला की आवश्यकता :– विश्व पुस्तक मेला का आयोजन भारतीय परिदृश्य में विभिन्न कारणों से आवश्यक हैं इससे समाज में साहित्यक, सांस्कृतिक, और ज्ञान का प्रसार बढ़ता है और लोगों में पुस्तकों के प्रति प्रेम बढ़ता हैं। इस मेले से समाज के लोगों में पुस्तकों के प्रति जागरूकता और रुचि बढ़ता है और उनमे औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से पढ़ने की रूचि जागृत होता हैं जो इस मेले का मुख्य उद्देश्य होता हैं। पुस्तक मेला उन सभी लोगों को जो पढ़ने–लिखने में रूचि रखते हैं, उनको एक छत के निचे लाकर खड़ा कर देता है जिससे ये अपनी आवश्यकता की पूर्ति एक स्थान से कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त निम्म कारण है जिससे पुस्तक मेले की आवश्यकता समाज में होती है–

1. **लेखकों और प्रकाशकों के बिच साहित्यिक संवादः** विश्व पुस्तक मेला लेखकों और प्रकाशकों को एक मंच पर लाता है, जिससे वे अपने कृतियों और विचारों का आदान–प्रदान अपने पाठकों एवं ग्राहकों के बिच कर सकते हैं। यह मेला नए पाठकों को भी लेखकों से परिचित करवाता हैं, जो दोनों के लिए आवश्यक होता हैं।
2. **ज्ञान का प्रचार–प्रसारः** विश्व पुस्तक मेला में सर्वत्र नई–नई किताबें, शोध पत्रिकाएँ, ज्ञानवर्धक पाठ्य सामग्री आदि प्रदर्शित की जाती हैं, जिससे पाठकगणों को नए–नए ज्ञान और विचारों की जानकारी मिलती है जो उनके सकारात्मक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। इस प्रकार यह पुस्तक मेला विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं और पाठकों के लिए अत्यंत लाभकारी प्रतीत होता हैं।
3. **समाज में संस्कृति का प्रचारः** पुस्तक मेला वह स्थान होता है जहाँ विभिन्न संस्कृतियाँ और विचार एक साथ समाज के समक्ष आते हैं, जो उनको एक साथ एक जगह पर प्राप्त होता हैं। यहाँ विश्वभर की साहित्यिक कृतियाँ और सांस्कृतिक विचार प्रदर्शित की जाती हैं, जो विभिन्न दृष्टिकोण से उनके लिए आवश्यक होता हैं यह उनमे वैश्विक संस्कृति को जानने और समझने का अवसर प्रदान करता हैं।

4. **पढ़ाई–लिखाई में रुचि को बढ़ावाः पुस्तक** मेले में बच्चों और युवाओं पढ़ाई–लिखाई में रुचि को बढ़ावा देते हैं के लिए विशेष कार्यक्रम और गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं, जिससे उनमे पढाई के प्रति रूचि जागृत हो हैं। यह उन्हें किताबों से प्रेम और उनमे पढ़ाई के प्रति रूचि बढ़ाती हैं।
5. **सामाजिक और शैक्षिक कार्यक्रमः** विश्व पुस्तक मेलों में विभिन्न सेमिनार, कार्यशालाएँ, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और लेखक संवाद का आयोजन करती हैं, जो उनमे देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधता के प्रति सकारात्मक सोच एवं रूचि को बढ़ाता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं की विश्व पुस्तक मेला समाज के लिए विभिन्न परिदृश्य से आवश्यक हैं।

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं की विश्व पुस्तक मेला का आयोजन केवल शैक्षणिक दृष्टी से ही नहीं बलि भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक की विविधता के दृष्टी से भी अत्यत आवश्यक था। इस मेला ने सम्पूर्ण भारत के लोगो को एक जगह एकत्र किया और उनके आवश्यकता के अनुसार उन्हें एक ही स्थान में सारे संसाधन उपलब्ध करवाया । विश्व पुस्तक मेला अपने आप में ज्ञान का महासागर है, जहां विश्व की सभी संस्कृति एवं सभ्यता का झलक हमको देखने को मिलता हैं। कहा भी जाता हैं कि पुस्तके किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति का दर्पण होता है, यह हमें बताती हैं कि किसी देश की सभ्यता और इतिहास क्या हैं। अतः कहा जा सकता है कि एक पुस्तक पढ़ लेने से किसी एक देश की सभ्यता और संस्कृति का पता लगाया जा सकता हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2101066
2. https://www.nbtindia.gov.in/writereaddata/ndwbf2025/Day_1_MV2025_01022025_web_pdf.pdf
3. https://www.prabhasakshi.com/trending/book-mahakumbh-marks-the-beginning-of-a-new-era
4. https://www.drishtiias.com/hindi/blog/world-book-fair-center-of-cultural-diversity-and-literary-convergence
5. https://www.jagranjosh.com/general-knowledge/world-book-fair-2025-dates-tickets-timings-nearest-metro-station-and-other-details-1737063508-1

🙢★🙠

ग़ज़ल का स्वरूप एवं विकास : एक परिचय

डॉ. बाबूलाल बैरवा*

ग़ज़ल एक ऐसी काव्य विधा है जो साहित्यिक विधाओं में सर्वाधिक पुरानी एवं विशेष लोकप्रिय रही है। ग़ज़ल शब्द अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ हैः– 'आशिक व माशुका के बीच इश्किया गुफ्तगु अथवा वार्तालाप।' यह वार्तालाप इश्क और मोहब्बत के साथ दिल की तड़पन का भी होता है। इसीलिए ग़ज़ल का मूल विषय प्रेम है। मोहब्बत के जज्बातों को काव्य के माध्यम से व्यक्त करना ही ग़ज़ल है। यह इश्क एवं जवानी के सन्दर्भ में लिखी जाती है। ग़ज़ल का शायर जिस तड़प को अभिव्यक्त करता है उसमें उसके स्वयं के दिल की तड़पन छिपी होती है।

ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बंध में डॉ. सरदार मुजावर का कहना हैः– 'ग़ज़ल' शब्द 'गज़ाला' से बना है। फारसी में ग़ज़ल का अर्थ होता है– हिरन और उसका जो बच्चा होता है उसे गज़ाला कहा जाता है इसीलिए यह मुमकिन लगता है कि ग़ज़ल शब्द गज़ाला से बना है।''[1] यहाँ डॉ. सरदार मुजावर ने हिरण के नेत्रों की सुंदरता की दृष्टि से ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति ग़जाला शब्द से मानी है लेकिन भारत में मृग के नेत्र सुंदर माने जाते है जबकि अरब या ईरान क्षेंत्र में नरगिसी नेत्र को ज्यादा महत्व दिया जाता है। ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति की एक अन्य मत है– ''एक किवंदति के अनुसार 'ग़ज़ल ' नाम का एक आदमी था जिसने अपनी सारी उम्र इश्क करने में बिता दी। उसके बारे में यह प्रचलित था कि वह हमेशा इश्क और हुस्न की बातें ही किया करता था और अपनी बातों को कलात्मक ढंग से कहने में उस्ताद था। कम से कम शब्दों में अधिक प्रभाव उत्पन्न करने हेतु वह शेर कहता था। इसी आधार पर संभवत इश्क और हुस्न का जिक्र करने वाली कविता को 'ग़ज़ल' की संज्ञा दी जाने लगी।''[2] 'विनय वईकर' ने 'ग़ज़ल दर्पण' में लिखा है कि, ''कसीदा से पहले एक छोटा सा दो या चार पंक्तियों का प्रणय गीत कहने की परम्परा थी। इन पंक्तियों को 'तश्वीब' कहा जाता था। अरबों ने इस्लाम को कबूल किया और ईरान पर कब्जा किया। लड़ाई के बाद सांस्कृतिक लेन–देन में अरबों का 'कसीदा' ईरान गया है और देखते–देखते फारसी कवियों में खुब मशहुर हुआ। फारसी कवि जो सौंदर्योपासक थे, विद्वान थे, अनुभवी थे और जीवन के हर पहलू को परखते थे, कसीदा के 'तश्बीब' पर फिदा हो गये। उन्होनें 'तश्बीब' को अलग विधा माना और अपनी प्रतिभा से समृद्ध बनाया। इस काव्य विधा को हम 'ग़ज़ल ' नाम से पुकारते है।''[3] उर्दू का सर्वश्रेष्ठ काव्य ग़ज़ल इश्क, हुस्न एवं वेदना का काव्य माना जाता है। उर्दू हिन्दी शब्द कोश में ''ग़ज़ल का अर्थ है– प्रेमिका से बातचीत।''[4] जदीद उर्दू हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोष– ''उर्दू फारसी कविता का एक प्रकार विशेष, जिसमें प्राय 5 से 11 शेर होते है और सारे शेर एक ही रदीफ और काफिया में होते है और हर एक शेर का मन्जूम अलग होता है।''[5]

ग़ज़ल उर्दू काव्य का सर्वश्रेष्ठ एवं सशक्त काव्यरूप है। इसका जन्म फारसी भाषा में हुआ लेकिन इसे अपनाया उर्दू भाषियों ने। काव्य की इस विधा ग़ज़ल को अध्येताओं एवं विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। ग़ज़ल को पारिभाषित करते हुए 'जहीर कुरेशी' का मत है कि, ''ग़ज़ल एक ऐसी काव्य विद्या है जिसमें अनेक विषयों पर टूकडे–टूकड़े बातचीत की जाती हैं। जिसका हर शेर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और हर स्वतंत्र शेर में एक स्वतंत्र चिंतन प्रक्रिया होती है।''[6] मोहम्मद सादिक के अनुसार, "The word Ghazal means conversation with Women and the form was originally reserved for erotic themes only. But in the course of time the rules governing its subject matter came to be relaxed"[7]

इस प्रकार हम देखते है कि ग़ज़ल मूलरूप में हुस्न, इश्क, नारी विषयक मिलन भाव, विरह आदि के अर्थ में अभिव्यक्त हुई है। ग़ज़ल अपने जज़्बातों को व्यक्त करने का सशक्त एवं शानदार माध्यम है।

***सह आचार्य व शोध निर्देशक – हिन्दी, स्व. पं. नवल किशोर राजकीय महाविद्यालय, दौसा।**

इसमें संक्षिप्तता, कोमलता, गहनता एवं श्रृंगारिकता है। ग़ज़ल शब्द एवं अर्थ के योग से बनी संगीतमय प्रस्तुति है। ग़ज़ल में आत्मिक प्रेम सम्बंधो के साथ वे विषय भी दृष्टिगोचर होते है जो साधारण जन–जीवन से जुड़े हैं जिनको आम आदमी भोगता है जिन्हे वह इश्क मौहब्बत से व्यतीत करता है। ग़ज़ल का मूल संबध प्रणय या प्रेम से ही है क्योंकि इसके बिना जीवन सम्भव नही है। ग़ज़ल जिन्दगी का आईना है। आदमी की शख्सियत का अक्स है। ग़ज़ल बदशक्ल पत्थर से तराशा गया किसी संग तराश का सपना है।

ग़ज़ल का मूल विषय क्षेत्र नारी या प्रेमिका विषयक भाव सौन्दर्य, प्रेम, मिलन, विरह, शिकवा, शिकायत आदि है। एक अच्छी ग़ज़ल प्रेम एवं मोहब्बत को सच्चाई के साथ व्यक्त करती है। यह दिल में छुपे एक दर्द की लकीर के समान है जो प्रेम एवं विरह की तड़प को व्यक्त करती है। इसमें प्रेम, प्रेमिका एवं परमसता का सामंजस्य है। इसमें शेरों के माध्यम से मनोभावों को व्यक्त किया जाता है। प्रेमी हृदयों के इश्क और विरह की तड़प इस ग़ज़ल में है। यह ऐसी भाव–भूमि है जिसमें हृदय में व्यक्त अनुभूतियों को कोमल कान्त शब्दावली एवं प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया जाता ग़ज़ल शब्द मूलरूप से अरबी भाषा का शब्द है जिसका काव्य–स्वरूप ईरान में विकसित हुआ है। । ग़ज़ल का स्वरूप उसके शेर, काफियाँ से सुसज्जित होता है जिसे 'मतला' कहा जाता है। ग़ज़ल के स्वरूप से रूबरू होने के लिए उसके अंगो को जानना आवश्यक है।

ग़ज़ल के प्रमुख अंग इस प्रकार हैः–

शेर :– 'शेर शब्द अरबी भाषा का है। इस शेर शब्द की उत्पति 'शऊर' शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ है– ज्ञान। यह ग़ज़ल की आधारभूत इकाई है। ग़ज़ल का हर शेर स्वतन्त्र होता है। ग़ज़ल में पांच या सात शेर होते है। शेर की प्रथम पंक्ति को 'मिसरा–ए–उला' ओर दूसरी पंक्ति को 'मिसरा–ए–सानी' कहा जाता है।

रदीफ :– ग़ज़ल के शेरों के अन्त में जिन शब्दों की पुनरावृति होती है एवं ग़ज़ल के प्रथम शेर की दोनों पंक्तियों के अन्त में एवं प्रत्येक शेर के अंत में आने वाले शब्द समूह को 'रदीफ़' कहा जाता है। यह काफिये के बाद आती है। हर शेर के दूसरे मिसरे में रदीफ़ की आवृति होती

काफिया :– काफिया का अर्थ है– तुक। प्रत्येक शेर में रदीफ से पहले आने वाले समान आवाज या स्वर शब्द समुह को काफिया कहा जाता है। इसे 'तुकान्त' भी कहा जाता है। यह शेरों में आकर ग़ज़ल को एक सूत्र में पिरोता है। इसका स्वर कभी बदलता नही, केवल शब्द बदल जाता है। काफिये का स्वर कभी बदलता नही हालांकि शब्द बदल जाते है। उदाहरण के लिए बर, नज़र, अगर, पर, मगर, खबर आदि। काफिया शब्द पुल्लिंग है।

मतला :– मतला का अर्थ है– उदय, शुरू होना। ग़ज़ल का पहला शेर 'मतला' कहलाता है इसीलिए ग़ज़ल का आरम्भ इसी से हाता है। इसकी दोनों पंक्तियों में एक रदीफ और काफिया होता है। उसे 'मतला–ए–गज़ल' भी कहा जाता है।

मक्ता :– ग़ज़ल के अन्तिम शेर को 'मक्ता' (मकतऊ) कहा जाता है। इसके साथ ही ग़ज़ल समाप्त हो जाती है। प्रायः ग़ज़लकार इसमें अपना नाम या उपनाम का भी प्रयोग करते है। हिन्दी ग़ज़ल में इसका प्रयोग कम ही दिखने को मिलता है। यह ग़ज़ल के पूर्ण होने का संकेत भी है।

मिसरा :– ग़ज़ल में शेर की प्रत्येक पंक्ति मिसरा कहलाती है। दो मिसरों से एक शेर बनता है।

बहरः– बहर का तात्पर्य शेर की लम्बाई से होता है। बहर से ही शेर की लम्बाई नापी जाती है। बहर को तीन भागों में बांटा गया है– छोटे बहर, मध्यम बहर, लम्बे बहर।

हिन्दी काव्य में जिस प्रकार छंद होते है उसी प्रकार उर्दू की ग़ज़लों के लिए भी विभिन्न बहर होती है। इसमें वर्ण, मात्रा, लय, गति एवं यति का ध्यान रखा जाता है। इस 'बहर' को समझने एंव जानने के लिए 'अरकान' (गण) होते है जिनकी निर्धारित आवृतियों एवं संयोग से 'बहर' का निर्माण होता है।

उर्दू–फारसी छंदशास्त्र में 37 बहर का उल्लेख है जिनमें मुतकारिब, मुतदारिक, हज़ज़, कामिल, मुजारिअ, मुक्तजिब, मुज्जस, मुसरह, सरी एवं ख़फीफ आदि प्रमुख है।

ग़ज़ल की एक लम्बी विकास यात्रा है। अरबी से फारसी भाषा में होते हुए उर्दू भाषा में यह प्रतिष्ठित हुई। उर्दू भाषा में ग़ज़ल फारसीयों की ही देन है। फारसी ग़ज़ल में अरबी ग़ज़ल का 'इश्के मजाजी' बदलकर ''इश्के–हकीकी'' हो गया और दैहिक या भौतिक प्रेम ने आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप ग्रहण कर लिया। ग़ज़ल जब फारसी से उर्दू में आई तब यह साहित्य की एक महत्वपूर्ण काव्य विद्या बन गई। उर्दू का शायर चाहे अन्य विद्या में रचनाएँ लिखता हो वह ग़ज़ल भी अवश्य लिखता है। उर्दू ग़ज़ल यात्रा का प्रारम्भ दक्षिण

भारत से माना जाता है। उर्दू साहित्य में ग़ज़ल के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए डॉ. रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी ने इसे निम्न खंडो में बांटा हैः–

I. दक्षिण देशीय काव्य
II. दिल्ली में उर्दू काव्य का विकास
III. लखनवी कविता
IV. दिल्ली की मध्यकालीन कविता
V. दरबारों के बचे–खुचे प्रभाव
VI. सामाजिक चेतना और नयी कविता
VII. ग़ज़ल का पुनरूत्थान
VIII. प्रगतिवादी युग

डॉ. रोहिताश्व अस्थाना ने चार खंडो में विभाजित किया हैः–

I. प्राचीन काल (दक्षिण केन्द्र के शायरों से खाने आरजू तक)
II. मध्यकाल (सौदा और मीर से दाग और अमीर तक)
III. आधुनिक काल (अमीर मिनाई से 1960 ई. तक)
IV. अत्याधुनिक काल (साठोतरी उर्दू एवं हिन्दुस्तानी ग़जल)''

उर्दू ग़ज़ल परम्परा का आरम्भ कहाँ से हुआ एवं प्रथम ग़ज़लकार किसे कहा जाये, यह आज भी शोध का विषय है क्योंकि इसमें अभी तक समीक्षक एक मत नही है। उपलब्ध साहित्य को आधार पर अमीर खुसरों को ही हिन्दी एवं उर्दू का प्रथम ग़ज़लकार माना जाता है। अमीर खुसरों से पहले वजदी, सादीदकनी, ख्वाजा फरीदुदीन शंकरगंज ने भी ग़जलें लिखी है लेकिन इनका साहित्य उपलब्ध नही है। अमीर खुसरों की ग़ज़ल के शेर इस प्रकार हैः–

''जेहाले मिस्की मकुन तगाफुल दौराय नैना बताय बतियाँ
किताबे–हिजरा नदारम ऐजा, न लेहू काहे लगाय छतियाँ''[8]

अमीर खुसरो के कारण ही ग़ज़ल भारत में प्रतिष्ठित हुई। उर्दू ग़ज़ल का अवतरण दक्षिण भारत में हुआ। बीजापुर और गोलकुण्डा के शाही दौर में अनेक शायर हुए जिनमें मुहम्मद कुली कुतुबशाह, वजही, बहन मशाती, बहरी प्रमुख है। कुली कुतुबशाह का दीवान (ग़ज़ल–संग्रह) सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ, इसी कारण इन्हे उर्दू का प्रथम शायर कहा जाता है। इनकी ग़जलों का मुख्य विषय प्रेम, श्रृंगार, हुस्न, तसव्वुक आदि है। औरंगाबाद में जन्म लेने वाले 'शमसुद्दीन वली' ने सरल एवं सुबोध भाषा वाली उर्दू ग़ज़ल लिखी। इनको उर्दू का पहला ग़ज़लकार और उर्दू ग़ज़ल का पहला आदम भी माना जाता है। इनकी ग़ज़लें काफि प्रसिद्ध हुई। सूफी संत सैय्यद सिराजुद्दीन 'सिराज' ने आध्यात्मिक प्रेम को दर्शाते हुए ग़ज़लें लिखी। गोलकुण्डा नरेश सुल्तान अबुल हसन ने भी उर्दू गज़लें लिखी। इस काल के अन्य ग़ज़लकार मजमून, मीर हसन, खाने–आरजू, अशरफ अली खाँ, हातिम अज़हर, मुस्तफा खान 'चंकरंग' है। उर्दू ग़ज़ल का जन्म दक्षिण भारत में हुआ लेकिन उसका विकास दिल्ली में हुआ। यहाँ के शायरों ने ग़ज़लकार 'वली' की परम्परा का अनुसरण किया। नादिरशाह के आक्रमण एवं मुगल शासन के पतन के कारण अधिकतर शायर लखनऊ बस गए। यह शहर महफिलों के कारण उर्दू काव्य का प्रधान केन्द्र बन गया। सादिका नवाब के अनुसार, ''इस युग की ग़ज़ल में यथार्थता के तत्व दिखाई देते है। रफीक साहब ने उर्दू के इस दौर को सुनहरा युग माना है और चार कवियों को इस युग की ग़ज़ल का मुख्य स्तम्भ माना है। उसमें मिर्जा मजहर जाने जानां, मीर दर्द, मीर तकी 'मीर', मिर्जा मौहम्मद रफी 'सौदा' है। यह ग़ज़ल का उत्कृष्ट काल था।

उर्दू शायरी के लोकप्रिय गज़लकार 'मिर्जा गालिब' है जिनके बिना उर्दू शायरी अधूरी मानी जाती है। उर्दू शायरी में गालिब को 'बाबा–ए–सुयन' का दर्जा प्राप्त है। दिलों को छु लेने वाली इनकी शायरी भारत ही नही विश्व प्रसिद्ध है। इश्क और दर्द इनका मूल विषय है। इनकी ग़ज़लों में इश्क की तड़प, चाहत एवं कशिश पाई जाती है। इनका एक शेर द्रष्टव्य हैः–

''कहते हो न देंगे हम, दिल अगर पड़ा पाया
दिल कहां कि गुम कीजे, हमने मुद्दआ पाया।
इश्क से तबीयत ने, जीस्त का मज़ा पाया
दर्द की दवा पाई, दर्द–ए–बेदवा पाया ।''[9]

इस प्रकार आधुनिक काल में उर्दू ग़ज़ल में इश्क और हुस्न के साथ–साथ नए विषय भी जुड़ गये थे। इस काल में अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ देशभक्ति एवं राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत जन–आन्दोलन होने लग गए थे। 'अमीर मीनाई' तक आते–आते ग़ज़ल दरबारी प्रभाव से बाहर निकलकर श्रृंगार के बजाय सामाजिक विषयों की और मुड़ गई। अकबर इलाहाबादी ने अपनी ग़ज़लों मे आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त किया है। इनकी ग़ज़लों में नारी प्रेम के बजाय मानव प्रेम मिलता है। डॉ. सर मुहम्मद इकबाल ने ग़ज़ल को महफ़िलों से हटाकर देशभक्ति से जोड़ा। सैय्यद फजहुल हसरत मोहानी ने इश्क हकीकी के साथ मानव की पीड़ा, दुख–दर्द का वर्णन अपनी ग़ज़लों में किया है। इस दौर में शब्बीर हसन खाँ 'जोश मलिहाबादी', फैज अहमद 'फैज', साहिर लुधियानवी, रघुपति सहाय फिराख गौरखपुरी, गुलाब रब्बानी ताबा, बेकल उत्साही, बशीर बद्र, बसीम बरेलवी, निदा फ़ाजली, मुनब्बर राना, शहरयार आदि प्रमुख ग़ज़लकार रहे जिन्होनें ग़ज़ल को आगे बढ़ाया। इन गज़लकारों में फैज मौहम्मद 'फैज' ने प्रगतिवादी विचारधार के अनुरूप ग़ज़लें लिखी। फिराक गोरखपुरी उर्दू ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर है। इनको 'गुले–नगमा' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला है। वसीम बरलेवी दर्द और इश्क के पुजारी है। इन्होनें प्रेम को नये ढंग से अपनी ग़ज़लों में प्रस्तुत किया। इनके अलावा इस काल में सागर निजामी, फना कानपुरी, अजाज, नूर लखनवी, राज इलाहाबादी, मंजर सलीम प्रमुख है। वर्तमान काल में उर्दू ग़ज़ल अपनी अनेक विशेषताओं के साथ जनमानस का कंठहार बन गई है।

सन्दर्भ सूची :–

1. हिन्दी गज़लः ग़ज़लकारों की नजर में, डॉ. सरदार मुजावर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 15।
2. साठोतरी हिन्दी ग़ज़ल, डॉ. मधु खराटे, विद्या प्रकाशन, गुजैनी कानपुर, पृ. 08।
3. ग़ज़ल दर्पण, विनय वईकर, श्री मंगेश प्रकाशन, 23, नवीं रामदास रोड, नागपुर, पृ. 5।
4. उर्दू हिन्दी शब्द कोश, मुहम्मद मुस्तफा खान, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश, पृ. 354।
5. जदीद उर्दू हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश, मुहम्मद उस्मानी, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ. 158।
6. हिन्दी गज़लः ग़ज़लकारों की नजर में, डॉ. सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 41।
7. । भ्पेजवतल वि न्तिकन स्जमतंजनतमए ॅपक डनींउउंकए व्गवितक न्दपअमतेपजल च्तमेए छमू क्मसीपए 1964ए च्छण 19ण
8. ग़ज़ल दर्पण, पृ. 07।
9. गालिब की शायरी, आबिद रिजवी, तुलसी साहित्य पब्लिकेशन्स, गांधी मार्ग, मैरठ, पृ. 21।

ഇ★ഋ

वशिष्ठ अनूप की गजलों में सम-सामयिकता

अनुज कुमार शर्मा*

समकालीन समय में हिंदी गजल के क्षेत्र में अनूप वशिष्ठ की मौजूदगी एक ऐसी लौ के समान है जो अपने समय के समस्त अंधकार को अपने प्रकाश से मिटाने के लिए तत्पर है। अनूप वशिष्ठ अपने समय के सशक्त और अनूठे गजलकार हैं। अनूप वशिष्ठ जिस समय अपना लेखन कार्य आरंभ करते हैं वह समय भारतीय समाज के लिए उतार– चढ़ाव का समय था। इस समय भारतीय समाज पर भूमंडलीकर औरबाजारवाद का तीव्र प्रभाव पड़ रहा था और इसकी अभिव्यक्ति वे अपनी गजलों में कर रहे थे। उन्होंने आपातकाल से लेकर अब तक के भारतीय समाज का प्रत्यक्ष अनुभव बड़ी ही सहजता और सजगता से किया है। दुष्यंत कुमार के बाद जिन गजलकारों ने हिंदी गजल परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य किया है उनमें अनूप वशिष्ठ का नाम अग्रणी है। गजलों के साथ–साथ अनूप वशिष्ठ ने कहानी, गीत, आलोचना आदि क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई परंतु मुख्य रूप से गजलकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं और उनकी सक्रियता अभी भी बनी हुई है।

वो मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता
मैं बे–क़रार हूँ आवाज़ में असर के लिए।

आवाज में जिस असर के लिए दुष्यंत कुमार कह रहे हैं,वह आवाज आज के दौर में वशिष्ठ अनूप की गजलों में सुनाई देती है। वशिष्ठ अनूप लगातार समसामयिक मुद्दों को अपनी गजलों के माध्यम से उठाते चले आए हैं। दुष्यंत के बाद हिंदी गजल परंपरा को आगे बढ़ाने वाले गजलकारों में अनूप वशिष्ठ प्रमुख हस्ताक्षर हैं। जिन्होंने समाज के सभी समसामयिक विषयों को अपनी गजलों में स्थान दिया है। गजलों के साथ–साथ अनूप वशिष्ठ ने कहानी, गीत, आलोचना आदि क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई परंतु मुख्य रूप से गजलकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

अनूप वशिष्ठ मानते हैं की ग़ज़ल का विषय नायिका की हुस्न की तारीफ नहीं है बल्कि समाज के समसामयिक विषयों का यथार्थ परक वर्णन है।प्रभा दीक्षित अपने एक आलेख मैं लिखती हैं– "गजल आधुनिक युग में सामंती युग की बेजुबान दरबारी रखैल नर्तकी नही है, बल्कि आधुनिक आजाद औरत की तरह अदब की अन्य विधाओं की अग्रिम कतार में जन– जन की मुक्ति का परचम उठाए इंकलाब की घोषणा कर रही है।"

कल गुफ्तगू थी हुस्न और इश्क़ की
भूखी जमात की पुकार आज है गज़ल
वह लाज जो लुटने को मजबूर है कही भी
चिथड़ों में सिमटती हुई वह लाज है ग़ज़ल
वह दर्द जो होंठो पर तड़पकर ही रह गया
उस दर्द की गर्जन भरी आवाज़ है ग़ज़ल
वह जुल्म जो सदियों से दरिंदो ने किया है
उस जुल्म के खिलाफ़ अब ऐतराज है गज़ल।

हिंदी विभाग, बीएचयू के प्रोफेसर डॉ अवधेश प्रधान लिखते हैं– "वशिष्ठ अनूप की कविता ने गेय कल्पना के पंखों पर उडान भरते हुए अहर्निश प्रकृति, व्यक्ति और समाज के जीवंत जीवन का साक्षात्कार किया है। गजल को आशिक और माशूका, साकी और प्यालों के तंग दायरों से निकालकर उसे खास हिंदी का रूप– रंग देने की जो परंपरा चली उसमें वह अधिक से अधिक जीवन के विशेषतः सामाजिक जीवन के निकट आती गई और दुष्यंत कुमार के बाद से तो उसका किसान चेहरा, राजनीतिक चेहरा, क्रांतिकारी चेहरा और निखरता गया है और उसे निखारने वाले युवा गजलकारों में वशिष्ठ अनूप का खास योगदान है।

*** शोधार्थी –हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

उनकी गजलों में सत्ता की राजनीति के 'शातिर शिकारियों' की पहचान है तो उनके खिलाफ़ असंतोष, विरोध, आंदोलन और क्रांति का आह्वान भी है। कहीं धार्मिक, सामाजिक पाखंडों के विखंडन का कबीराना अंदाज है तो कहीं पर्यावरण की गहरी चिंता है–

लाख हाथों जगत को जकड़े है/जग को मिथ्या बता रहा है वो
ये न समझो कि काटता जंगल/सबकी सांसें चुरा रहा है वो।"

वशिष्ठ अनूप जी ने अपनी गजलों में समाज की बातें समाज की भाषा में कहीं। गजलों में उर्दू प्रधान शब्द होते हैं लेकिन वशिष्ठ अनूप जी ने उन्हीं उर्दू शब्दों का प्रयोग किया जो हिंदी में घुल–मिल गए। डॉ अवधेश प्रधान के शब्दों में– उनकी गजलों की एक बड़ी विशेषता है भाषा और भाव की सादगी।उन्होंने भाषा के संदर्भ में एक ग़ज़ल भी कहीं–

अपनी भाषा घी शक्कर सी होती है/गैर की भाषा बोलेगा हकलाएगा ।।

जिस प्रकार नागार्जुन अपनी कविता 'प्रतिबद्ध हूं' में जनता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करते हुए लिखते हैं–

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ–
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित स्व की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया–धमान' के खिलाफ
अंध–बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए
अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारंबार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ !

इसी प्रकार अनूप वशिष्ठ गजलों में अपनी प्रतिबद्धता कई जगह पर व्यक्त करते हुए दिखते हैं–

निगाहों में निगाहें डाल सच कहने की आदत है,
जमाने की तरह से मुझको ऐयारी नहीं आती।

अनूप वशिष्ठ के लिए समाज में बदलते मानवीय मूल्य,स्त्री की दशा और दिशा, अकेलापन,आए आम आदमी की पीड़ा आदि को अपनी गजलों में व्यक्त किया है। मानवीय मूल्य समाज में रहने वाले मनुष्य को सही दिशा देकर उसके विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। हर युग में मानवीय मूल्य बदलते हैं परंतु वर्तमान समय में सकारात्मक मूल्य जैसे सत्य अहिंसा आदि का पतन हो रहा है और फरेब, हिंसा, छल, अन्याय आदि की प्रवृत्ति बढ़ रही है। मनवीय मूल्यों के अभाव के कारण ही मनुष्यों का जीवन कष्टों से घिरा है। मनुष्य अपने मूल्यों को भूलकर अमानवीय होते जा रहे हैं। छल, प्रपंच आदि मनुष्य के मूल्य हो गए हैं। बौद्धिकता की अति होने के कारण इंसान में मानवीयता समाप्त होती जा रही है३.

वफा इंसानियत इश्को मोहब्बत
ये सब बेकार होता जा रहा है।

जिस प्रकार दुष्यंत कुमार भ्रष्टाचार,अन्याय इत्यादि के खिलाफ प्रतिरोध की बात करते हुए कहते हैं–

मेरे सीने में ही नहीं तो तेरे सीने में ही सही
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।

लगभग उसी प्रकार का प्रतिरोध हमें वशिष्ठ अनूप की गजलों में देखने को मिलता है–

कोई अंगार दिल को दग्ध करता है बहुत दिन तक,
न हो यह आग तो शब्दों में चिंगारी नहीं आती।।

वशिष्ठ अनूप की गजलें समसामयिक मुद्दों पर तीखा प्रहार करती हैं। आज हमारे देश में भ्रष्टाचार चरम स्तर पर है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल रिपोर्ट के अनुसार 2023 के लिए भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक में भारत 180 देश में से 93 वें स्थान पर है। आज समाज में बिकने की प्रवृत्ति आम हो गई है। परीक्षाओं की पारदर्शिता पर लगातार सवाल उठ रहे हैं। इसी समस्या को उठाती हुई वशिष्ठ अनूप की गजल–

ये समझना बहुत ही मुश्किल है/कौन सच्चा है, कौन झूठा है।

जो भी चाहे खरीद सकते हो/अब तो सब कुछ यहां पे बिकता है।

अब समाज में हर चीज का आधार पैसा बन गया है। व्यक्ति के आचरण को परखने की कसौटी धन बन रहा है। इसी बात का प्रतिरोध करते हुए वशिष्ठ अनूप कहते हैं कि आज भी मानवीय मूल्यों को पैसों से नहीं खरीदा जा सकता। आत्मसम्मान भरा जीवन व्यक्ति के आचरण पर निर्भर करता है, भौतिक साधनों की उपलब्धता पर नहीं। भौतिक सुख की निरर्थकता पर गजलकार लिखते हैं–

हजारों महल बनवा लो बहुत सी गाड़ियां ले लो,
अगर किरदार बोना हो तो खुद्दारी नहीं आती।

आधुनिक दौर की एक बड़ी समस्या है "पारिवारिक संबंध। वसुधैव कुटुंबकम् अर्थात् संपूर्ण विश्व हमारा परिवार है,की भावना रखने वाला देश आज अपने ही परिवार में अलगाव महसूस कर रहा है आधुनिकता के दौर में जहां हर संबंध उपयोगिता पर टिका है,आपसी प्रेम को समाप्त कर रहा है। भौतिक सुख सुविधाओं के पीछे दौड़ते दौड़ते मनुष्य की सोच भी बाजारू हो गई है। वह प्रेम, त्याग, परोपकार, विश्वास के नातों को बाजार की तरह उपयोगिता के स्तर पर आंक रहा है। इसी समसामयिक समस्या की ओर इशारा करते हुए गजलकार अनूप वशिष्ठ लिखते हैं–

चलो बाजार से आ गए, पर
ये घर बाजार होता जा रहा है।

स्वतंत्रता के बाद लगातार शहरीकरण बढ़ रहा है मनुष्य रोजगार एवं उच्च जीवन स्तर के लिए लगातार शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इनको शहरों मैं रोजगार तो मिल रहा है लेकिन इनको लगातार अजनबीपन, अलगाव की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। शहरों का जीवन अभिशप्त वरदान है अर्थात वहा भौतिक सुख सुविधा तो प्राप्त होती है, परंतु कुंठा, ईर्ष्या, घुटन आदि का सामना ता है। गजलकार अनूप वशिष्ठ इसी समस्या को अपनी गजलों में गंभीरता से उठाते हैं।

चंद सिक्कों पर बिका प्यार तुम्हें कैसा लगा,
मेरे शहर का कारोबार तुम्हें कैसा लगा ?

महानगर में रहने वाले व्यक्ति का आचरण विचित्र है । वह दोहरा व्यक्तित्व रखता है। महानगरीय जीवन स्वर्ण पिंजर है जो बाहर से लुभावना लगता है परंतु अंदर से नीरस,सौंदर्य रहित है। महानगर एक ऐसा कारागार है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अदृश्य रूप से कैद है। वह विभिन्न बंधनों से तो आजाद है लेकिन अपने ही बंधनों में बंधा हुआ है।

हर घड़ी आपदाओं का घेरा ना था
आदमी इस तरह अकेला न था
थोड़ा–थोड़ा उजाला था हर द्वार पर
रोशनी कम थी यूं अंधेरा ना था
लोग लड़ भिड़के भी साथ रह लेते थे
इस तरह से कभी तेरा–मेरा ना था।।

पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण आज हमारे देश में बड़ी समस्या बनती जा रही है। लोग आधुनिकता के नाम पर अपनी सभ्यता, संस्कार, आदर्श आदि को रूढ़िवादी कहकर लगातार नकारते जा रहे हैं। भारतेंदु जी ने भारत दुर्दशा नाटक में भारत की दुर्दशा के जिन चार कारणों(अपव्यय, अदालत, फैशन, सिफ़ारिश) का वर्णन किया है, उन्हीं में से एक फैशन की सभ्यता का जिक्र करते हुए वशिष्ठ अनूप जी लिखते हैं–

कोई फैशन में नंगा है ,कोई नंगा विवशता में
तमाशा देखने वालों की हैरानी का क्या मतलब।।

गजलकार अनूप वाशिष्ठ लोगों की संवेदनहीनता पर भी तीखा प्रहार करते हैं कि लोग गरीबी को भी मजाक का विषय बनाते हैं।

वर्तमान समय में एक समस्या बच्चों के बचपन का छिन जाना है। मनुष्य लगातार भौतिक वस्तुओं के पीछे दौड़ रहा है। उपभोक्तावादी वस्तुओं ने बच्चों से उनका बचपन छीन लिया है। इलेक्ट्रॉनिक खिलौने,

कार्टून,वीडियो गेम, इंटरनेट आदि ने बच्चों को कमरे में बंद करके उनके प्राकृतिक विकास को रोक दिया है। यह स्थिति हमारी नई पीढ़ी के लिए खतरनाक है। पहले बच्चे परिवार के सदस्यों के बीच बैठकर, खेलकर अपना समय व्यतीत करते थे, जिससे उनका संतुलित शारीरिक व मानसिक विकास होता था तथा रिश्तों की सही पहचान होती थी। इसी समसामयिक समस्या पर गजलकार अनूप वशिष्ठ अपनी चिंता जाहिर करते हैं–

बच्चों के जीवन से जाने बचपन कहां गया
वह रोना–धोना, जिद्दियाना कहा गया,?
बच्चे भी अब बच्चों जैसी बात नहीं करते
खेल खिलौने दूध–भात का आंगन कहां गया?
सुबह शाम की धमा–चौकड़ी, गोली, गुल्ली–डंडा कहां गया
डाल डाल पर ओला– पाती मधुबन कहां गया ?

गजलकार अनूप वशिष्ठ समसामयिक समस्या नारी शोषण को अपनी गजलों के माध्यम से प्रखर रूप से उठाते हैं। द्रोपती का चीर हरण महाभारत तक सीमित नहीं बल्कि आज का दुशासन पौराणिक दुशासन से भी ज्यादा अमानवीय, संवेदनहीन है। ये बड़े दुर्भाग्य की बात है जहां यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता अर्थात जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं वाले देश में स्त्रियां ही सुरक्षित नहीं है। परंतु इस बदलते युग को लेकर आलोचक व गजलकार वशिष्ठ अनूप लिखते हैं– "समकालीन हिंदी गजलों में स्त्री समुदाय की यथास्थिति, शोषण, दमन और वर्जनाओं के साथ ही उनकी परिवर्तनकामी आकांक्षाओं और प्रतिरोधी विचारों को भी बेहतर अभिव्यक्ति मिल रही है।" गजलकार अनूप वशिष्ठ नारी सशक्तिकरण की बात करते हुए अपनी अस्मिता की रक्षा स्वयं नारियों से करने की बात कह रहे हैं–

जरूरी है कि द्रोपदिया स्वयं बांधे कमर
दुशासन छोड़ दे तो कृष्ण पट ले भाग जाएंगे।

सब समस्याओं के मूल में है शिक्षा। शिक्षित समाज देश की तरक्की में अपना योगदान देता है। भारत कभी जब विश्व गुरु के पद पर आसीन था तो यह सोने की चिड़िया कहलाता था। लेकिन आज के दौर में शिक्षा केवल ढोंग बन कर रह गई है। राजनीतिक नेता केवल झूठे वादे करते हैं। इसी डिजिटलीकरण के दौर में भी हमारे देश में कॉपी किताब मुहैया नहीं करा पा रहे हैं। इस समसामयिक मुद्दे पर वशिष्ठ अनूप की गजल राजनीतिक नेताओं के दोहरे चरित्र पर तीखा व्यंग्य करती है–

जहां बिजली नहीं, कॉपी किताब भी नही मिलती।
हमारे रहनुमा कंप्यूटरों की बात करते हैं ।।

सन्दर्भ–सूची :–

1. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, पृष्ठ संख्या 13।
2. वाशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृष्ठ 1।
3. प्रतिनिधि कविताएं, संपादक नामवर सिंह, पृष्ठ 15।
4. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपले, पृष्ठ 11।
5. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, पृष्ठ संख्या 30।
6. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृष्ठ 62।
7. वशिष्ठ अनूप, मशालें फ़िर जलाने का समय है, पृष्ठ 12।
8. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपले, पृष्ठ 11।
9. वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृष्ठ 44।
10. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृष्ठ 28।
11. वशिष्ठ अनूप, तेरी आंखें बहुत बोलती हैं, पृष्ठ 39।
12. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोंपले, पृष्ठ 60।
13. वशिष्ठ अनूप, बंजारे नयन, पृष्ठ 5।
14. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृष्ठ 22

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में बदलते जीवन मूल्य
(स्त्री अस्मिता के विशेष संदर्भ में)

सोनी कुमारी*

"साहित्य के रूप में समाज की जो छाया प्रकट होती है वह लेखक के व्यक्तित्व के ही माध्यम से आती है। साहित्य के निर्माण में इस बीच की कड़ी–लेखक के व्यक्तित्व का बहुत महत्व है और यह महत्व इस बात में है कि एक ओर इसका संबंध समाज से है तो दूसरी और साहित्य से। साहित्य रचना प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि उनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है। समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।"[1] साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा 'उपन्यास' है। इस प्रकार नारी–अस्मिता–संबंधी प्रश्नों की अभिव्यक्ति उपन्यास साहित्य में खुलकर हुई है। नारी– अस्मिता संबंधी प्रश्नों का प्रतिनिधित्व करनेवाला उपन्यास साहित्य के विषय में कहना अनुचित न होगा कि वह समाज, समाज में रहनेवाली सृष्टि की बेसकीमती संरचना स्त्री के मानवीय अधिकारों की संघर्ष की वकालत करनेवाला साहित्य है।

उपन्यास साहित्य में जीवन के समग्र घटनाओं का वर्णन गंभीरता के साथ किया जाता है। क्योंकि जीवन के व्यापकता का विस्तारपूर्वक वर्णन साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं देखा जा सकता। शौल्फ–फौक्स इसके संदर्भ में लिखते हैं–" उपन्यास का वास्तविक संदर्भ जीवन से है। महान घटनाओं की खोज वह नहीं करता है। उसकी रचना तो दैनिक जीवन की घटनाओं से हैं।"[2] अंतः युगों से सामाजिक न्याय एवं अधिकारों से वंचित नारी के प्रति विशेष ध्यान देना, समयोचित नारी मूल्य की स्वस्थ प्रतिष्ठा का दावा करना, उसके जीवन के विविध पहलुओं के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा समकालीन जीवन–यथार्थ से अवगत कराकर सामाजिक तथा राष्ट्रीय चरित्र के उन्नयन हेतु उसे प्रेरित तथा प्रोत्साहित करना– उपन्यास – कृतियों में आवश्यक रहा है। अपनी नियति स्वयं बनाने की दिशा में नारी को अपने आत्मबल और सामर्थ्य के प्रति सजक बनाना भी उपन्यासकार का दायित्व बन गया है।"[3] स्त्री की इतिहास पटल की और दृष्टिपात करें तो हमारे सामने आती हैं उसकी दबी–कुचली आकांक्षाएँ, खुले आसमान में रहते हुए भी न उड़ने की विवशताएँ और सामाजिक व्यवस्था के जकड़न में कैद उसका अस्तित्व। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में भी नारी शोषण, शोषण से मुक्त होने के लिए संघर्ष, मुक्ति की अदम्य चाह और दायरे तोड़ने की कोशिश के चित्र अत्यधिक दिखाई पड़ते हैं। किंतु स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में कामकाजी स्त्री का चित्रण अधिक हुआ है। इसीलिए पश्चिमी विचारों के प्रभाव स्वरूप उनके वैचारिकता में कई बदलाव देखने को मिल रहे हैं उनका जीवन प्रणाली पाश्चात्य जीवन प्रणाली से प्रभावित होने के कारण ही आज के समसामयिक साहित्य में नारी–जीवन के दो महत्वपूर्ण सरोकार है– भारतीय नारी की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक स्तर पर आत्मनिर्भरता तथा दूसरे पुरुषों के साथ उसके संबंधों का स्वच्छंदता।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में नारी–जीवन का चित्रण क्रमशः यथार्थवाद एवं शोषण को आधिकारिक उभरनेवाले है। उनकी वैचारिकता में बौद्धिक चेतना की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ रही है। इस काल के लेखिकाओं ने भी अपने उपन्यासों में नारी–जीवन को यथार्थता के धरातल पर अत्यधिक दिखाने की कोशिश की है। उन्हें पारंपरिक रूढ़ियों, अंधविश्वास और मान्यताओं के शोषण से मुक्त कराने हेतु निर्भीकता के साथ कार्य कर रही हैं। इस संदर्भ में लेखिका मृणाल पांडे कहती हैं–"आज की स्त्रियाँ देख ही नहीं, सप्रमाण लिख भी रही हैं कि उनकी राय में पुरुष क्या देख रहा है। साथ ही शायद पहली बार वे देखा और लिख रही हैं कि पुरुषों में वे खुद क्या–क्या देख रही हैं, देखती रही हैं। जाहिर है, ऐसे में रचना के भीतर स्त्री की भाषा और उनके द्वारा जिया गया इतिहास और समय अपनी परिचित, पारंपरिक चाल छोड़कर गुंफित और पेचीदा राह पकड़ेंगे ही।"[4] इसी क्रम में आगे कहती हैं– "ये लेखिकाएँ आज अक्सर हमारा सामना उस शोषक से कराती हैं, जो समाज में अन्यत्र नहीं, खुद उनके हमारे मनों के गर्भगृह में स्थापित और पूजित रहा आया है।"[5]

*** शोधार्थी–हिन्दी विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद।**

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी लेखिकाओं में सबसे कर्मठ, चिंतनशील और बोल्ड व्यक्तित्व अगर किसी लेखिका का मिलता है तो वह मृदुला गर्ग का। लेखिका ने भौगोलिक परिधि अथवा समसामयिक वातावरण से प्रभावित होकर ही अपने रचनाओं में वह पहलू समेटने की कोशिश की है जो समाज के केंद्र से कहीं लुप्त थी। नारी प्रगति के युग में भी जैसे–जैसे नारी की स्वतंत्र अवस्था पर परतंत्रता हावी होती गई वैसे–वैसे ही उसके व्यक्तित्व की स्वतंत्रता के लिए लेखिकाएँ सजग होती गई। प्रखर स्त्री चिंतक मृदुला गर्ग कुल सात उपन्यासों की रचना की है जिसमें 'उसके हिस्से की धूप', 'चितकोबरा', 'मैं और मैं', 'वंशज', 'मिलजुल मन' और 'कठगुलाब' आदि प्रमुख है। जो साहित्य जगत में अपनी विषयवस्तु के कारण विशिष्ट बन पड़ा हैं। उनके उपन्यासों में नारी का जो स्वरूप उभर कर आया है वह स्वतंत्र विवेकसम्पन्न, विद्वता, कामकाजी स्त्री का है। साथ ही नारी की आर्थिक परतंत्रता और पुरुष–नारी के असंतुलित संबंधों पर भी ध्यानाकृष्ट किया गया है। लेखिका के उपन्यासों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि उसका विषय स्त्री–पुरुष संबंध, यौन–संबंध, प्रेमी–प्रेमिका संबंध, पत्नी–पति संबध एवं विवाहेत्तर संबंध पर आधारित है।

मृदुला जी के रचना संसार में स्त्री के अनेक रूप मौजूद है, कहीं वह पुरुषों पर आश्रित है तो कहीं उनके विचारों को मानने के लिए बेबस, तो कहीं आत्मनिर्भर होकर स्वयं अपने निर्णयात्मक रूप में समाज में मौजूद है। वे स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के प्रचलित अर्थों को तोड़ना चाहती हैं। समाज में उसके वास्तविक रूप को प्रस्तुत करते हुए, उनकी कमजोरी उनके कार्य चेतन, स्वायत्त को स्पष्ट कर स्त्री–पुरुष संबंध से इतर उसकी असल जिंदगी उनके जीवन की सच्चाइयों को उद्‌घाटित करना चाहती हैं। जब 'कठगुलाब' उपन्यास में सभी स्त्री पात्र समवेत स्वर में उद्‌घोष करती है–"हाँ, मैं एकदम पारंपरिक, जाहिल, गँवार, प्राकृत औरत हूँ। औरत हूँ मैं। तो? क्यों न हूँ औरत? मैं चिल्ला– चिल्लाकर कर कहती हूँ मैं एक बच्चा पालना चाहती हूँ। अपनी आँखों के सामने अपने पर निर्भर बच्चे को आत्मनिर्भर बनते देखना चाहती हूँ। उसे आत्मनिर्भर बनाने में इन्वेस्ट करना चाहती हूँ। मैं पालना–पोसना, सहेजना– सँवारना चाहती हूँ। मैं एक सर्जक होना चाहती हूँ।"[6] मृदुला गर्ग सापेक्ष सामाजिक संबंधों से भिन्न असल जिंदगी की सार्वजनिक दृष्टि से अलग 'अस्मिता' स्त्री को प्रदान करना चाहती हैं। अतः लेखिका स्त्री–पुरुष की नैतिक और अनैतिक मानदंड को बेझिझक चित्रित करती हैं।

लेखिका का संपूर्ण उपन्यास नैतिकता और परंपरा से हटकर स्वच्छंद विचारधारा के कारण जैविक मूल्य का निर्वाह करता दिखाई पड़ता है। उनकी स्त्रियाँ पारंपरिक रेखाओं का जाल लांघकर आधुनिकता की ओर कदम बढ़ाने हेतु आतुर है। वह पितृसत्तात्मक समाज से कदम से कदम मिलाकर अपने वर्चस्व एवं अधिकारों को पाना चाहती है। लेखिका स्वातंत्रोत्तर काल में नारी–शिक्षा के अत्यधिक प्रचार–प्रसार तथा भारतीय संविधान द्वारा नारी को दिए जाने वाले समानता (पुरूष से) संबल के लिए निर्णायक भूमिका में है। कारण आज नारी में स्व की अनुभूति हो चुकी है। इसी बीच स्त्री में व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना का उद्‌घाटन हुआ है। वह अब नियतिवाद नहीं बल्कि कर्मवादी बनना चाहती है। न वह अपनी स्वतंत्रता को किसी के हाथों में सौंपना चाहती है न किसी के लिए अपनी भावनाओं का बलिदान करना चाहती है। मृदुला जी के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' में मनीषा द्वारा विवाह के रूढ़िवादी परंपरा का विद्रोह दिखाया गया है, उसके अनुसार वैवाहिक जीवन जीने मतलब यह नहीं कि पति–पत्नी हर काम एक साथ ही करें, भले ही वह काम कितना भी एक दूसरे के लिए नामुराद हो "यह वैवाहिक जीवन भी अजीब चीज है३ जो करो एक साथ। साथ बैठो, साथ बोलो, चाहे बोलने को कुछ हो, चाहे नहीं, साथ घूमो, साथ दोस्त बनाओ, चाहे एक का दोस्त दूसरे को कितना ही नामुराद क्यों न लगे, साथ खाओ और साथ सोओ, चाहे एक के खर्राटे दूसरे को सारी रात जगाए क्यों न रखें। वह थका है दिमाग़ से, और कसरत करना चाहता है, वह थाकी है जज्बात से और अकेले रहना चाहती है, पर चुँकि हुए विवाहित हैं,इसलिए ज़रूरी है कि जो भी वे करें, दोनों करें, चाहे उससे एक को कितनी ही कोफ्त क्यों ना हो। अगर वे दोस्त होते तो एक अपना ठौर छोड़ सड़क पर घूमने निकल जाता, दूसरा सोने अपने ठौर चला जाता।"[7]

"लेखिका की दृष्टि में आज स्त्री–पात्राओं ने वे मुखौटे उतार फैंके है जो मर्द मानसिकता ने उन्हें पहना रखे थे। मातृत्व और वात्सल्य की देवी का मुखौटा, जलनशील ईर्ष्यालु दूसरी औरत का मुखौटा, गहने–कपड़े की शौकीन स्त्री का मुखौटा। अब जाकर कहीं स्त्री के चारों तरफ का बुना रूढ़ तिलस्म टूटा रहा है और उसमें चेतना जन्म ले रही है। यहाँ वहाँ छुपाने को मजबूर ये औरतें अब अपने बुर्के तथा घूंघट हटाकर सामने आ रही हैं। यह स्वागत योग्य तथा खुशी की बात है।"[8]

बदलते जीवन मूल्य का चित्रण मृदुला जी के उपन्यास 'कठगुलाब' में भी प्रौढ़तम रूप में दिखाई पड़ता है। 'अस्मिता' के लिए जागरूक उपन्यास की स्त्रियों को उनकी परिस्थिति प्रदत्त चेतन ने दबंग एवं विद्रोही बनाया है। समाज में हो रहे पुरुषयी अत्याचारों को समझते हुए असीमा जहाँ कराटे सिखाते हुए फेमिनिज्म पर छपने वाले हर पुस्तक को पढ़ती है। तो वहीं कठगुलाब की दूसरी पात्र स्मिता पौराणिक चरित्रों का रूप धारण करते हुए कभी चंडी तो कभी दुर्गा बन उन तमाम पुरुषों का हत्या कर देना चाहती है जो स्त्रियों को यातनाभरे पीड़ादायक जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करते हैं।

उपन्यास के सभी नारी पात्रों कि संघर्ष में पुरुष से अलग होकर अकेले जीवन जीने की एक संपूर्ण दृ ष्टि देखी जा सकती है चाहे स्मिता हो मारियान, नर्मदा असीमा या नीरजा। 'कठगुलाब' के साक्ष्य पर अकेले रहकर जीवन जीना उसकी स्वतंत्रता व सक्षमता का आवश्यक विकल्प बन जाता है। "असीमा की माँ पुराने रास्तों से ही सही, स्वावलंबी होकर ही अपने स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान कायम रख पाती है। मरियान शुरू से ही थी– पाश्चात्य समाज की नियमित व्यवस्था। स्मिता भी आत्मनिर्भर बनती है। नमिता भी भले– कुछ अवांछित तरीके से। असीमा का तो पूछना ही क्या? आत्मनिर्भरता की दूसरी पीढ़ी की रहबर है। परंतु नर्मदा की आर्थिक आत्मनिर्भरता की यात्रा भारतीय समाज के निम्नवर्ग के विकास के हर कोण व रूप से होकर गुजरती है। उसका जाँगर और जीवट गज़ब का है।"[9]

समाज के अध्ययन का एक नया रूप मृदुला गर्ग के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। उनके लेखन का विषय इतिहास से जुड़कर वर्तमान समय की प्रासंगिकता को व्यक्त करता है। उनके उपन्यास 'अनित्य' और 'मिलजुल मन' के द्वारा हमें तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक घटनाक्रमों की संवेदनशीलता का दिग्दर्शन हो जाता है। तो वहीं 'अनित्य' उपन्यास में काजल बनर्जी इतिहास के गहराइयों में जाकर स्वतंत्रता संग्राम और क्रांतिकारी की भूमिका में दिखाई पड़ती है। और उपन्यास 'मिलजुल मन' की गुल और मोगरा के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक घटनाक्रम में सहभागिता सुनिश्चित करते हुए भारतीय समाज में गर्विली भूमिका निभाती स्त्री का दिग्दर्शन होता है। वंशज में पिता–पुत्र के अंन्सर्विरोधों एवं पीढ़ियों का अन्तराल का संघर्ष है, जिसके परिणामस्वरूप रेवा को पिता से प्रेम तो मिलता है किंतु जायदाद में हिस्सा नहीं।

जीवन के विविध प्रसंगों को लेखिका इतनी निपुणता से एक माला में पिरोती है कि पाठक को भी काव्यात्मकता की अनुभूति होने लगती है, फिर सब कुछ जीवंत और सहज भी लगने लगता है। मृदुला जी अपने सभी उपन्यासों में नारी क्षमता का परिचय देती नजर आती हैं। यह सब होता है मृदुला जी के सर्वे–आयामी चिंतनशीलता के कारण ही। स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं के हृदयस्पर्शी चित्र उनकी रचनाओं में अंकित है। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री की समानता, स्वतंत्रता की पक्षधर मृदुला जी अपनी रचनाओं में स्त्री जीवन के विभिन्न घात–प्रतिघातों से साक्षात्कार करवाती है। अंततः स्त्री उत्थान का प्रतिनिधित्व करता उनका उपन्यास–साहित्य बेसक समाज को नवीन दृष्टि प्रदान करता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. शर्मा, आरती, मृदुला गर्ग के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पब्लिकेशन अतुल्य, दिल्ली –110093, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ.13–14।
2. डॉ. पतंगे, नीता अरविंद, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी विमर्श (पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक) वान्या पब्लिकेशन, कानपुर, संस्करण 2023, पृष्ठ.70।
3. डॉ.शर्मा,सुधा, साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, अनुराधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ.10।
4. डॉ. सिंह, ज्योति, मृदुला गर्ग और नारी अस्मिता का प्रश्न, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 208, पृष्ठ. 32।
5. वही, पृष्ठ.32।
6. दिनेश द्विवेदी, मृदुला गर्ग व्यक्तित्व एवं कृतित्व, नमन प्रकाशन नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्कर, 2015, पृष्ठ.242।
7. गोहेल, डॉ. दिनेश कुमार एस., मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नर–नारी संबंध, शांति प्रकाशन रोहतक हरियाणा–124001, पृष्ठ.201।
8. डॉ.अग्रवाल,तारा, मृदुला गर्ग का कथा साहित्य, विद्या प्रकाशन सी–449 गुजैनी,कानपुर–22, संस्करण द्वितीय 2011, पृष्ठ.109।
9. दिनेश द्विवेदी, मृदुला गर्ग व्यक्तित्व एवं कृतित्व, नमन प्रकाशन नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्कर, 2015, पृष्ठ.126।

★

प्रेमचंद एवं शरतचन्द्र के उपन्यासों में वर्णित स्त्री-संवेदना

सत्येन्द्र कुमार द्विवेदी*

प्रो. ललित कुमार सिंह**

शोध सारांश :– 'प्रेमचंद' एवं 'शरतचन्द्र' के उपन्यासों में स्त्री जीवन की विभिन्न वेदनाओं का चित्रण किया गया है। प्रेमचंद उत्तर भारत के प्रमुख कथाकार हैं तथा शरतचन्द्र बंगाल के समाज के प्रमुख चितेरे। स्त्री जीवन, पुरुषों की अपेक्षा अधिक समस्याग्रस्त है। उनके जीवन में अनमेल विवाह, बाल विवाह, विधवा जीवन तथा आर्थिक परतंत्रता जैसी समस्याएं प्रमुख रूप से विद्यमान हैं। दोनों ही कथाकारों के उपन्यासों में स्त्री समाज की दयनीय एवं पराधीन स्थिति का प्रभावी वर्णन हुआ है।

मूल शब्द :– उपन्यास, स्त्री समाज, पराधीनता, वेदना, संघर्ष, जीवन समस्या, मानसिकता, दयनीयता

प्रस्तावना :– प्रेमचंद एवं शरतचन्द्र के विवेचित उपन्यासों में स्त्री समाज के प्रत्येक पक्ष का गंभीरता पूर्वक वर्णन किया गया है। दोनों रचनाकारों का लेखन काल भी लगभग समान है। अंतर केवल यह है कि प्रेमचंद उत्तर भारत की विषम परिस्थितियों में संघर्ष करती स्त्रियों की कथा कहते हैं, जबकि शरतचन्द्र बंगाल की पृष्ठभूमि से संबंधित स्त्री समाज का विवेचन करते हैं। दोनों ही क्षेत्रों में स्त्री का जीवन दयनीय रहा है। इन रचनाकारों के उपन्यासों में स्त्री अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत दिखाई देती है। शोध आलेख की सीमा को ध्यान में रखते हुए दोनों रचनाकारों के पाँच–पाँच उपन्यासों का अध्ययन किया गया है– प्रेमचंद के– सेवासदन, गबन, कर्मभूमि, निर्मला, गोदान और शरतचन्द्र के– चरित्रहीन, गृहदाह, बड़ी दीदी, देवदास, शेषप्रश्न।

इन उपन्यासों में स्त्री समाज का शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक शोषण तत्कालीन समाज द्वारा किया गया है। उनकी आकांक्षाओं का दमन पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण हुआ है। इस दमन की गहन वेदना उपन्यासों में प्राप्त होती है। प्रेमचंद एवं शरतचन्द्र दोनों ने सामाजिक कुरीतियों पर अपनी दृष्टि रखते हुए स्त्री पीड़ा को समाज की अन्य समस्याओं के बीच प्रस्तुत किया है। स्त्री समाज हर मोड़ पर ठगी जाती है। उसकी जीवन संबंधी आकांक्षाएं पददलित होती रही हैं और वह छेड़छाड़ का शिकार भी हुई है। दोनों उपन्यासकारों के यहाँ स्त्री संवेदना का गंभीरता पूर्वक चित्रण प्राप्त होता है। विवेच्य उपन्यासों में स्त्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा दीन–हीन है। अधिकांश स्त्रियाँ पुरुषों पर निर्भर हैं। पुरुष प्रधान समाज में उन्हें अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जब कभी वे अपने अधिकार एवं स्वाभिमान के लिए जागृत होती हैं तो समाज उन्हें 'चरित्रहीन' तथा 'कुलटा' कहकर बदनाम करता है। गोदान उपन्यास में धनिया अपने देवर हीरा द्वारा अपमान किए जाने पर जब विरोध करती है तो उपस्थित लोग उसे ही दोषी ठहराते हैं– "बाकी बड़ी गाल–दराज औरत है भाई, मरद के मुँह लगती है। होरी ही जैसे मरद है कि इसका निभाह होता है। दूसरा मरद होता तो एक दिन न पटती।"[1]

धनिया घर संभालने के साथ–साथ होरी के साथ खेती–किसानी में भी भागीदार होती है, फिर भी वह सम्मान की अधिकारी नहीं है। दूसरी ओर, धनिया की देवरानी पुनिया जब बाँस की खरीद–फरोख्त में अपने हिस्से के लिए सजग होती है और खरीदार भोला से मोलभाव करती है, तब उसका पति हीरा उसे इस बात पर मारता है कि वह औरत होकर गैर–मर्द से बात करती है– "औरत जात इसी तरह बकती है। आज को तुमसे लड़ गई, कल को दूसरों से लड़ जाएगी।"[2]

***शोधार्थी– हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)। (शोध निर्देशक) एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)।**

**** (शोध निर्देशक) एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)।**

गोबर झुनिया से प्रेम करता है, विवाह करता है और जीवनभर साथ निभाने की कसम भी खाता है। परन्तु जब झुनिया दो बच्चों की माँ बन जाती है, तब गोबर का व्यवहार बदल जाता है। अब झुनिया के लिए मायके के दरवाजे भी बंद हो जाते हैं क्योंकि वह घर से भागकर गोबर के साथ आई थी। झुनिया अपनी पीड़ा पड़ोसिन से कहती है– ''मुझे केवल भोग की वस्तु समझता है। चाहे मैं मरूं या जियूं, उसकी इच्छा पूरी किए जाऊं, उसे कोई गम नहीं। सोचता होगा, यह मर जाएगी तो दूसरी लाऊंगा... मैं ही ऐसी अल्हड़ थी कि तुम्हारे फंदे में आ गई। तब तो पैरों पर सिर रखे देता था, यहां आते ही न जाने क्यों जैसा इसका मिजाज ही बदल गया।''[3]

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में ऐसे स्त्री पात्रों की सृष्टि की है जो समाज में शोषित, संघर्षरत एवं संवेदनशील स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं– जैसे गोबिंदी, धनिया, झुनिया, सिलिया, सुमन, शांता, निर्मला, सुखदा, नैना तथा रतन आदि। विवाहित स्त्रियाँ अपने पति पर एकाधिकार चाहती हैं, उनके प्रेम में किसी प्रकार की भागीदारी नहीं चाहतीं, लेकिन अक्सर उन्हें धोखा मिलता है। गोदान की गोबिंदी तथा कर्मभूमि की सुखदा, अपने पतियों के व्यवहार से आहत होती हैं। गोबिंदी एक पतिव्रता एवं उच्च विचारों वाली स्त्री है, परंतु मि. खन्ना मालती से प्रेम करते हैं। प्रो. मेहता भी नारी के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए कहते हैं– ''नारी की स्वाधीनता और सम्मान रक्षा का प्रश्न देश की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का अंग है। नारी की स्वाधीनता देश में स्वाधीन जनतंत्र कायम हुए बिना संभव नहीं है। वे शक्तियाँ जिन्होंने सुमन को पहले वेश्या बनाया, पीछे कलंकिनी कहकर उसे गंगा की तरफ ठेला, समाज पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए थीं।''[4]

सेवासदन की सुमन अपने मायके में बाल्यावस्था में सुखी जीवन जीती है, परंतु उसका अनमेल विवाह वृद्ध गजाधर से हो जाता है। ससुराल में सीलन भरी कोठरी में जीवन व्यतीत करती है। एक दिन सांस्कृतिक कार्यक्रम 'जलसा' देखने गई सखी सुभद्रा के साथ देर से लौटने पर पति उस पर लांछन लगाकर घर से निकाल देता है। सुमन व्यथित होकर पड़ोसिन भोली वेश्या के यहाँ शरण लेती है, किन्तु समाज उसकी स्थिति न देखकर उस पर लांछन लगाता है। अंततः वह पेट पालने के लिए वेश्या बनना स्वीकार करती है। भोली वेश्या सुमन से कहती है कि इस देश में स्त्री की पराधीनता अधिक है– ''यह बेहूदा रिवाज यहीं के लोगों में है कि औरत को इतना जलील समझते हैं, नहीं तो सब मुल्कों की औरतें आज़ाद हैं, अपनी पसंद से शादी करती हैं और उससे रास नहीं आती तो तलाक दे देती हैं। लेकिन हम सब वही पुरानी लकीरें पीट रहे हैं।''[5] भोली के जीवन में भी ऐसा ही हुआ था। उसका भी अनमेल विवाह एक बूढ़े मियाँ के साथ होता है, परंतु वह ऐसी विद्रूप पराधीनता से मुक्त होकर वेश्यावृत्ति को रोजगार के रूप में अपना लेती है। जहाँ एक ओर वेश्या बन जाने वाली स्त्री से उसका परिवार घृणा करता है, वहीं दूसरी ओर वेश्या को सम्मान देकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों में घर बुलाया जाता है। यह सामंतवादी मानसिकता का दोहरा रूप है।

प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में होने वाले अनमेल विवाह की समस्या को स्पष्ट किया है। 'निर्मला' उपन्यास में निर्मला, 'गबन' उपन्यास में रतन तथा 'गोदान' में होरी की दोनों बेटियाँ सोना एवं रूपा के अनमेल विवाह का वर्णन किया गया है। 'निर्मला' उपन्यास में निर्मला की माँ कल्याणी दहेज न दे पाने के कारण मजबूर होकर अधेड़ वकील तोताराम, जो तीन बच्चों के पिता हैं, से निर्मला का विवाह कर देती हैं। निर्मला इस विद्रूप विवाह को स्वीकार नहीं कर पाती है। कभी–कभी वह सोचती है, मुझे ही बूढ़ा पति क्यों मिला– ''निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आईने के सामने खड़ी होती है और अपने सौंदर्य की सुषमा पूर्ण आभा देखती है तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता है। उस वक्त उसके मन में एक ज्वाला–सी उठती है। मन में आता है कि इस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता है। सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता है। वह सदैव इस बात से जला करती है। बांका सवार बड़े लद्दू टट्टू पर कब सवार होना कब पसंद करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े।''[6] निर्मला अनमेल विवाह का कष्ट जानती है, इसलिए मरते समय अपनी बालिका रुक्मिणी को सौंपते हुए कहती है– ''चाहे कुँवारी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा, इतनी ही आपसे विनय है।''[7]

प्रेमचंद ने कई उपन्यासों में विधवा स्त्रियों की समस्या को स्पष्ट किया है, जैसे 'निर्मला' में कल्याणी, रुक्मिणी, 'गबन' में रतन, 'गोदान' में झुनिया, 'कर्मभूमि' में पठानिन रेणुका इत्यादि। विधवा जीवन स्त्री–समाज के लिए अभिशाप है। न वो स्वयं का तथा अपने आश्रित बेटों–बेटियों का भरण–पोषण कर पाती है, क्योंकि भारतीय समाज में अधिकांश विधवाएँ गरीब तथा बेरोजगार रहती हैं। पठानिन विधवा होने के कारण बेटी सकीना के विवाह के लिए चिंतित रहती हैं तथा दूसरों से हाथ पसारने के लिए विवश हैं। क्योंकि अच्छे वर से विवाह के लिए दहेज की आवश्यकता रहती है। समाज में अच्छे रिश्ते का आधार अच्छा दहेज है। यदि लड़की रूपवती है तो और भी अच्छा है, परंतु दहेज के अभाव में उसका कोई भी मूल्य नहीं है– "वह रूपवती है, चतुर है, कुलीन है तो हुआ करे, दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं। प्राणों का कोई भी मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है।"[8] बंगला भाषा के महान कथाकार शरतचंद्र ने भी स्त्रियों की पीड़ा एवं जीवन संबंधी अनेक दुश्वारियों को अभिव्यक्त किया है। उनकी नायिकाएँ सेवा, त्याग, बलिदान तथा सहानुभूति से पुरुष वर्ग का हृदय जीत लेती हैं। शरतचंद्र के पाँच उपन्यासों का विवेचन किया गया हैः 'चरित्रहीन', 'बड़ी दीदी', 'गृहदाह', 'देवदास' तथा 'शेषप्रश्न' इत्यादि। "शरतचंद्र के कुछ नारी पात्र असीमित प्रणय आकांक्षा और उद्दाम लालसा के द्योतक हैं। प्रेम के अथाह सागर में वे डूबते–उतराते हैं। वस्तुतः प्रेम शरतचंद्र के नारी पात्रों के सृजन के मूल में है। प्रायः प्रेम वृत्ति को केंद्र बनाकर नारी पात्रों का प्रणयन हुआ है।"[9] शरत के स्त्री पात्र उदार एवं सेवा भावना में महान हैं, परंतु उनके जीवन में अनेक समस्याएँ हैं। शरत ने भी विधवा स्त्री के दुःख एवं बेरोजगारी का वर्णन किया है। बंगाली समाज में विधवाओं के लिए अधिक जड़ताएँ हैं। उन्हें काशी में रहने का निर्देश है। उनके अधिकांश उपन्यासों में विधवाओं की दारुण दशा का वर्णन प्राप्त होता है, जैसे 'चरित्रहीन' में सावित्री, किरण, अघोरमयी; 'शेषप्रश्न' में कमल, नीलिमा; 'बड़ी दीदी' में माधवी तथा 'गृहदाह' में परित्यक्ता अचला इत्यादि। 'चरित्रहीन' उपन्यास में सावित्री कम उम्र की ही विधवा रहती है। वह कलकत्ता शहर में एक पुरुष हॉस्टल में दासी का काम करती है। उसी हॉस्टल में सतीश नाम का बंगाली युवक सावित्री की सेवा भावना से प्रभावित होकर प्रेम करने लगता है। हालाँकि जब सतीश प्रेम प्रदर्शित करता है, तब वह इंकार करती है, परंतु समाज इस प्रसंग के कारण उसे चरित्रहीन कहता है– "वह चरित्रहीन नहीं थी.. फिर भी समाज उसे चरित्रहीन कहता रहा और वह कानों पर हाथ रखकर चुपचाप सुनती रही। आखिर क्यों? केवल इसलिए कि उसे समाज की नहीं, अपनी मर्यादा और नारी धर्म की चिंता थी।"[10]

इस उपन्यास में दूसरी स्त्री पात्र 'किरणमयी' का पति गंभीर बीमारी से पीड़ित है। उसकी माँ किरण के साथ दुर्व्यवहार करती है। उसके पति का इलाज करने वाला डॉक्टर किरणमयी को पाना चाहता है, परंतु वह इसका विरोध करती है। पति की मृत्यु के उपरांत अधूरे दांपत्य जीवन को एक बार फिर से प्राप्त करने के लिए देवर दिवाकर के साथ ससुराल से भागकर अराकान पहुँचती है, किंतु दुर्भाग्य यहाँ भी उसके साथ लगा रहता है। दिवाकर में स्वार्थ आ जाता है, वह उसका शोषण करता है और विरोध करने पर उसे छोड़कर भाग जाता है। देह व्यापार करने वाली कामिनी उसे एक सेठ को सौंपती है। वह इसे बर्दाश्त नहीं कर पाती। अंत में समाज में जीवन–यापन करना कठिन समझकर वह पगली बनकर दर–दर भटकने लगती है। "किरणमयी का गत जीवन बड़े दुःख में बीता। मायका कहाँ है, उसे मालूम नहीं। मामा के यहाँ पली थी, पर अब उनका भी कोई समाचार ज्ञात नहीं। दस वर्ष की उम्र में वह विवाह कर पति के यहाँ आई थी और यहाँ के व्यवहार ने तो जीवन मृत बना रखा है। प्रेम के स्थान पर उसे पति ने विद्या दान दिया है।"[11]

शरतचंद्र का 'शेषप्रश्न' उपन्यास स्त्री जीवन की वेदना एवं प्रेम भावना को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास में स्त्री पात्र निम्न हैं– कमल, नीलिमा, मनोरमा आदि; परंतु कमल एवं नीलिमा के जीवन में वेदना एवं प्रेम भावना का आधिक्य है। विधवा कमल का दूसरा विवाह शिवनाथ से हो जाता है। स्वार्थी शिवनाथ कमल के रूप–यौवन से आकृष्ट होकर उसे स्वीकार कर लेता है, परंतु कुछ समय बाद उसे छोड़कर अन्यत्र चला जाता है। कमल किसी प्रकार स्वरोजगार करके जीवन जीती है, परंतु हाथ पसारकर माँगना उसे स्वीकार नहीं क्योंकि वह स्वाभिमानी स्त्री है। हरेन्द्र जब शिवनाथ के स्वार्थ के विषय में कहता

है, तब कमल का उत्तर होता है– "वे साफ–साफ मुझसे कहकर जाते तो क्या मैं उन्हें ज़बरदस्ती रोक रखती? किंतु अब सोचती हूँ कि उनमें कहकर जाने का साहस नहीं हुआ, उसी में मेरा सम्मान निहित था।"[12]

'नीलिमा' विधवा है। वह अपने बहनोई प्रोफेसर अविनाश बाबू की गृहस्थी का देखरेख करती है। उसी से नीलिमा का गुज़ारा चलता है। अविनाश बाबू के यहाँ आने–जाने वाले विद्वानों से विचार–विमर्श भी करती है, क्योंकि वह एक विचारवान स्त्री है। स्वयं ही नारी कल्याण पर विचार सभा का आयोजन करती है। अंत में एकाकी जीवन से ऊबकर उम्रदराज आशू बाबू के साथ रहने का निर्णय लेती है, क्योंकि बेटी के जाने के बाद वे निसहाय हो जाते हैं। 'गृहदाह' उपन्यास में अचला का जीवन अपने पति और उसके मित्र सुरेश के बीच बर्बाद हो जाता है। सुरेश अचला को पाने के लिए उसके पति से भटका देता है। वह इसका विरोध करती है, परंतु कोई रास्ता न होने के कारण उसके साथ ही रह जाती है। बाद में सुरेश की प्लेग की बीमारी से मृत्यु हो जाती है और अब वह सचमुच अकेली रह जाती है। उसका पति महिम भी उसे स्वीकार नहीं करता। अंत में वह समाज में भटकने के लिए विवश हो जाती है। 'देवदास' उपन्यास में पार्वती देवदास से बालपन से ही प्रेम करती है। विवाह भी उसी से करना चाहती है, परंतु सामाजिक मर्यादा, ऊँच–नीच का भेदभाव तथा कन्या विक्रय करने वाले परिवार से संबंध के कारण देवदास के पिता मना कर देते हैं। इसके बाद पार्वती का अनमेल विवाह तेरह वर्ष की उम्र में एक उम्रदराज विधुर ज़मींदार से हो जाता है। ससुराल जाने पर उसे आश्चर्य होता है कि उसी के हमउम्र लड़के–लड़कियाँ उसे माँ कहते हैं। पारो किसी प्रकार उस पति–पत्नी के रिश्ते को स्वीकार कर लेती है। उसके लिए साज–सिंगार से बढ़कर ज़िम्मेदारियाँ रहती हैं। वह स्वयं कहती है– "तुम्हारे बुड्ढे होने से मैं भी जल्दी बुड्ढी हो जाऊँगी। औरतों को बुड्ढी होते क्या देर लगती है।"[13]

इस उपन्यास में दूसरा प्रमुख चरित्र 'चंद्रमुखी' है। वह कलकत्ता की प्रसिद्ध वेश्या है। देवदास इधर पार्वती से विवाह न होने के कारण दुखी तथा निराश होकर कलकत्ता में रहने लगता है। चंद्रमुखी देवदास को दुःख से उबारने के लिए उसे स्नेह देती है। बाद में वह भी अपना सर्वस्व छोड़कर समाज सेविका बन जाती है। एक गाँव में किसानों एवं मज़दूरों के साथ बस जाती है और उनकी आर्थिक रूप से मदद भी करती है। 'बड़ी दीदी' उपन्यास की माधवी विधवा होने के बाद अपने मायके की गृहस्थी को संभालती है। माँ के मरने के बाद ज़िम्मेदारी का भार लेने के कारण वह घर की मालकिन कहलाती है। घर से भागकर आए सुरेंद्र को स्नेह देती है। इसी कारण सुरेंद्र मन ही मन माधवी को सम्मान एवं प्रेम करता है। इस उपन्यास में कथाकार ने माधवी के जीवन के दुःख, त्याग एवं स्नेह भावना को प्रदर्शित किया है।

निष्कर्ष :– दोनों कथाकारों के विवेचित उपन्यासों में स्त्री समाज की अनेक समस्याओं एवं पराधीनता के कारण उनके दयनीय जीवन का सजीव चित्रण है। पुरुष प्रधान समाज में खुलकर जीने का अधिकार नहीं है। यदि स्त्री अन्याय तथा शोषण का विरोध करती है, तो समाज उसे स्वतः ही बदचलन मान लेता है, जैसे 'चरित्रहीन' उपन्यास में सावित्री सेवा भावना एवं नारी धर्म का पालन करती है, परंतु जब उसका शारीरिक शोषण करने का प्रयास होता है और वह विरोध करती है, तो सतीश और हॉस्टल के नौकर भी उसे चरित्रहीन कहते हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. प्रेमचंद, गोदान उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ 41।
2. वहीं, पृष्ठ 28।
3. वहीं, पृष्ठ 241।
4. शर्मा रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ 38।
5. प्रेमचंद, सेवासदन उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2020, पृष्ठ 38।
6. प्रेमचंद, निर्मला उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2018, पृष्ठ 31।
7. वहीं, पृष्ठ 139।
8. वहीं, पृष्ठ 27।
9. तिवारी, सुरेन्द्र नाथ, प्रेमचंद और शरतचंद्र, के उपन्यास : मनुष्य के बिम्ब, सुषमा प्रकाशनए नई दिल्लीए 1969, पृ.173।
10. शरतचंद्र, चरित्रहीन उपन्यास, राजा पॉकेट बुक्स, संस्करण 2006, पृष्ठ 183।
11. चतुर्वेदी रामस्वरूप, शरत के नारी पात्र, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1955, पृष्ठ 63।
12. शरतचंद्र, शेषप्रश्न उपन्यास, हिंद पॉकेट बुक्स, संस्करण 2020।
13. शरतचंद्र, देवदास उपन्यास, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015 पृष्ठ 65।

प्रसाद का इतिहासबोध और कामायनी

गोविन्दा*

प्रसाद सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना के सृजनधर्मी रचनाकार हैं। उनका इतिहासबोध समकालीनता और भविष्य निर्माण की चिंता से ओत–प्रोत है। इसलिए उनके साहित्य में इतिहास का सर्वाधिक दखल है। छायावाद का समय बीसवीं शताब्दी के दूसरे दसक से आरंभ होता है। इसी समय भारतीय इतिहास लेखन का भी आरंभ माना जाता है। भारत में ब्रिटिश हुकूमत के स्थापित होने के साथ ही साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के द्वारा भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास को गौरवहीन करने और उसके उपयोगी पक्षों को खारिज करने की कोशिश की गई। जिसका प्रतिपक्ष भारतीय इतिहासकारों ने रचा। मैक्समूलर, ऑकलैंड कलविन, गिब्बन, सेनर्ट आदि लब्धप्रतिष्ठित प्राच्यविदों ने बराबर ऐसे विचारों को व्यक्त किया है जो भारत के राष्ट्र निर्माण और सांस्कृतिक बहुलता को क्षति पहुंचाता है। इन विद्वानों ने साम्राज्यवादी इतिहास बोध को प्रतिष्ठित करने और भारतीय राज व्यवस्था के प्रारम्भिक स्वरूप को विकृत करने के पुरजोर कोशिश की। बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'द स्टेट इन एंशिएंट इंडिया' में यूरोपीय इतिहासकार गिब्बन के विचारों को उद्धृत करते हुए लिखा है "पूरा प्राच्य इतिहास पराक्रम, महानता,अपकर्ष उर पतन का अविच्छिन्न अभिलेख है"।[1] ग्रीन ने कहा "पूर्वी दुनिया के साम्राज्य मुख्यतः कर वसूल करनेवाली संस्थाएं हैं। वे अपनी प्रजा पर प्रचंडतम बल प्रयोग करते हैं, और समय समय पर जारी किए गए विशेष आदेशों के सिवा किसी प्रकार का कानून लागू नहीं करते"।[2] भारतीय इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी इतिहास बोध का जोरदार खंडन किया और अपने देश के प्रारम्भिक इतिहास के सामाजिक और राजनीतिक प्रगति की समीक्षा की। जिसमें उन्होंने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के संदर्भ में उन आरोपों को खारिज किया जो भारत के विशाल स्वरूप को धूमिल करने के उद्देश्य से उस पर लगाए गए थे। काशीप्रसाद जायसवाल राजेन्द्रलाल मित्र, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, बाल गंगाधर तिलक आदि इतिहासकारों ने अपने लेखन और अनुसंधान से साम्राज्यवादी विचारधारा के खोखलेपन को साबित कराने का प्रयास किया।

20वीं शताब्दी के इतिहास लेखन में भारतीय विद्वानों ने इस बात का विशेष ख्याल रखा कि प्राचीन भारतीय समाज की राजव्यवस्था में जनाधिकारों के लिए क्या उपबंध थे और कानून के मूल स्रोत क्या थे? डॉ० रामशरण ने काशीप्रसाद जायसवाल के इतिहास लेखन की चर्चा करते हुए लिखा है "सर्वप्रथम उन्होंने ही प्राचीन भारतीय इतिहास में गणराज्यों का महत्व दिखलाया। उन्होंने यह सिद्ध कराने का प्रयास किया कि प्राचीन हिन्दू राजनीतिक ढांचा अंशतः एथेंस के गण राज्यों और अंशतः ब्रिटेन के ढंग के संवैधानिक राजतंत्रों से बना हुआ था। इसमें पौर और जनपद जैसी जनसभाएं थीं, जो राज्यशाक्ति पर अंकुश रखती थीं। उनके अनुसार ये संस्थाएं उन संस्थाओं से अधिक उन्नत थीं जिन पर आधुनिक स्विट्जरलैंड या संयुक्त राज्य अमेरिका गर्व कर सकता है"।[3] निश्चय ही 20वीं सदी में भारतीय इतिहासलेखकों द्वारा इतिहास लेखन में भारत के उस स्वरूप की खोज शुरू हुई जिस साम्राज्यवादी इतिहास बोध ने विकृत करने की कोशिश की थी। राष्ट्रवादी आन्दोलन के तीव्र होते ही स्वतंत्रता की मांग और तेज हो गई। इस मांग को प्रबुद्ध रचनाकारों ने अपनी स्वीकृति प्रदान की। हिन्दी साहित्य के उस दौर में जो आंदोलन सक्रिय था उसे छायावाद के नाम से जाना जाता है। छायावाद के रचनाकारों ने वैयक्तिक चेतना को सर्वाधिक अभिव्यक्त किया। प्रसाद का सम्पूर्ण लेखन इसका प्रमाण है।

कामायनी आधुनिक हिन्दी कविता की सर्वाधिक सशक्त काव्यकृति है। यह प्रसाद की अंतिम काव्यकृति है जिसकी रचना 1936 ई० में हुई। यह वह दौर था जब भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का अपने चरम पर था। इसके साथ ही आंदोलन के नीतिकारों के समक्ष यह चुनौती भी थी कि आजादी के बाद भारत के शासन का स्वरूप कैसा होगा? इस चुनौती को सभी विद्वान महसूस कर रहे थे और अपने अपने ढंग से इसका सामना भी कर करे थे। लाजमी है की प्रसाद जैसे प्रबुद्ध रचनाकार भी भावी भारत राष्ट्र के शासन व्यवस्था पर चिंतन करते। प्रसाद उस विराट भारत का स्वप्न देख रहे थे जो एशियाई महाद्वीप में नवीन लोकतान्त्रिक राष्ट्र के रूप में उभरने वाली थी। चन्द्रगुप्त नाटक का प्रसिद्ध गीत याद कीजिए–

*** असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–हिन्दी विभाग, के0 डी0 कॉलेज सिम्भावली, हापुड़।**

"अरूण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा"[4]।।

भारत सांस्कृतिक बहुल राष्ट्र है। इसी कारण रवींद्र नाथ टैगोर ने इसे 'महामानव समुद्र' कहा है। लेकिन भारत की इस सांस्कृतिक बहुलता को देखकर ब्रिटिश हुकूमत इस बात से आश्वस्त थी की भारत कभी भी एक राष्ट्र नहीं था और न कभी राष्ट्र के रूप में निर्मित हो सकता है। इस अस्वाभाविक राष्ट्र के निर्माण की कल्पना साम्राज्यवादियों के लिए कठिन था। वस्तुतः भारत एशियाई महाद्वीप में लोकतान्त्रिक राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाला अग्रगणी राष्ट्र होने वाला था, इसकी कल्पना साम्राज्यवादी कर भी नहीं सके थे। इन सब के साथ जो सवाल ज्यादा जरूरी था वह यह था कि नवीन भारत की राजव्यवस्था का स्वरूप कैसा होगा। भारत की प्राचीन सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना के मुताबिक यहाँ राजतन्त्र और गणराज्य दोनों किस्म की शासकीय व्यवस्था विद्यमान थी। लेकिन जनाधिकारों के सवाल पर वर्णव्यवस्था का प्रभुत्व था। लेकिन इतिहास को दरकिनार करके किसी भी राष्ट्र के भावी समाज व्यवसाथ में व्यापक परिवर्तन कर पाना कठिन होता है। इसलिए राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया इतिहास–बोध के राज मार्ग से होकर गुजरती है।

जयशंकर प्रसाद जनाधिकारों की वकालत करने वाले प्रबुद्ध रचनाकार थे। उनका सम्पूर्ण लेखन इस बात की गवाही है। प्रसाद ने लगभग एकदर्जन नाटक लिखें हैं। वे अपने नाटकों में जनाधिकारों के सवाल को प्रमुखता से उठाते हैं। अपने समकालीन राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न वैयक्तिकता की रक्षा को प्रसाद सर्वाधिक महत्व देते हैं। प्रसाद अपने नाटकों को भारतीय इतिहास के किसी न किसी काल खंड से संदर्भित करते है। यह आकस्मिक नहीं था कि प्रसाद जैसा गंभीर भावबोध वाला रचनाकार केवल ऐतिहासिक नाटक लिख रहा है। जबकि प्रसाद समकालीन और तत्कालीन विषयों पर भी समान गति में लिख सकते थे। दरअसल प्रसाद अपने नाटकों के सामंतीय वातावरण में जनाधिकारों को लेकर बेचैन थे। यह उनके सभ्यता समीक्षा का अनुक्रम था। वह भारतीय इतिहास की निरन्तरता की खोज में संलग्न रचनाकार थे। वे अजातशत्रु नाटक की भूमिका में लिखतें हैं– "मानवसमाज की कल्पना का भंडार अक्षय है, क्योंकि वह इच्छा शक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं का, इच्छाओं का मूल–मंत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्फुट होता है। जब वह इच्छा–शक्ति किसी व्यक्ति या जाती में केंद्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धरण करती है, तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती, तब तक वह रूप–परिवर्तन करती हुई पुनरावृत्ति करती ही जाती है"।[5] वे आगे लिखतें हैं– "भारत का ऐतिहासिक काल गौतम बुद्ध से माना जाता है, क्योंकि उस काल की बौद्ध–कथाओं में वर्णित व्यक्तियों का पुराणों की वंशावली में भी प्रसंग आता है। लोग वही से प्रामाणिक इतिहास मानतें है।"[6]

प्रसाद भारतीय इतिहास में भारत के भविष्य की निरन्तरता को देखना चाहते थे। इसलिए कामायनी तक आते–आते उन्होंने जल प्लावन के मिथक को भी इतिहास मान लेते हैं। वे आदिम युग से आधुनिक युग तक की कथा–योजना को कामायनी में समेट लेने को कोशिश करते हैं। प्रसाद के सामने भारतीय इतिहास के नैरन्तर्य की अखंड परंपरा थी। किसी भी समाज की निर्मिति इतिहास को बेदखल करके नही की जा सकती। भारत की खोज उसके इतिहास से प्रारम्भ होती है और निर्माण उसके विरासत से। कामायनी के रचनाकाल तक यह स्पष्ट हो गया था कि भारत बहुत जल्द औपनिवेशिक जकड़न से मुक्त हो जाएगा। अतः आजादी के बाद के भारतीय समाज की रूपरेखा एवं जनसुरक्षा का प्रश्न भी गहराता जा रहा था। प्रसाद कामायनी में इन दोनों प्रश्नों से टकराते हैं। इसीलिए प्रसाद कामायनी में इतिहास की निरन्तरता में सभ्यता समीक्षा प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. बेनी प्रसाद,– 'दि स्टेट इन एंशियंट इंडिया',– इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1928, पृ० 498।
2. वही, पृ ० 498।
3. प्रो० रामशरण शर्मा, 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं', राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2017, पृ० 18।
4. डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र (संपादक), 'प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013, पृ० 654।
5. वही, पृ० 199।
6. वही, पृ० 199।

धर्मवीर भारती के उपन्यासों में चित्रित स्त्री जीवन की प्रमुख समस्याओं तथा प्रेम का विश्लेषण

(विशेष संन्दर्भ : 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा')

भारती*

शोध सार :– गुनाहों का देवता व सूरज का सातवां घोड़ा धर्मवीर भारती जी के प्रमुख उपन्यासों में से हैं, जिनमें प्रेम के विविध स्वरूपों का विश्लेषण तथा स्त्री की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। ये समस्याएं आज भी समाज में विद्यमान हैं– बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, टूटते परिवार तथा स्त्री स्वतंत्रता के सवाल आदि। भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान महत्वपूर्ण है। नारी के बिना संस्कृति और सभ्यता का कोई मूल्य नहीं। नारी ने कई रूपों में पुरुष का संवर्धन किया है, शक्ति दी है। वस्तुतः नारी का स्थान समाज में महत्वपूर्ण होना चाहिए। किसी भी समाज की श्रेष्ठता अथवा अश्रेष्ठता इस बात पर निर्भर करती है कि उस समाज में नारी की स्थिति कैसी है। भारती जी ने अपने उपन्यासों के नारी पात्रों के माध्यम से नारी जीवन विषयक अवधारणा को प्रस्तुत किया है। शायद इसलिए ही 18वीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने नारी की स्थिति पर अधिक ध्यान दिया होगा। हिंदी साहित्यकार भी इसमें पीछे नहीं रहे। प्रताड़ित नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को कई उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों का प्रमुख विषय बनाया। इनमें से एक धर्मवीर भारती भी हैं। इन्होंने भी अपने उपन्यासों में प्रमुख रूप से नारी जीवन का चित्रण किया। इस आलेख में इन दोनों उपन्यासों में चित्रित प्रेम के स्वरूप तथा नारी जीवन की प्रमुख समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा।

बीज शब्द :– आदर्शवाद, निश्चल प्रेम, संघर्षशील, समाजशास्त्र, नारीत्व, उद्देश्यहीन, विवशता, भावुकता, मानसिकता।

प्रस्तावना :– धर्मवीर भारती शुरू में प्रयोगवादी (प्रयोगवाद) खेमे में थे। उनका पिछला उपन्यास गुनाहों का देवता (एक और क्लासिक) प्रयोगात्मक है। लेकिन बाद में उन्हें प्रयोगवाद की सीमाओं का एहसास हुआ। इसलिए उन्होंने पाठ्यक्रम सुधार के लिए सूरज का सातवां घोड़ा लिखा जो प्रगतिशील और प्रयोगात्मक दोनों है। धर्मवीर भारती ने हिंदी साहित्य को जो दिया वह अद्भुत है। उनके कई प्रमुख उपन्यास हैं। पर आज हम बात करेंगे उनके प्रमुख उपन्यास– गुनाहों का देवता व सूरज का सातवां घोड़ा की। गुनाहों का देवता हिंदी साहित्य के प्रमुख उपन्यासों में से एक है। "यह उपन्यास एक सरस एवं भावुकतापूर्ण प्रेम कथा के रूप में परिकल्पित है, जिसमें आदर्शवादी अशरीरी प्रेम की त्रासद परिणति को अंकित किया गया है। सुधा को खो देने के बाद चंदर को यह एहसास होता है कि वह उसे कितना चाहता था। लेकिन यौवन–सुलभ आदर्शों को और प्रेम में देह की भूमिका हठपूर्वक नकारने के कारण, जब वास्तविकता से उसका साक्षात्कार होता है तब तक काफी कुछ निलंब हो चुका होता है।"[1]

प्रेम निरूपण :– प्रेम एक ऐसी समस्या है जिसके एक ओर मधुरता छिपी है तो दूसरी ओर वेदना। प्रेम में किसी को सफलता मिलती है तो किसी को असफलता। प्रेम के विविध रूप होते हैं जैसे– आदर्श प्रेम, वासनाजन्य प्रेम, भावुक प्रेम, निस्वार्थ प्रेम, उद्देश्यहीन प्रेम, पागलपन युक्त प्रेम आदि। इस उपन्यास के संदर्भ में राजेंद्र यादव लिखते हैं– "धर्मवीर भारती का उपन्यास गुनाहों का देवता बहुत सरल, स्निग्ध और मार्मिक है। इसमें गुलाब की सुकुमार पंखुड़ियों की भांति ही जीवन का विकास और विनाश हुआ दिखाई देता है। और हम सोच नहीं पाते कि इसे कैसे रोका जाए। बिनती और चंदर की विवाह की शहनाइयां हम नहीं सुनते एवं वह प्रेम की पावन धारा में विलीन हो जाती है। भारती जी का कथानक साफ–सुथरा व संतुलित है। यहां सबसे बड़ी सफलता भारती जी को इस बात में मिली है कि उन्होंने घटनाओं और अंतर्द्वंद्व का सामंजस्य बड़े सुंदर ढंग से किया।"[2]

धर्मवीर भारती के उपन्यास गुनाहों का देवता व सूरज का सातवां घोड़ा– इन दोनों उपन्यासों में असफल प्रेमी युगलों के प्रेम का चित्रण किया गया है। इसमें सुधा–चंदर, चंदर–पम्मी, गेसू–अख्तर, लिली–माणिक, सत्ती–माणिक आदि प्रेमी युगलों का समावेश होता है। इसके बारे में कैलाश जोशी कहते हैं–

---

* पीएच. डी. शोधार्थी, जेआरएफ उत्तीर्ण (हिंदी) हिंदी साहित्य, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

"उपन्यास में प्रेम उदात्त रूप का चित्रण है। इस कथा से सहज ही ये ध्वनित होता है कि प्रेम वही सार्थक है जिससे व्यक्ति के विकास को सहायता मिल सके।"[3]

गुनाहों का देवता प्रेम का नया समाजशास्त्र प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रेम का स्वरूप शांत है लेकिन उसका अप्रत्यक्ष रूप समाज पर करारी चोट करता है। यह परंपरागत विवाह संस्था पर प्रश्न चिह्न खड़ा करता है। मिस डीक्रीस के माध्यम से आरम्भ में ही मानो उपन्यास की वास्तविक समस्या को इंगित किया हो– "शादी अपने आप को दिया जाने वाला सबसे बड़ा धोखा है। इस धोखे की ओर कच्ची आयु के भोले भावुक मन, प्रेमी वासना रहित निर्मल प्रेम के लिए उल्लास के साथ बढ़ते तो हैं, परंतु एक सीमा पर पहुंच कर जो चातुर्दिक विस्फोट होता है, वही यथार्थ का केंद्रीय मर्म है।"[4] इसका मुख्य उद्देश्य इसमें भारती जी के द्वारा मध्यमवर्गीय जनमानस के दर्शन होते हैं। घर–परिवार में चारों तरफ विभिन्न घटनाओं का वर्णन मिलता है। लेखक ने अपनी भूमिका में स्वयं लिखा है– "मेरी निगाह में तो समाज की वर्तमान मान्यताएं और व्यवस्था एक बहुत बड़ा गुनाह है, क्योंकि वह आधुनिक तरुण के स्वस्थ विकास की हत्या कर देती है। अन्तर्विकारों और उलझनों से उबरकर एक स्वस्थ सामाजिक धरातल पर नहीं आ पाते३ ऐसी नैतिकता के खिलाफ विद्रोह करता हूं।"[5]

सूरज का सातवाँ घोड़ा का शाब्दिक अर्थ है "सूर्य के रथ को खींचने वाला सातवाँ घोड़ा।" यह उपन्यास एक रोमानी उपन्यास है जिसमें प्रेम भावना व्यक्त की गई है। भारतीय समाज में प्रेम भावना मानव जीवन में वैयक्तिक न रहकर आर्थिक स्थिति पर अधिक निर्भर हो गई है। आर्थिक ढांचा खोखला होने के कारण बेमेल विवाह, टूटते परिवार, प्रेम की समस्या समाज में उत्पन्न हो गई। मध्यमवर्गीय परिवार से संबंध होने के कारण भारती जी ने इन समस्याओं को करीब से देखा। असफल प्रेम व समाज में व्याप्त विषमता, निराशा ने भारती जी के मन को दुखी किया।

इस उपन्यास के कथानक में परिस्थितियों व बेचैनी से उत्पन्न संघर्ष के बीज दृष्टिगत होते हैं। यह उपन्यास प्रेम के अलग–अलग पहलुओं को पाठक के सामने उघाड़ता चलता है। भारती जी ने स्वयं तटस्थ रहने के लिए अपने उपन्यास में माणिक मल्ला नामक पात्र की सृष्टि की। यही पात्र सभी को कहानियां सुनाता है। ये कहानियां उससे संबंधित हैं। उसके जीवन में जितनी भी स्त्रियां आती हैं, उन सबके लिए उसके मन में आकर्षण उत्पन्न होता है। अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति का साहस उसमें उत्पन्न नहीं हो पाता। माणिक मल्ला को निम्न–मध्यवर्गीय समस्याओं को भुगतना पड़ता है। कहीं वह पलायन करता है, कहीं आर्थिक परिस्थितियां उसके मार्ग में बाधा बनती हैं। उसके हर प्रेम प्रसंग के बीच समाज का घिनौना चेहरा छिपा है। भारती जी ने उसे एक असफल प्रेमी के रूप में चित्रित किया है। वह जीवन में ठोकर खाकर सीखता है। "खैर! तो माणिक मल्ला बोले कि, जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूं तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढांचा हमारे मन पर इतना अजब–सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएं उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं।"[6]

इस उपन्यास पर माणिक मल्ला की तीन प्रेम कहानियों को सात दुपहरियों में दर्शाया गया है। यहां तीन स्त्रियों से जुड़ी घटनाओं का वर्णन किया गया है। ये तीन स्त्रियां हैं– जमुना, लिली और सत्ती। तीनों की कहानी में प्रेम की परिभाषा बदल जाती है। सूरज का सातवाँ घोड़ा उपन्यास की भूमिका श्री अज्ञेय जी ने लिखी है और इस भूमिका में अज्ञेय जी ने कहा है कि वे भारती जी को जीनियस नहीं कहेंगे क्योंकि किसी को जीनियस कह देना उसकी विशेषज्ञता को एक भारी भरकम शब्द देकर उड़ा देना है। जीनियस क्या है, हम जानते ही नहीं हैं, बस लक्षणों को ही जानते हैं। और अज्ञेय जी का मूल्यांकन है कि भारती जी में सब लक्षण विद्यमान हैं। प्रख्यात समकालीन लेखकों द्वारा अपने समकालीन लेखकों के लिए भूमिका या प्रस्तावना लिखना उस समय कम ही होता था, तथापि अज्ञेय जी ने भूमिका लिखना सहर्ष स्वीकार किया और भारती जी को हिंदी साहित्य का उगता हुआ सितारा बताया।

माणिक मुल्ला के माध्यम से भारती जी ने प्रेम में यथार्थवाद पर बल दिया है। माणिक मल्ला कहते हैं कि प्रेम आर्थिक परिस्थितियों से अनुशासित होता है और आंशिक रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रेम आर्थिक निर्भरता का ही दूसरा नाम है। हालाँकि बाद में माणिक मल्ला ने इस पर सफाई भी दी– "इस रूमानी प्रेम का महत्व है, पर मुसीबत यह है कि वह कच्चे मन का प्यार होता है, उसमें सपने, इन्द्रधनुष और फूल तो काफी मिकदार में होते हैं पर वह साहस और परिपक्वता नहीं होती जो इन सपनों और फूलों को स्वस्थ सामाजिक सम्बन्धों में बदल सके। नतीजा यह होता है कि थोड़े दिन बाद यह सब मन में उसी तरह गायब हो जाता है जैसे बादल की छाँह। आखिर हम हवा में तो नहीं रहते हैं और जो भी भावना हमारे सामाजिक जीवन की खाद नहीं बन पाती, ज़िन्दगी उसे झाड़–झंखाड़ की तरह उखाड़ फेंकती है।"[7]

उपन्यास में माणिक मल्ला के प्रेम संबंध या प्रेम की सीमा तक पहुँचते हुए संबंध तीन लड़कियों से दिखाए गए हैं। तीनों ही लड़कियों का स्वभाव और जीवन–यापन एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न था। जमुना भावनात्मक थी, लिली पढ़ी–लिखी थी लेकिन उसमें अपने आप से कदम उठाने की, निर्णय लेने की क्षमता न थी, और सत्ती एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर महिला थी जो कि बड़े फैसले स्वयं ले सकने में समर्थ थी। सत्ती के बारे में माणिक मल्ला का कहना था– "वह कुछ ऐसी भावनाएं जगाती थी जो ऐसी ही कोई मित्र संगिनी जगा सकती थी जो स्वाधीन हो, जो साहसी हो, जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशों के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न हो। जो सृजन और श्रम में, सामाजिक जीवन में उचित भाग लेती हो, अपना उचित देय देती हो।"[8]

इन तीनों पात्रों के माध्यम से भारती जी ने निम्न मध्यमवर्ग की सच्चाई को दिखाया है कि किसी का स्वभाव कैसा भी हो, अगर वह समाज से विद्रोह कर सकने में समर्थ नहीं है तो उसे समाज की तर्कशून्य मांगों को मानना ही होगा। गुनाहों का देवता के बाद आए भारती जी के इस उपन्यास को सराहा गया था। कुछ कुछ जगहों पर गुनाहों का देवता की रूमानी शैली देखी जा सकती है, जहाँ पर भारती जी कथानक को धीरे–धीरे प्रकृति से शुरू करके मनुष्यों पर खींच लाते हैं और अंत में उसे फिर ले जाकर प्रकृ ति पर छोड़ देते हैं।

स्त्री चित्रण :– धर्मवीर भारती ने अपने उपन्यासों में नारी का चित्रण विभिन्न रूपों में किया है– प्रेमिका, पत्नी, बहन, सखी आदि के रूप में। प्रेमिका रूपी नारी का चित्रण उन्होंने अत्यंत सजीव और मार्मिक ढंग से उपन्यास गुनाहों का देवता में, पात्र सुधा के माध्यम से, अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में किया है। सुधा की शादी हो जाने के बाद वह अंतिम बार चंदर से मिलने आती है– "सुधा कुछ बोली नहीं। आंचल से आँसू पोंछती ज़मीन पर बैठ गई। और गले से एक बेले का हार उतारा... मुझे किसी का डर नहीं। तुम जो दंड दे चुके हो, इससे बड़ा दंड भगवान भी नहीं दे सकेंगे।''[9] दरअसल, भारती ने नारीत्व के जिन मॉडलों को चित्रित किया है, वे आज की धर्मभीरु महिलाएं भी हो सकती हैं। इसका सीधा अर्थ है कि तब से लेकर अब तक महिलाओं की स्थिति और छवि में बहुत अधिक बदलाव नहीं आया है– बस पृष्ठभूमि अलग हो गई है। वास्तव में यह सोच हमारी सामाजिक व्यवस्था की देन है, जिसमें नारी को चारित्रिक संस्कारों के नाम पर बंधनों में जकड़ा जाता है। इस उपन्यास में पात्र सुधा के अनुसार– "हिंदू नारी इतनी असहाय होती है, उसे पति से, पुत्र से इतना लांछन, अपमान और तिरस्कार मिलता है कि पूजा–पाठ न हो तो वह पशु बन जाए।''[10] हम देखते हैं कि किस प्रकार कभी परंपरा, तो कभी चारित्रिक संस्कारों के नाम पर स्त्रियों की स्वतंत्रता का हनन किया जाता है। उपन्यास में पम्मी के माध्यम से समाज में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण को उजागर करते हुए लिखा है– "शादी और तलाक के बाद इस नतीजे पर पहुँची कि 14 बरस से 35 बरस तक लड़कियों को बहुत अनुशासन में रखना चाहिए।"[11]

तीन अलग–अलग पृष्ठभूमियों से आईं तीन प्रमुख महिला पात्र– सुधा, पम्मी और बिनती को लेखक ने समाज में ही नहीं, बल्कि स्वयं के मन में प्रचलित रूढ़ियों को दर्शाने के लिए गढ़ा है– विशेषकर उसके अवचेतन में, जिसके बारे में वह स्वयं अनभिज्ञ है, क्योंकि वह इन लैंगिक रूढ़ियों की आलोचना करता प्रतीत नहीं होता, बल्कि उन्हें स्वीकार कर आगे बढ़ाता है।

उपन्यास में बिनती, नारी मुक्ति की आवाज़ को मुखर करती हुई कहती है– "आख़री नारी का भी स्वाभिमान है। मेरी माँ मुझे बचपन से कुचलती रही, मैंने तुम्हें दीदी से भी बढ़कर माना। तुम भी ठोकरें लगाने से बाज़ नहीं आए, फिर भी मैं सब सहती रही। अब मैं विरोध करना, विद्रोह करना सीख गई हूँ। जीवन में स्नेह की जगह है, लेकिन स्वाभिमान भी कोई चीज़ है।''[12] यहाँ इन तीन प्रकार की "युवा" महिला पात्रों की पृष्ठभूमि को स्थापित करने से स्पष्ट होता है कि वे एक सच्चे नायक चंदर के प्रेम के लिए उपलब्ध हैं, जो स्वयं लेखक के दूसरे व्यक्तित्व जैसा प्रतीत होता है– जिसे कई समीक्षकों ने "हम में से एक" के रूप में निरूपित किया है। इसी तरह, सूरज का सातवाँ घोड़ा उपन्यास की 'पहली दुपहरी' में हमारे सामने जमना का चरित्र आता है। जमना इस उपन्यास की नायिका है– पंद्रह वर्ष की, हँसमुख और स्वभाव से भी मधुर। लड़की की समय पर शादी होना भारतीय समाज की मान्यता है। जैसे ही लड़की सयानी होती है, माता–पिता को उसके विवाह की चिंता सताने लगती है। जमना इस उपन्यास में प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत की गई है। पहले वह पड़ोसी तन्ना की प्रेमिका थी; जमना भी उससे प्रेम करती थी। लेकिन आर्थिक अभाव यानी दहेज न दे पाने के कारण तन्ना और जमना का विवाह नहीं हो सका। जमना अपनी परिस्थितियों से समझौता कर लेती है। उसके नैतिक पतन का उत्तरदायी कौन है? हमारा समाजिक ढाँचा और जातिवादी परंपराएँ। यहाँ जमना का अपने भाग्य से समझौता पाठक के मन में उसके प्रति सहानुभूति

जगाता है। दहेज की विकराल समस्या ने समाज की अनेक लड़कियों का जीवन नष्ट किया है। इसी कारण बेमेल विवाह और अनैतिक संबंध जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

मणिक मुल्ला की दूसरी कहानी लिली से जुड़ी है। लिली पिता–विहीन, संपन्न माँ की इकलौती संतान है। लिली और मणिक मुल्ला एक–दूसरे को चाहते हैं, किंतु अव्यक्त भावनाओं के कारण लिली का विवाह तन्ना से हो जाता है। लिली, तन्ना से अधिक शिक्षित होने के कारण उनके बीच सामंजस्य नहीं बन पाता। लिली के व्यक्तित्व पर नई शिक्षा का प्रभाव है। प्रेम के अभाव के कारण दोनों अधूरा जीवन जीते हैं। तन्ना को लगता है कि लिली उसे नीचा दिखाना चाहती है। तन्ना के दब्बू स्वभाव के कारण लिली उसे छोड़कर चली जाती है– "तन्ना की ज़िंदगी अजब सी थी। पत्नी ज़्यादा पढ़ी–लिखी थी, ज़्यादा धनी घर की थी, ज़्यादा रूपवती थी, हमेशा ताने दिया करती थी।"[13]

उपन्यास की तीसरी महिला पात्र सत्ती है, जिसका संघर्षशील और स्वतंत्र व्यक्तित्व इस उपन्यास में उभारा गया है। वह एक अनाथ लड़की है, जो शिक्षा के अभावों से जूझते हुए भी सुलभ गुणों से युक्त है। उसका पालन–पोषण ठाकुर नामक व्यक्ति करता है, जिसे सत्ती चाचा कहकर पुकारती थी। वह साबुन का व्यापार करती है और अपने पास एक चाकू रखती है। मणिक मुल्ला और सत्ती एक–दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। वह मणिक की पढ़ाई में सहायता करना चाहती है। उसके चाचा की नीयत में खोट आ जाने से वह सत्ती को महेसर दलाल से पैसे लेकर उसके पास भेजने को तैयार हो जाता है। सत्ती घर से भागकर मणिक से सहायता मांगती है, किंतु मणिक कायरता से उसके चाचा को बुला लेता है और वह उसे पकड़वा देता है। अंत में वह भिखारिन के रूप में दिखाई देती है। एक संघर्षशील नारी, जिसमें समाज से विद्रोह करने का साहस था, उसकी ऐसी दशा के लिए कौन ज़िम्मेदार है? मेहनत और ईमानदारी से जीवन जीने के बावजूद उसकी हालत दरिद्र स्त्री की थी। उसे हर ओर से धोखा ही मिला, जिसके कारण वह हताश, निराश और विषादपूर्ण जीवन जीने को विवश हुई।

निष्कर्ष :– हम कह सकते हैं कि धर्मवीर भारती का नारी के प्रति दृष्टिकोण सदैव सम्मानपूर्ण रहा है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में हमें नारी के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। सूरज का सातवाँ घोड़ा आज़ाद भारत के मध्यवर्गीय जीवन को उद्घाटित करने वाली एक समर्थ रचना है। विचार को सृजनात्मक रूप में प्रस्तुत करने की चुनौती के बीच इसका शिल्प आकार पाता है। यही कारण है कि प्रायः सभी आलोचकों ने इसके शिल्प–कौशल की प्रशंसा की है।

शोषण और प्रवचन के नए दौर में हिंदी लेखक भी नए सृजन के औज़ारों के साथ हमारे बीच उपस्थित होता है। धर्मवीर भारती ऐसे ही रचनाकार हैं। सूरज का सातवाँ घोड़ा में उन्होंने निजी प्रसंगों का सामाजिकरण किया है। व्यक्ति और व्यवस्था की यात्रा करते हुए उन्होंने समाज की दूरगामी खामियों का पर्दाफाश किया है। उपन्यास की भाषा अत्यंत सरल, प्रवाहमयी और काव्यात्मक है तथा पात्रों की गहराई और मनोविज्ञान को बारीकी से उकेरा गया है। धर्मवीर भारती ने अपने उपन्यास गुनाहों का देवता और सूरज का सातवाँ घोड़ा दोनों में प्रेम के विविध स्वरूपों और जीवन के विभिन्न त्रासद पहलुओं को उकेरा है। ये उपन्यास हिंदी साहित्य के प्रमुख उपन्यासों में गिने जाते हैं, जिनमें समकालीन समस्याओं– जो आज भी प्रासंगिक हैंकृका अत्यंत सुंदर ढंग से चित्रण किया गया है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. उपन्यास का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण दृ 1996, पृष्ठ सं. 90।
2. राजेंद्र यादव के अठारह उपन्यास, राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज, 2008, पृष्ठ सं. 78।
3. कैलाश जोशी : धर्मवीर भारती का उपन्यास साहित्य, 1673दृ74, चिन्मय प्रकाशन, चौराहा जयपुर, पृष्ठ सं. 18।
4. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना, पुष्पा भारती, वाणी प्रकाशन, 2006, पृष्ठ सं. 198।
5. त्यागी साधना, धर्मवीर भारती समग्र, वैभव प्रकाशन, रायपुर, 2008, पृष्ठ सं. 147, पैरा 2।
6. सूरज का सातवां घोड़ा, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–110003, पृष्ठ सं. 38।
7. वही, पृष्ठ सं. 67।
8. वही, पृष्ठ सं. 89।
9. डॉ. चंद्रकांत वांडिवडेकर, धर्मवीर भारती ग्रंथावली, पृष्ठ सं. 146–147।
10. धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, ज्ञानपीठ प्रकाशन, क्लासिक एडिशन, 2013, पृष्ठ सं. 229।
11. वही, पृष्ठ सं. 63।
12. वही, पृष्ठ सं. 188।
13. वही,, पृष्ठ सं. 45।

आधुनिक भारत में श्रमिक स्त्रियों की सामाजिक स्थिति : संघर्ष, संवेदना और समाधान की तलाश

डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चाडसणिया*

भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका सदियों से चर्चा और विमर्श का विषय रही है। इतिहास के पन्नों में एक ओर उसे माता, शक्ति और देवी के रूप में आदर और पूजनीयता का स्थान दिया गया, वहीं दूसरी ओर व्यवहारिक जीवन में वह शोषण, उपेक्षा और भेदभाव की शिकार बनी रही। यह द्वैध दृष्टिकोण आज भी कायम है, विशेषकर तब जब हम श्रमिक स्त्रियों के जीवन पर गौर करते हैं। वे स्त्रियाँ जो खेतों में काम करती हैं, ईंट–भट्टों पर मेहनत करती हैं, निर्माण स्थलों पर ईंट–पत्थर ढोती हैं या घरेलू सहायिकाओं के रूप में रोज़ी–रोटी कमाती हैं– उनका जीवन एक निरंतर संघर्ष की कहानी कहता है। इन महिलाओं को न तो उचित मज़दूरी मिलती है, न ही कार्यस्थल पर सम्मानजनक व्यवहार। उन्हें सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ और शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। इसके अलावा पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियाँ भी उनके कंधों पर होती हैं, जिन्हें वे बिना किसी शिकायत के निभाती हैं। मानसिकता की बेड़ियाँ, अवसरों की असमानता और संसाधनों की कमी उनके विकास में बाधक बनी हुई हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की छवि :– भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक सोच इतनी गहराई से जमी हुई है कि अधिकांश घरों में आज भी लड़की के जन्म को बोझ माना जाता है। स्त्री को निर्णय लेने का अधिकार, स्वतंत्रता और गरिमा केवल कागज़ी दस्तावेज़ों तक सीमित रह गई है। श्रमिक स्त्रियों के संदर्भ में यह सोच और अधिक कठोर हो जाती है, जहाँ उन्हें दोहरा संघर्ष झेलना पड़ता है– एक घर में और दूसरा बाहर की दुनिया में। ऐसी महिलाएं सुबह घर के कामकाज संभालती हैं, बच्चों की देखभाल करती हैं और फिर श्रम स्थल पर जा कर शारीरिक श्रम करती हैं। इसके बावजूद उन्हें निर्णय लेने, सम्मान पाने या सामाजिक न्याय की सुविधा नहीं मिलती। यह स्थिति बताती है कि केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक सोच और व्यवहार में बदलाव आवश्यक है।

शिक्षा और स्त्री सशक्तिकरण :– शिक्षा न केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम है, बल्कि यह व्यक्ति को सोचने, समझने और अपने जीवन को बेहतर बनाने की क्षमता प्रदान करती है। जब हम स्त्री सशक्तिकरण की बात करते हैं, तो उसमें शिक्षा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। एक शिक्षित स्त्री अपने जीवन के निर्णय खुद लेने में सक्षम होती है। वह केवल अपने लिए नहीं, बल्कि अपने परिवार, समाज और देश के विकास में भी सक्रिय भागीदारी निभाती है। विशेष रूप से श्रमिक वर्ग की महिलाओं के लिए शिक्षा एक ऐसा प्रकाशपुंज है– जो उन्हें अंधकार से उजाले की ओर ले जाता है।

जब एक श्रमिक स्त्री शिक्षित होती है, तो वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होती है। वह यह जानने लगती है कि उसे किस तरह के शोषण का विरोध करना है, किस तरह अपने स्वास्थ्य, परिवार और बच्चों के भविष्य को सुरक्षित बनाना है। वह अपने बच्चों, विशेषकर बेटियों को भी शिक्षा देने की प्रेरणा बनती है। इस प्रकार, एक शिक्षित स्त्री कई पीढ़ियों को सशक्त बना सकती है। शिक्षा से महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने का अवसर मिलता है। वे केवल घरेलू कामों तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि विभिन्न प्रकार के रोजगारों में भाग ले सकती हैं। इससे उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलती है, जो सशक्तिकरण की एक मूलभूत आवश्यकता है। जब महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती हैं, तो वे पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर भी निर्णय लेने की स्थिति में होती हैं। लेकिन दुःख की बात यह है कि आज भी श्रमिक वर्ग की अनेक महिलाएं शिक्षा से वंचित हैं। इसका एक बड़ा कारण सामाजिक रूढ़ियाँ और परंपराएं हैं, जो बालिकाओं की शिक्षा को महत्व नहीं देतीं। आज भी ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में यह सुनने को मिलता है– "लड़कियों को पढ़ाने से क्या होगा?", "शादी तो करनी ही है।" ये विचारधाराएँ लड़कियों को स्कूल जाने से रोकती हैं।

सरकार ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएं चलाई हैं, जैसे दृ 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना' आदि। लेकिन इन योजनाओं का लाभ तभी मिल सकेगा, जब समाज की सोच में परिवर्तन आएगा और लोगों को यह समझ में आएगा कि लड़कियों को शिक्षित करना केवल उनका अधिकार ही नहीं, बल्कि समाज की उन्नति का मार्ग है। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि हम शिक्षा को हर बालिका तक पहुँचाएँ, विशेष रूप से उन बालिकाओं तक जो श्रमिक परिवारों से आती हैं। इसके लिए

*** विभागाध्यक्ष–समाजशास्त्र, सरकारी कला महाविद्यालय, बेचराजी।**

सरकार, समाज और प्रत्येक नागरिक को मिलकर प्रयास करना होगा। जब हर लड़की शिक्षित होगी, तभी वह आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और सशक्त बन सकेगी।

आर्थिक विषमता और बाल अधिकार :– भारत समेत पूरी दुनिया में अमीर और गरीब के बीच की खाई दिन–ब–दिन गहराती जा रही है। इसका सबसे गहरा प्रभाव समाज के उस वर्ग पर पड़ता है, जो पहले से ही आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ा है दृ विशेषकर श्रमिक परिवारों और उनके बच्चों पर। एक ओर शहरी संपन्न वर्ग के बच्चे अंतरराष्ट्रीय स्कूलों में शिक्षा पाते हैं, आधुनिक तकनीक से जुड़ते हैं, और सुरक्षित व समृद्ध वातावरण में पलते हैं, वहीं दूसरी ओर गरीब तबके के बच्चे बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित हैं। यह विषमता न केवल सामाजिक असंतुलन को जन्म देती है, बल्कि बाल अधिकारों के उल्लंघन का भी गंभीर प्रश्न खड़ा करती है।

बाल अधिकारों का अर्थ है– प्रत्येक बच्चे को शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, पोषण और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार। भारत ने संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार संधि (न्छब्त्) पर हस्ताक्षर कर इन अधिकारों को मान्यता दी है। लेकिन हकीकत यह है कि देश के करोड़ों बच्चे आज भी बाल मजदूरी, कुपोषण, शिक्षा से वंचन, बाल विवाह और शारीरिक–मानसिक शोषण जैसे अनेक संकटों से जूझ रहे हैं। आर्थिक विषमता इन सभी समस्याओं की जड़ में है। श्रमिक महिलाएं जो दिन–भर खेतों, निर्माण स्थलों या कारखानों में काम करती हैं, उन्हें न तो पर्याप्त मजदूरी मिलती है और न ही सामाजिक सुरक्षा। ऐसी स्थिति में वे अपने बच्चों को न तो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दिला पाती हैं, न ही सही पोषण या चिकित्सा। कई बार तो उन्हें बच्चों को साथ काम पर ले जाना पड़ता है, जहाँ वे खुले में, धूल–मिट्टी और जोखिम भरे वातावरण में पलते हैं। यह बच्चों के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए बेहद हानिकारक है। यह स्थिति केवल आर्थिक संकट नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक अन्याय और मानवाधिकार का गंभीर उल्लंघन है। यदि हम एक न्यायपूर्ण, समतामूलक समाज की परिकल्पना करते हैं, तो हमें सबसे पहले बच्चों के अधिकारों की रक्षा करनी होगी, विशेषकर वंचित वर्ग के बच्चों की। इसके लिए न केवल सरकार, बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग को जिम्मेदारी निभानी होगी।

सरकार को चाहिए कि वह श्रमिक परिवारों की आय बढ़ाने के उपाय करे, जैसे दृ न्यूनतम मजदूरी में वृद्धि, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन, महिलाओं के लिए सुरक्षित व बाल–सुलभ कार्यस्थल की व्यवस्था। साथ ही, बच्चों के लिए आंगनवाड़ी, पोषण कार्यक्रम, निःशुल्क शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक सशक्त व सुलभ बनाया जाए।

धार्मिक दान और सामाजिक वास्तविकता :– भारत एक धार्मिक देश है, जहाँ लोग आस्था और श्रद्धा से विभिन्न धार्मिक स्थलों पर दान–दक्षिणा चढ़ाते हैं। मंदिरों में सोने–चाँदी की मूर्तियाँ, मस्जिदों में कीमती चादरें, गुरुद्वारों में करोड़ों रुपये की लंगर सेवा दृ यह सब दर्शाता है कि ईश्वर के प्रति भक्ति लोगों के जीवन का बड़ा हिस्सा है। लेकिन इसी समाज में करोड़ों लोग भूखे पेट सोते हैं, बच्चे शिक्षा से वंचित रहते हैं और श्रमिक महिलाएं दो वक्त की रोटी के लिए दिन–रात मेहनत करती हैं। धार्मिक दान का उद्देश्य केवल ईश्वर को प्रसन्न करना नहीं, बल्कि समाज के जरूरतमंदों की सहायता करना भी होना चाहिए। यदि हम सच में धार्मिक हैं, तो हमें यह समझना होगा कि हर भूखा इंसान, हर पीड़ित महिला और हर अनपढ़ बच्चा भी उसी ईश्वर की संतान है, जिसकी हम पूजा करते हैं। श्रमिक वर्ग की महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, और सामाजिक सुरक्षा दिलाना दृ यह न केवल सामाजिक उत्तरदायित्व है, बल्कि वास्तविक भक्ति भी है। जिस प्रकार हम मूर्तियों को स्नान कराते हैं, दीप जलाते हैं, उसी भावना से यदि हम किसी गरीब परिवार के बच्चे को स्कूल भेजें, तो वह सेवा कहीं अधिक सार्थक होगी।

मीडिया की भूमिका :– मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है क्योंकि वह समाज की वास्तविक तस्वीर सामने लाने का कार्य करता है। लेकिन आज का मीडिया बड़े पैमाने पर बाज़ारवाद, विज्ञापन और टीआरपी की दौड़ में उलझकर अपनी मूल भूमिका से भटकता जा रहा है। ग्लैमर, राजनीति और सनसनीखेज खबरें प्राथमिकता बन गई हैं, जबकि श्रमिक वर्ग, विशेषकर श्रमिक महिलाओं की समस्याएं, संघर्ष और उपलब्धियां मुख्यधारा की मीडिया में लगभग गायब हैं। टेलीविजन चैनलों पर सेलिब्रिटी की शादी, फिल्मी गॉसिप और नेताओं की बयानबाज़ी को घंटों कवरेज दी जाती है, लेकिन एक श्रमिक माँ जो दिन–रात मेहनत कर अपने बच्चों का भविष्य संवार रही है, उसकी कहानी न कहीं सुनाई देती है, न दिखाई जाती है। यह न केवल मीडिया की संवेदनहीनता को दर्शाता है, बल्कि समाज की प्राथमिकताओं पर भी प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। यदि मीडिया सच में जनपक्षीय और जिम्मेदार भूमिका निभाए, तो वह समाज में बड़ा परिवर्तन ला सकता है। श्रमिक महिलाओं की समस्याओं को उजागर कर वह नीतियों को प्रभावित कर सकता है, समाज में संवेदना जगा सकता है और वंचित वर्ग को आवाज़ दे सकता है।

राजनीति, वोट बैंक और स्त्रियों का भविष्य :– भारतीय लोकतंत्र में राजनीति का मूल उद्देश्य जनसेवा होना चाहिए, लेकिन वर्तमान समय में यह अधिकतर सत्ता प्राप्ति का साधन बन गई है। चुनावों के दौरान सभी

राजनीतिक दल महिला सशक्तिकरण की बातें करते हैं, बड़े–बड़े वादे किए जाते हैं, लेकिन जैसे ही चुनाव खत्म होते हैं, ये वादे घोषणा पत्रों और भाषणों तक सिमट कर रह जाते हैं। विशेषकर श्रमिक वर्ग की स्त्रियाँ, जो पहले से ही सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित हैं, उन्हें राजनीतिक लाभों से बहुत कम फायदा होता है। राजनीति में वोट बैंक की गणना करते समय महिलाओं की संख्या को जरूर गिना जाता है, पर उनकी वास्तविक समस्याओं– जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, सुरक्षा, और रोजगार– को गंभीरता से नहीं लिया जाता। योजनाएं बनती हैं, लेकिन उनका क्रियान्वयन अक्सर भ्रष्टाचार, अनदेखी और लापरवाही की भेंट चढ़ जाता है। यदि सच में महिला सशक्तिकरण को हासिल करना है, तो राजनीतिक दलों को केवल वादे नहीं, बल्कि ठोस कार्य करने

समाधान और भविष्य की दिशा :– श्रमिक महिलाओं की स्थिति में सुधार केवल सहानुभूति से नहीं, बल्कि ठोस और समग्र प्रयासों से संभव है। इसके लिए सरकार, समाज, गैर–सरकारी संस्थाएँ (छळव्े) और मीडिया को मिलकर कार्य करना होगा ताकि एक सशक्त और समानतामूलक भविष्य की दिशा तय की जा सके।

1. **शिक्षा का व्यापक विस्तार :–** श्रमिक महिलाओं और उनकी बेटियों के लिए मुफ्त, गुणवत्तापूर्ण और सुलभ शिक्षा अनिवार्य है। इसके लिए विशेष आवासीय विद्यालय, छात्रवृत्ति योजनाएँ और सामुदायिक शिक्षण केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए।
2. **कौशल विकास और स्वरोजगार :–** महिलाओं को हस्तकला, सिलाई, बुनाई, फूड प्रोसेसिंग जैसे कार्यों में प्रशिक्षण देकर स्वरोजगार की दिशा में बढ़ाया जा सकता है। इससे वे आत्मनिर्भर बनेंगी और आर्थिक रूप से सशक्त होंगी।
3. **स्वास्थ्य सेवाएँ और पोषण :–** मोबाइल क्लीनिक, नियमित टीकाकरण, और पोषण केंद्रों के माध्यम से मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है। इससे श्रमिक महिलाओं की कार्यक्षमता और उनके बच्चों का भविष्य सुरक्षित होगा।
4. **सुरक्षा और कानूनी सहायता :–** कार्यस्थलों पर यौन शोषण से सुरक्षा, महिला हेल्पलाइन, और निःशुल्क कानूनी सहायता महिलाओं को आत्मविश्वास देती है और उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ने का बल देती है।
5. **मीडिया और समाज की भागीदारी :–** श्रमिक स्त्रियों की कहानियाँ, संघर्ष और उपलब्धियाँ जब मीडिया में स्थान पाती हैं, तो समाज में सोच का परिवर्तन आता है और उनकी आवाज़ को पहचान मिलती है।
6. **समावेशी नीति निर्माण :–** नीतियाँ बनाते समय श्रमिक महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित करनी चाहिए, ताकि वे स्वयं अपनी ज़रूरतें और समाधान प्रस्तुत कर सकें।

निष्कर्ष :– श्रमिक स्त्रियाँ केवल मजदूरी करने वाली नहीं होतीं, वे समाज की नींव रखती हैं। उनकी मेहनत से शहर बसते हैं, खेतों में फसलें लहलहाती हैं और नई पीढ़ियाँ पनपती हैं। वे दिन–रात कठिन परिस्थितियों में काम करती हैं, लेकिन अक्सर उनके संघर्ष, पीड़ा और योगदान को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। उनका जीवन केवल श्रम नहीं, एक जीवंत उदाहरण है धैर्य, हिम्मत और आत्मबल का। ऐसे में उनका सम्मान करना और उन्हें बराबरी का स्थान देना हमारा नैतिक और सामाजिक कर्तव्य है।

सन्दर्भ सूची :–

1. भारत सरकार, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय – "भारत में महिला सशक्तिकरण की स्थिति रिपोर्ट"
2. यू.एन.डी.पी. रिपोर्ट – "जेंडर इनइक्वालिटी इंडेक्स"
3. सुमित्रा घोष – भारत में स्त्री संघर्ष की सामाजिक संरचना, प्रकाशनः राष्ट्रज्ञान संस्थान
4. मीडिया स्टडीज – "न्यूज मीडिया में महिलाओं की छवि", सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज
5. डॉ. वीणा पाणिग्रही – श्रमिक महिलाओं की सामाजिक स्थिति, पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
6. डॉ. वीणा मजूमदार, "भारतीय समाज में स्त्री और पितृसत्ता", स्त्री अध्ययन शोध पत्रिका, खंड 5, अंक 2, 2018।
7. डॉ. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष और भारत, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015।
8. सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकॉनॉमी (CMIE) – "महिलाओं की बेरोजगारी और श्रम भागीदारी", रिपोर्ट 2023।
9. ओक्सफैम इंडिया रिपोर्ट – "भारत में आर्थिक विषमता", 2023. https://www.oxfamindia.org
10. नरेश कुमार, "मीडिया में आम महिला की अनुपस्थिति", जनसंचार समीक्षा, अंक 17, 2020।
11. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5)– "भारतीय महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति", 2019–21A https://rchiips.org/nfhs

৪০★০৪

जनजातीय समाज पर सोशल मीडिया का प्रभाव
(जशपुर जिला के सन्दर्भ में)

सुनील कुमार साहू*

शोध सार : इस शोध का उद्देश्य सोशल मीडिया का आदिवासी समाज पर पड़ने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का विभिन्न परिदृश्य से पता लगाना है। इसके लिए छत्तीसगढ़ के आदिवासी बाहुल्य जशपुर जिला का चयन किया हैं और प्राथमिक डेटा प्राप्त करने के लिए इन्ही जिला में निवास करने वाले ग्रामीण एवं शहरी इलाकों के लोगों से प्रश्नावली के माध्यम से प्राथमिक डेटा एकत्र किया। इस अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं तथा प्राप्त आकड़ों का माइक्रोसॉफ्ट वर्ड के टूल्स चार्ट एवं सारणी का उपयोग करके विश्लेषण किया है। अध्ययन से यह ज्ञात होता हैं की अधिकांश 84% उत्तरदाताओं ने यह माना की सोशल मीडिया का उनके जीवन पर दोनों (सकारात्मक एवं नकारात्मक) प्रभाव पड़ा हैं।

मुख्य शब्द : जनजातीय समुदाय, आदिवासी, सोशल मीडिया, प्रभाव, जशपुर, सरगुजा।

प्रस्तावना : सोशल मीडिया सूचना प्रसारण का एक प्रभावशील माध्यम हैं, जिसका प्रयोग लगभग समाज का हर वर्ग करता हैं। सोशल मीडिया एक से अधिक ऑनलाइन एप्स का एक समूह हैं, जिनका उपयोग लोग अपने पसंद के अनुसार करते हैं, जिसमे शामिल हैं व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, प्रिंटरेस्ट, स्नैपचैट आदि ये सभी टूल्स का इस्तेमाल करके लोग प्रभावशील तरीके से अपनी विचारों एवं प्रतिभाओं को लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। सोशल मीडिया जहा एक ओर समाज में नए–नए प्रतिभा को सामने लाता हैं, सामाजिक जागरूकता, रचनात्मकता, व्यावसायिक कौशल सिखने में मदद करता हैं वही साइबर क्राइम, दंगे–फसाद, अफवाह आदि को भी बढ़ावा देता हैं। सोशल मीडिया लोगों को उनके विचार, अनुभव, एवं व्यक्तिगत सूचना साझा करने का एक मंच है। सोशल मीडिया का प्रयोग लोग व्यक्तिगत, व्यावसायिक, और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर सकता है। आदिवासी समाज के लोग भी इन सोशल मीडिया टूल्स का प्रयोग कर समाज में अपना बात रखते हैं, कई सकारात्मक आन्दोलन में भी सोशल मीडिया ने इन समाज का योगदान दिया हैं जिससे उनकी बात आम जनता से लेकर राजनेताओं तक पहुची हैं। सोशल मीडिया से समाज में आज अनेकों परिवर्तन आया हैं जिसमे सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार के प्रभाव दिखाई देते है।

अध्ययन का क्षेत्र : इस अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के सरगुजा संभाग में अवस्थित आदिवासी बाहुल्य जशपुर जिला का चयन किया गया हैं। जहाँ विभिन्न प्रकार के आदिवासी समाज के लोग निवास करते हैं, जिससे अध्ययन हेतु विभिन्न प्रकार के जनजातीय समुदाय तक पहुँच संभव हो सका। इस अध्ययन का क्षेत्र सम्पूर्ण जशपुर जिला हैं हमने यहाँ के लगभग सम्पूर्ण तहसील से तहसील–वार नमूना का चयन किया हैं।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत शोध के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- जनजातीय समाज पर सोशल मीडिया के पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
- जनजातीय समुदाय के युवा वर्ग में सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्यन करना।
- सोशल मीडिया का जनजातीय युवा वर्ग के व्यक्तित्व विकास में योगदान का अध्ययन करना।
- जनजातीय समुदाय पर सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव का अध्ययन करना।
- सोशल मीडिया का दैनिक समस्याओं के समाधान में मदद का अध्ययन करना।

सम्बंधित साहित्य का पुनरावलोकन : रश्मि द्विवेदी एवं डॉ. ममता बाजपेयी (2023) ने ' सोशल मीडिया का समाज पर प्रभाव' में इन्होने बताया की अधिकांश समाज के लोग सोशल मीडिया का प्रयोग उपयोग करते है, जिनका उन पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ता है। इन्होने अपने शोध में यह भी बताया की लोग कैसे इसका गलत प्रयोग कर साइबर क्राइम एवं आतंकवाद को भी बढ़ावा दे रहे है। इन्होने यह सुझाव भी दिया

***सहायक प्राध्यापक (अतिथि) पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विभाग, शासकीय राम भजन राय एन. ई. एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जशपुर नगर (छ.ग.)**

की लोगों को सोशल मीडिया के प्रति जागरूक करना चाहिए एवं इसके सकारात्मक पक्ष पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

उपाध्याय, डॉ. विजय प्रकाश (2016) ने अपने शोध पत्र "सोशल मीडिया का समाज पर प्रभाव"में कहा की सोशल मीडिया भावों की अभिव्यक्ति का एक अच्छा माध्यम है, इसके द्वारा अनेकों सकारात्मक आन्दोलन में भी प्रभाव पड़ा है और यह लोगो को जागरूक बनाता हैं। इन्होने आगे बताया की समाज पर सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ा हैं।

डॉ. प्रतिभा देवी (2023) ने अपने शोध पत्र में 'युवाओं पर सोशल मीडिया के प्रभाव पर एक अध्ययन' किया है। इन्होने प्रश्नावली के माध्यम से प्राथमिक डेटा एकत्र किया, उसके बाद प्राप्त सूचना का विशलेषण किया। इन्होने पाया की युवाओं में सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ा है। 48% उत्तरदाता ने यह माना की सोशल मीडिया का उन पर उच्च स्तर का प्रभाव पड़ा हैं, 46% उत्तरदाताओं पर मध्यम स्तर का प्रभाव पड़ा हैं एवं 6% उत्तरदाताओं पर निम्न स्तर का प्रभाव पड़ा हैं।

सोम देव (2022) ने अपने शोध आलेख ' समाज और व्यवसाय पर सोशल मीडिया का प्रभाव : एक समीक्षा' में पाया की सोशल मीडिया ने जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया हैं, कोरोना महामारी के समय सूचना प्रसार करके सोशल मीडिया ने कई जान बचाई हैं। सोशल मीडिया के कई सकारात्मक भूमिका का इन्होने इस अध्ययन में बताया, साथ ही गलत समाचार एवं साइबर क्राइम जैसे विभिन्न नकारात्मक प्रभाव का समाज में पड़ने वाले प्रभाव का उल्लेख किया हैं। इन्होने अपने शोध में बताया है की समाज प्रतिदिन अपने काम के लिए विभिन्न सोशल मीडिया पर निर्भर हो रहे है, युवा समाज को गलत गतिविधियों की ओर भी ले कर जा रहा है इसलिए इन्होने सलाह दिया की लोग सोशल मीडिया के सकारात्मक पहलूओं को अपनाएं और नकारात्मक प्रभावों से बचने का प्रयास करें।

शोध प्रविधि : यह अध्ययन मुख्यतः वर्णनात्मक अनुसन्धान विधि पर आधारित हैं, इस अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं, इसके लिए सर्वप्रथम शोध के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, गूगल फॉर्म से एक बंद प्रकार का प्रश्नावली तैयार किया गया, फिर उसे विभिन्न सोशल मीडिया (ईमेल, व्हाट्सएप आदि) के माध्यम से जशपुर के लोगों में वितरित किया गया। न्यायदर्श चयन हेतु व्यापक न्यायदर्श विधि का प्रयोग किया गया हैं ,उसके उपरांत प्राप्त आकड़ों का विश्लेषण कर सुनियोजित तरीके से सारणी, ग्राफ माइक्रोसॉफ्ट वर्ड के टूल्स बार द्वारा बनाया।

डेटा विश्लेषण और व्याख्या

ग्राफ 1 : लिंग–वार उत्तरदाताओं का विवरण

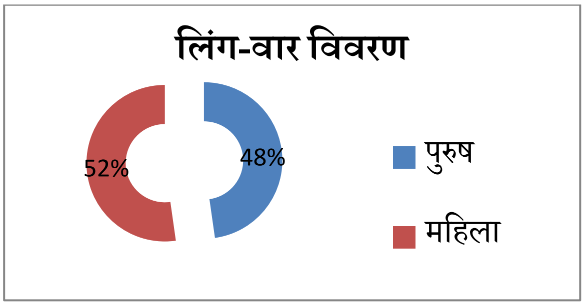

ग्राफ 2 : जनजातीय समुदाय का विवरण वर्ग–वार

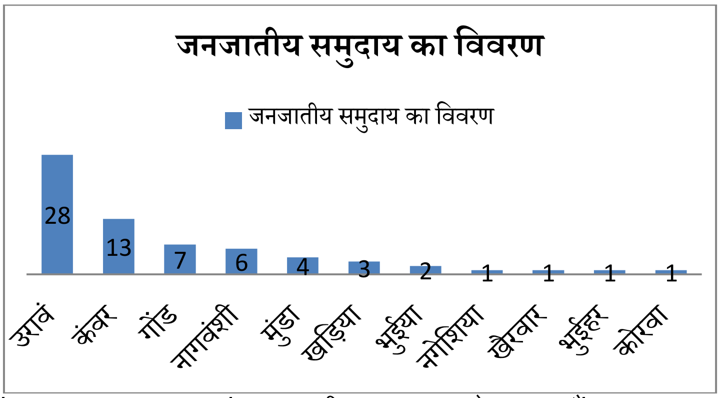

ग्राफ 2 से यह ज्ञात होता हैं की इस अध्ययन में 22 उत्तरदाता उरावं जनजातीय समुदाय से आता हैं, 13 कंवर, 7 गोंड, 6 नागवंशी, 4 मुंडा, 3 खड़िया, 2 भुईयाँ, और 1–1 की संख्या में क्रमशः चार जनजातीय समुदाय नगेशिया, खैरवार, भुईहर और कोरवा जनजाति के लोग शामिल हैं। कुल 67 उत्तरदाताओं ने इस अध्ययन में अपनी प्रतिक्रिया प्रदान किया हैं।

ग्राफ 3% सोशल मीडिया का प्रभाव

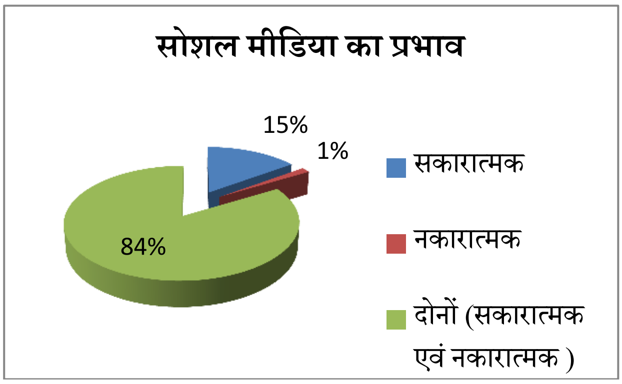

ग्राफ 3 % सोशल मीडिया का सकारात्मक प्रभाव

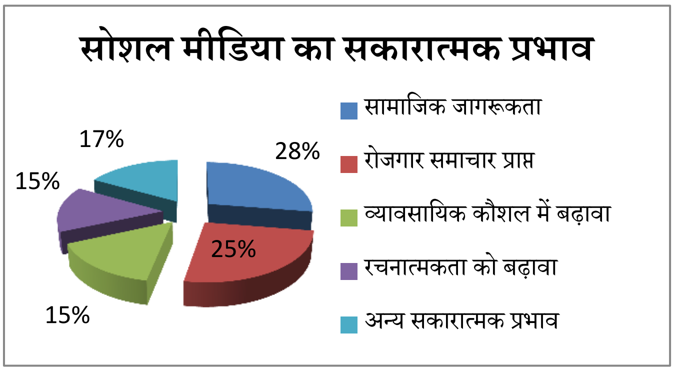

ग्राफ 3 का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता हैं की अधिकांश 84% उत्तरदाताओं ने यह बात का समर्थन किया है की सोशल मीडिया का उनके जीवन पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ा हैं। 15% ने कहा की सोशल मीडिया का केवल सकारात्मक प्रभाव ही उनके जीवन पर पड़ा, केवल 1 % ने यह मन हैं की सोशल मीडिया का उसके जीवन पर केवल नकारात्मक प्रभाव ही पड़ा हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं की सोशल मीडिया का जनजातीय समुदाय के लोगों में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव दिखाई दिया।

ग्राफ 4 से यह ज्ञात होता हैं की 28% उत्तरदाताओं ने यह कहा की सोशल मीडिया से उनको सामाजिक जागरूकता मिलती हैं, 25% लोगों ने इस बात का समर्थन किया की सोशल मीडिया से उनको रोजगार से सम्बंधित जानकारी प्राप्त होता हैं, 15 % ने यह माना की यह उनमे व्यावसायिक कौशल को बढ़ाने में मदद करता हैं, 15% उत्तरदाता ने कहा की सोशल मीडिया उनमे रचनात्मकता को बढ़ाता हैं एवं 17% लोगों ने इसके अन्य और सकारात्मक प्रभाव का उनके जीवन में पड़ने की बात कही हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं की समाज में सोशल मीडिया के अनेक सकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं।

ग्राफ 5 % सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव

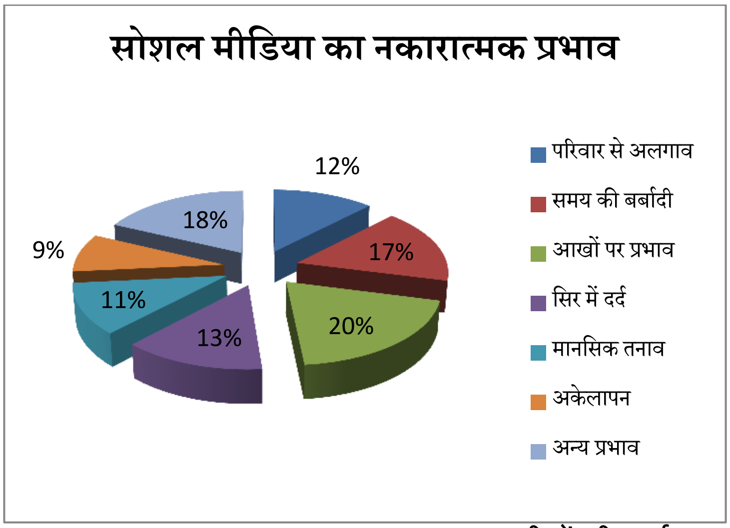

ग्राफ 5 का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता हैं की 20% लोगों ने यह माना की सोशल मीडिया पर ज्यादा समय व्यतीत करने पर उनके आखों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा हैं, 17 %उत्तरदाताओं ने इस बात का समर्थन किया की सोशल मीडिया से समय की बर्बादी हुई, 13 % सिर में दर्द, 12% परिवार से अलगाव, 11% मानसिक तनाव, 9 % अकेलापन और 18 % ने सोशल मीडिया के अन्य नकारात्मक प्रभाव का उनके जीवन पर पड़ने की बात का समर्थन किया। इस प्रकार हम उपरोक्त बातों का निष्कर्ष निकाल सकते हैं की जनजातीय समाज पर सोशल मीडिया का अनेक नकारात्मक प्रभाव पड़ा हैं।

नतीजों की चर्चा

आदिवासी समाज पर सोशल मीडिया का सकारात्मक प्रभावः इस अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं की सोशल मीडिया का जनजातीय समाज पर कुछ सकारात्मक प्रभाव पड़ा हैं जो निम्नलिखित हैं:

- 65.7 % लोगों ने इस अध्ययन में इस बात का समर्थन किया की सोशल मीडिया ने जनजातीय समाज के बच्चों के शैक्षणिक गतिविधियों जैसे पढाई—लिखाई, रचनात्मकता, कौशल आदि को सिखने में मदद किया हैं।
- 47.8 % लोगों ने कहा की सोशल मीडिया समाज के दूर—दराज स्थानों में रहने वाले लोगों, मित्रों और रिश्तेदारों को आपस में जोड़कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

- 64.2 लोगों ने यह माना हैं की सोशल मीडिया के माध्यम से व्यक्तित्व विकास से जुड़ी सूचना प्राप्त होता हैं जिसके माध्यम से इन्हें व्यक्तित्व विकास में मदद मिला हैं।
- 61.2 % लोगों ने इस बात का समर्थन किया है की सोशल मीडिया से उन्हें सामाजिक जागरूकता से सम्बंधित जानकारी प्रतिदिन प्राप्त होता हैं जिससे वे नियमित रूप से जागरूक रहते हैं।
- 73.1 % लोगो ने कहा सोशल मीडिया इनके सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को भी बेहतर बनाने में मदद करता हैं।
- 68.7 % लोगों ने कहा की सोशल मीडिया उनके मनोरंजन का अच्छा माध्यम हैं, जिससे वे खाली समय में मनोरंजन के रूप में इस्तेमाल करते हैं।
- 67.2 % लोगों ने यह कहा की सोशल मीडिया उनके दैनिक समस्या का समाधान करने में मदद करता हैं।
- 62.7% लोगों ने कहा की सोशल मीडिया उन्हें नए भाषा सिखने में मदद करता हैं।
- 56.7% लोगों ने इस बात का भी जिक्र किया की सोशल मीडिया उन्हें रोजगार समाचार प्राप्त करने में मदद करता हैं।

आदिवासी समाज पर सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभावः जनजातीय समाज में सोशल मीडिया के कुछ सकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैंः

- 83.6 % लोगों ने बताया की सोशल मीडिया ने जनजातीय समुदाय के परंपरागत रीति–रिवाजों एवं मान्यताओं पर बुरा प्रभाव डाला हैं।
- 80.6% उत्तरदाताओं ने इस बात का समर्थन किया की सोशल मीडिया ने जनजातीय समुदाय के परंपरागत भाषा–बोली पर नकारात्मक प्रभाव डाला हैं।
- 41.8 % लोगों ने इस अध्ययन में कहा की सोशल मीडिया के प्रयोग से उनमे मानसिक तनाव बढ़ा हैं।
- 71.6 % ने कहा की सोशल मीडिया के अधिक प्रयोग से आखों में विभिन्न समस्या आई है जैसे (आखों में दर्द, आसूं आना एवं जलन आदि)
- 44.8 % लोगों ने कहा की सोशल मीडिया से अफवाह एवं गलत सूचना का सामना किया।
- 61.2 % ने यह माना की सोशल मीडिया उनके समय का अनावश्यक बर्बादी करता हैं।
- 66.8 % लोगों का कहना है की सोशल मीडिया से दंगे–फसाद बढ़ने वाली सूचना मिलते हैं।

निष्कर्ष : इस अध्ययन में हमने पाया की सोशल मीडिया का जनजातीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार का प्रभाव पड़े हैं, अध्यनन में अधिकांश 84 % ने इस बात का समर्थन किया हैं। यह समाज के लोगो में कई विकासात्मक पहलू को बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता हैं साथ ही साथ उनकी कई प्रतिभा को लोगों के सामने प्रस्तुत करने का यह एक मंच है, जो उन्हें कुछ नया करने को प्रोत्साहित भी करता है। सोशल मीडिया के अनेकों सकारात्मक प्रभाव हैं जो युवाओं को कई नयी कौशल सिखाता है और उन्हें रोजगार के अवसर भी प्रदान करता है पर इसके लाभ को ध्यान में रखकर हम इसके नकारात्मक पहलू को अनदेखा नहीं कर सकते हैं। यह नकारात्मक प्रभाव उनके जीवन को कई रूप से प्रभावित कर रहा है जिससे उनका विकास का संतुलन प्रभावित हो रहा है। अतः हमें केवल सकारात्मक रूप से सोचते हुए सोशल मीडिया का यथासंभव उपयोग कम से कम करना चाहिए और उन्ही सोशल मीडिया का उपयोग करना चाहिए जिससे हमें रोज कुछ नयी जानकारी मिले एवं नया सिखने को मिले। हमारे ज्ञान को रोज बढ़ाये एवं ख़ुशी प्रदान करें।

सन्दर्भ–सूची :–

1. द्विवेदी, रश्मि – बाजपेयी, डॉ. ममता. (2023). सोशल मीडिया का समाज पर प्रभाव. रिव्यु ऑफ़ रिसर्च, 12 (11), 1–3।
2. उपाध्याय, डॉ. विजय प्रकाश. (2016). सोशल मीडिया का समाज पर प्रभाव- Paripex & Indian Journal of Research, 5(3), 214–215.
3. डॉ. प्रतिभा देवी. (2023). युवाओं पर सोशल मीडिया के प्रभाव पर एक अध्ययन. international journal of home science, 9 (3), 197–201।
4. https://www.apnimaati.com/2022/03/blog-post-2-html/=1
5. श्रीवास्तव, डॉ. मुकुल – सुरेन्द्र कुमार. (2017). सोशल मीडिया और युवा विकास. मीडिया मीमांसा, जनवरी–मार्च 2017, 37–42.
6. सक्सेना, रचना. (2016). वर्तमान में भारतीय युवाओं एवं बच्चों पर मीडिया का प्रभाव. शोध संचयन, 7 (1 –2), 75–79.
7. सिंह, डॉ. सीमा. (2023). सोशल मीडिया का समाज पर प्रभाव : निजता, पहचान और डिजिटल विभाजन के पहलुओं का विश्लेषण. journal of research in humanities and social science, 11 (2), 287–295.

संत कबीरदास के काव्य में क्रांतिकारी दर्शन

डॉ. मो. मजीद मियाँ *

सारांश :– भक्तकालिन संतो में कबीर का सर्वोच्च स्थान है। कबीर एक सफल साधक प्रभावशाली उपदेशक, महान नेता और क्रान्त–युगद्रष्टा थे। संत कबीर मध्ययुगीय निर्गुण संतो में मूर्धन्य है। कबीर हिन्दी के प्रथम रहस्यवादी कवि है। सामाजिकता कबीर काव्यका महत्त्वपूर्ण पक्ष है। कबीर श्रेष्ठ कोटि के भक्त और संत तो थे ही समाज के जागरुक प्रहरी भी थे। कबीर ने अपने युग का नेतृत्व करते हुए उसे सही दिशा प्रदान की थी। कबीर के साहित्य में निहित इसी सामाजिक पक्ष के आधार पर इन्हे 'लोकनायक' कहा जाता है। समाज सुधार के क्षेत्रमें कबीर की भूमिका अभूतपूर्व थी कबीर से पूर्व किसी व्यक्तिमें इतनी क्षमता नहीं थी कि वह प्रचलित रुढियों, सामाजिक विषमताओं आदि का खुलकर विरोध कर सके।

मुख्य शब्द :– सामाजिक पक्ष, क्रांतिकारी, प्रगतिशीलता, पुरोहितवाद, वर्णाश्रम, अंधविश्वास, बाह्याडम्बर, धार्मिकता आदि।

प्रस्तावना :– कबीर सरल ह्रदय भक्त तो थे ही, रहस्यवादी साधक भी थे, समाज सुधारक भी थे और विद्रोहि प्रकृति के क्रांतिकारी भी थे। जो आज २१वीं सदी में भी उनकी प्रस्तुतता कम नहीं हुई उलटी बढ़ी है। इस अर्थ में वो सच्चे युग प्रवर्तक थे। "प्रगतिशीलता कबीर साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक है। जिसका सामान्य अर्थ है स्पंदनशीलता, उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होना। उन्होंने समाज, साहित्य और धर्म सभी में प्रगतिशील विचारों का समावेश कर युग–युग से पीड़ित, प्रताड़ित जनता का उद्धार किया। जिन विकृत तत्त्वों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया जाग्रत हुई इनमें पुरोहितवाद, वर्णाश्रम व्यवस्था, धार्मिक अंधविश्वास, बाह्याडम्बरता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, पूजाविधि, पारम्परिक मान्यता आदि तत्त्व प्रमुख है।

कबीर साहित्यकी सबसे बड़ी विशेषता है मानवीय अभिगम। कबीर मानवतावादी कवि थे। कबीरकाल में भारतीय धर्म, साहित्य एवं संस्कृति अत्याधिक संकटपूर्ण परिस्थितियों में सांस ले रही थी, निराशा का तिमिर जनता को विनाश की ओर ले जा रहा था उस समय कबीर ने अपनी मानवतावादी विचारधारा का प्रकाश फेलाकर बहुत बड़ा महानकार्य किया। मात्र बातों से नहीं आचरण से उन्होंने 'मानवतावाद' का उद्घाटन किया। "कबीर ने खण्डनात्मक शैलीमें जो कुछ कहा उसमें मानवता की ही पुकार है। किसी धर्म से द्वेष या वैमनस्य नहीं। कुछ आलोचकों ने उनकी इस प्रखरता को दोष मानकर उन्हें केवल समाज सुधारक ठहराया है जो उनकी मूलभावना के साथ पूरी तरह से मेल नहीं खाता। वस्तुतः कबीर तो मानव–प्रेमी और मानवतावादी महापुरुष थे। मानव के आध्यात्मिक और लौकिक जीवन को सुखी बनाने हेतु कबीर ने बार–बार सन्मार्ग और कल्याणकारी पक्ष की और जनता का ध्यान आकर्षित किया।

"दया दिलमें रखिये तो क्या निरदयी होये,
साई के सब जीव है, कीड़ी कुंजर सोये"[1]

मानवता के इतिहासमें कबीर का स्थान बडा उच्च और स्पृहनीय है। "आज के संदर्भ में जबकि जातिवाद, दलवाद, सम्प्रदायवाद, गरीब–अमीर की खाइयां, वर्ण भेद अपनी सीमा पर पहुँच चूके है, कबीर साहित्यकी महान उपयोगिता है। इन सब विषमताओं का उन्मूलन करने में कबीरदर्शन समर्थ है। केवल कबीरदर्शन मानवतावादी दर्शन है जो बिना विषमता के समाज का निर्माण करने का निर्देश देता है।

कबीर वास्तव में क्रांतिकारी थे इसका प्रमाण यह है की उन्होंने तत्कालीन जातिप्रथा और वर्णाश्रम व्यवस्था पर तीव्र चोट की थी। हिन्दू समाज जिस वर्णाश्रम और षट्दर्शन पर आधारित था, उस पर कबीर ने सीधा आक्रमण किया है। योग–ज्ञान, व्रत–दान आदि की व्यर्थता को उन्होंने तीव्रता से उजागर कीया है।

***सहायक अध्यापक (श्री अग्रसेन महाविद्यालय) पोस्ट डॉक. शोधार्थी (मनिपुर इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी)**

कबीर जाति–पाँति, धर्म–सम्प्रदाय आदि की दृष्टि से उत्पन्न भेदको अनावश्यक और हानिकारक समझते है। कबीर जाति की अपेक्षा गुणो को अधिक महत्त्व देते है। कबीर कहते है–

"ऊँचे कुल क्या जनमियां, जे करणीं ऊंच न होई।
सौवन कलस सुरै भरया, साधू निंद्या सोई।"[2]

अर्थात् जबतक कर्म श्रेष्ठ नहीं तब तक श्रेष्ठ (उच्च) कुल में जन्म लेने का कोई लाभ नहीं होता है। यदि स्वर्णकलश में शराब भरी होती है, तो साधुजन उसकी निंदा करते है, उसी प्रकार उच्चकुल में जन्म लेने के पश्चात् भी यदि कोई दुष्कर्म करता है तो वो निंदा का पात्र है।

"नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा जाका प्यंड तही का सींचा।"[3]

इस प्रकार कबीर अपने आधुनिक विचारो से भारतीय वर्णव्यवस्था, छूत–अछूत, ऊँच–नीच भेदभाव, जातिभेद पर आक्रमण करते है। भेद–भाव को कबीर अनावश्यक और हानिकारक समझते ह। जिन विकृत तत्त्वों को उन्होंने विरोध किया उनमें बाह्याडम्बर, धार्मिक अंधविश्वास, पुरोहितवाद, पूजाविधि, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, श्राद्धविधि, केशमुंडन और कर्मकांड सम्मेलित थे। कबीर ने सामाजिक, धार्मिक पाखंड का विरोध किया है। कबीर की वाणी समाज के झूठे आडम्बर से बाहर निकालने के लिए प्रकट हुई थी। देखिए–

"माला पहरे मनमुषी, बहुतै फिरैं अचेत।
गांगी रौंले बहि गया, हरि सू नांहि हेत।।"[4]

आडम्बरका सच्चा चित्र उक्त पंक्तियों में है। धार्मिक अंधविश्वास में लिप्त ब्राह्मण पंडित और मुसलमान काजी को वे फटकारते है।" क्रान्तिको लाने के लिए जिस साहस और आत्मविश्वास तथा चुनौती देने के लिए जिस निर्भीकता और दृढता की आवश्यकता थी कबीर के व्यक्तित्व में उसकी प्रचुरता थी। इसलिए कबीर आज भी प्रासंगिक है। कबीर ने अपनी वाणी शक्तिसे ब्राह्मण–पंडितो–पुरोहितो की दशा–दिशा देखकर तत्कालिन परिस्थितियों में तीव्र प्रहार किये थे जो आज भी यथार्थ है और उसका मूल्य बना हुआ है। पुरोहित पंडितो को कबीर कहते है

"पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि मेघा नाहिं।
औरं कौ परमोघता, गया मुहरका मांहि।।"[5]

कबीर स्पष्ट रुपसे पंडितो से कहते है की तुम्हारी पंडिताई दिखावटी है। वेदशास्त्र के विरूद्ध आचरण करनेवाले पंडितो को वो फटकार लगाते है। कबीर के समय में धार्मिक विधि में कर्मकांड को अधिक महत्ता दी जाती थी। जो व्यर्थ और निरर्थक थी। कबीर ने इस प्रकार की ज्ञानशून्य पूजाविधि का निषेध किया है। धर्म के ठेकेदारो ने भगवान को केवल मंदिरो–मस्जिदों एवं मूर्तियों तक सीमित कर दिया था। पत्थर की मूर्तिपूजा पर कबीर ने तीव्र प्रहार किया है। पत्थर की मूर्ति प्रतीकात्मक थी, साधन थी, साध्य तो कुछ और ही था, लेकिन कबीर के समय तक 'शालिग्राम' प्रतिकात्मक साधन न रहकर साध्य बन गए। इसलिए उन्होंने कहा कृ

"पाहन का पूजिये जे जनम न देइ जाव।
अंधा नर आसा मुखी दौही खोवै आब।।"[6]

ऐसा नहीं है की कबीरने केवल हिन्दुओंकी थोथी पूजापद्धति को ही ललकारा है बल्कि मुसलमानो की खोखलेपन आस्था पद्धतिको भी फटकारा है। कबीर प्रहार करते है–

"कंकड़ पत्थर जौड़िके, मस्जिद लई बनायद्य
ता पर मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।"[7]

कबीर कहते है की हे काजी! तू दिन में पाँच–पाँच बार नमाज पढ़ता है, यह पूजा तो निरर्थक है। कबीर का स्पष्टरुप से मानना है की परमात्मा न वेद में है, न कुरान में, न माला में न तसबीर में। वह तो प्रत्येक जीव में मौजूद है। धर्मपाल मैणी लिखते हैकृ "कबीर ने तत्कालीन समाज के धार्मिक लोगो में पोथीधर पाण्डे, कुरान पाठी पंडित, माला फेरनेवाले पंडित, तिलकधारी ब्राह्मण, वेद पाठी विद्वान, राखसे तनी देहवाल

योगी, गेरुए वस्त्र धारण करनेवाले संन्यासी, नंगे–धडंगे साधु, धोखेबाज तांत्रिक, कपटी पुजारी, बांग देनेवाले मुल्ला, कुरान की आयाते पढ़नेवाले मौलवी, मांस खानेवाले काजी, हज से वापिस आकर पाप करनेवाले हाजियों को देखा था। उनके ज्ञान चक्षुओं ने समाज की हकीकत को अच्छी प्रकार से जान लिया था। इसलिए निडर होकर कबीर ने आत्मा की आवाज को सत्यकी कसौटी पर कसकर समाजके इन समस्त धर्म के ठेकेदारों को नंगा किया।"[8] कबीर ने तीर्थाटन को भी आडम्बर माना है। कबीर स्पष्टरुप से मानते है की मनुष्य को अपने शरीरको ही तीर्थस्थल मानना चाहि मनशुद्धि और पवित्र आचरण के बिना मानवकल्याण संभव नहीं है। मन, वचन और कर्मसे पवित्र होकर ईश्वराधना करनी चाहिए। कबीर कहते है –

"मोको कहां ढूंढता बंदे, में तो तेरे पास में,
ना मैं देवालय, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में,
खोजी होय तो तू ते मिली है, पलभर की तलाश में,
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सासोंकी सास में।"[9]

इस प्रकार कबीर ने अपनी अनेक साखियों एवं पदो के माध्यम से हिन्दू एवं मुसलमान धर्मकी निरर्थक मान्यताओं का विरोध किया है। वेदपठन का समझ के बिना पठनका भी विरोध किया है। अंधो के लिए दर्पण की सार्थकता शून्य है। इसी तरह मूर्ख के लिए वेद–पुराण का महत्व निरर्थक है। गधा अपनी पीठ पर चंदन ढोता है लेकिन उसे इसकी सुगंध से कोई मतलब नहीं। इसी तरह मूर्ख पंडित वेदशास्त्र पढ़ता है लेकिन उसके गुण तत्त्वों से बिलकुल अनभिज्ञ रह जाता है।

"वेद कतेब पढ़े का किया, गुन खर चंदन जस भारा।
रामनाम की गति नहीं जानी, कैसे उतरिस पारा।।"[10]

कबीर पुस्तक ज्ञान की अपेक्षा अनुभव पर विश्वास करते है। भिन्न–भिन्न धर्मग्रंथो के आधार पर सामाजिक विषमता का सूत्रपात कट्टर धर्मावलम्बियों ने लिया। कबीर इसके विरोधी रहे। कबीर ने जप–तप, सन्यास, श्राद्धविधि का भी विरोध किया। इन सबको बाह्यविधि मानकर, ढोंग कह दिया। कबीर को पढ़ते समय हमें गुजराती साहित्य के मध्यकालीन कवि अखा की याद आती है।

कबीर हिन्दु–मुस्लिम एकता के प्रतीक थे। कबीर मानते है कि दोनों सच्चे मानव होने चाहिएँ न कि हिन्दु–मुसलमान। कबीर ने ज्ञानहीन और रुढिग्रस्त व्यक्तियों की कटु आलोचना की है। क्योंकी मानवता के मार्ग में उन्हें बाधक समझते है। डॉ. प्रतापसिंह चौहान लिखते है "कबीर अल्लाह और राम को एक मानकर उनकी वंदना करते थे। वे हिन्दू–मुसलमानों के जातीय और धार्मिक मतों के वैषम्य को मिटाकर उन्हें उस मानवीय अद्वैत के धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। कबीर ने इस समस्या का निदान ढूंढा वह सर्वथा निरपेक्ष अभिनव और भौतिकता पर प्रतिष्ठित द्वैत की भूमिका के ऊपर आध्यात्मिक और अद्वैत था। अल्लाह और राम की अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुभूति के माध्यम से उन्होंने हिन्दू–मुसलमान दोनों को गलत मार्ग पर चलने से रोका। इस काम में उन्होंने कभी पुचकारा कभी फटकार बतायी।"[11]

कबीर की द्रष्टि में "हिन्दू–मुसलमान दोनों एक ही कमल के दो दल है। एक ही देश की दो आँखे है। एक ही सागर की दो लहरें है। अतः उन्होंने एक ऐसे समाज की संरचना की कल्पना की जिसमें दोनों धर्म के लोग प्रेम, सहयोग और आदर के साथ, एक ही परिवार के सदस्यों की भाँति रह सके। इसलिए जो लोग हिन्दू–मुस्लिम एकता के व्रतमें दीक्षित है, वे भी कबीर साहब को अपना मार्गदर्शक मानते है। क्योंकि कबीरसे अधिक जोरदार शब्द में इस एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया। इसलिए कबीर आजभी प्रासंगिक है। हम जानते है की आज २१वीं सदी आधुनिक युग में इन्टरनेट के जमाने में भी हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य बरकरार है, धार्मिक वातावरण कलुषित हो चुका है, मानव अध्यात्म से हट चुका है, जिस कारण समाज की अवस्था में गरिमा में भयंकर गिरावट आई है। इस परिस्थिति में सुधार लाने के लिए महान क्रांतिकारी संतकवि कबीर की वाणी साहित्य विचार की नितांत आवश्यकता है। जो हिन्दू और मुसलमान दोनों को पुचकार सके और फटकार सके। आज के भारत में असहिष्णुता के माहोल में हम सबको स्वीकृति देनी होगी की कबीर जैसे क्रांतिकारी ही पथदर्शक बन सकते है। आज के संदर्भ में कबीर वास्तव में प्रस्तुत है।

क्रांतिकारी कबीर ने सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक विचारों के साथ–साथ अपने आर्थिक विचारभी प्रस्तुत किये थे। हम जानते है की पुरुषार्थ चातुष्ट्य–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–में अर्थ का अपना महत्त्व है। लेकिन धन इकट्ठा करने की लालसा के खिलाफ कबीर ने अपनी आवाज उठाई थी। कबीर ने अर्थशास्त्र विषयक अवधारणा को प्रस्तुत कर समाज को संयमित उपभोग की दिशा दी है। कबीर ने बार–बार कनक और कामिनी द्वारा समाज में होनेवाले विकारो की ओर संकेत कर उसकी निंदा की है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आलोचना की है। आर्थिक संतुलन रखने के लिए कबीर कहते है–

"पानी बाटै नावमें, घर में बाढ़े दाम,
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।"[12]

अधिक सम्पति होने पर उसका वितरण गरीबो में कर देना चाहिए इसी में सबका कल्याण है। कबीर ने अतिरिक्त अर्थोपार्जन को निरर्थक माना है। कबीर 'संतोषधन' को धारण करने का उपदेश देते है–

"गोधन गजधन वाजिधन और रतनधन खान,
जब आवै संतोषधन सबधन धूरि समान।"[13]

कबीर मूलतः अध्यात्मवादी कवि है। इसलिए उन्होंने आर्थिक समस्या के समाधान के लिए अध्यात्म का ही सहारा लेते है। आर्थिक विषमता, पूंजीवाद, भ्रष्टाचार के आज के माहोल में कबीर का कल्याणकारी आर्थिक विचार प्रासंगिक है। उलटा अनिवार्य है।

कबीर के विचारो को विभिन्न दृष्टिकोण से विचार किया जाने लगा है। कबीरादि निर्गुण कवि किसी वैज्ञानिक की भाँति समाज की प्रयोगशाला में काम करते थे। ऐसा बहुत से विद्वानों का मानना है। डॉ. विमल महेता लिखती है– "निर्गुण कवि अन्धानुसरण के विश्वासी नहीं थे। रुढियों एवं अंधश्रद्धा के प्रति उन्हें धृणा थी। श्रुति, कुरान और प्रामाण्यवाद में इन्हें बिलकुल आस्था नहीं थी। ये तो बडे वैज्ञानिक थे। जीवन की प्रयोगशाला में सत्यखंडो के प्रयोग करते थे।"[14] 'मैं कहेता आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लखी।' कबीर कागज लिखी बातोंकी अपेक्षा आँखिन देखी बातो पर अधिक विश्वास करनेवाले थे । इस कारण उनका ज्ञान यथार्थ था। पूर्वग्रह और अंधश्रद्धा के विरोधमें उन्होंने अपनी साखियों में और पदोमें जो विचार अभिव्यक्त किये है, वे आज के एक वैज्ञानिक की भाँति जरुर तर्कबद्ध लगते है।

हम दृढता से कह सकते है की कबीर का साहित्य आज भी प्रासंगिक हे। कबीर की प्रासंगिकता को लेकर बहुत पहले 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के हिन्दी विभाग की परिचिर्चा गोष्ठिमें डॉ. शुकदेव सिंह कहते है– "हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता के खिलाफ आवाज उठानेवाले पहले संत विचारक और कवि कबीर ही है। रुढ धार्मिक शास्त्रों, पूजा–उपासना सम्बन्धी जड़ताओ, मंदिर मस्जिद विषयक अंध आस्थाओं, जाति वर्ण सम्बन्धी फर्को और तमाम तरह के भारतीय जीवन के अन्तर्विरोधो को उन्होंने निर्ममता के साथ अस्वीकार कर दिया था......आम आदमी के लिए वे सभी स्तरों पर नये आदर्शोकी सृष्टि करते हुए भी नयी नैतिक लडाई लड़ रहे थे।"[15] कबीर की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए हृदयपाल सिंह तोमर लिखते है– "वर्तमान परिस्थितियों में जब हर कहीं झूठ–फरेब और बिल्लों नारों का ही बाजार गर्म है, देश तबाही के अंधकूप में आमूल घंसा जा रहा है, समाज के कर्णधार तथाकथित समाजवादी उसके पोर पोर को चकनाचूर कर डालने पर तुले है...हमें यदि सही मार्ग कोई दिखा सकता है तो कबीर! कबीर के रास्ते पर चलकर ही हम एक कल्याणकारी राष्ट्रीयचरित्र का निर्माण कर सकते है, किन्तु इस निर्माण के लिए हमें उनके जैसाही निर्मम, कठोर और बेलौस होना पड़ेगा। पूरे समाज को दिग्भ्रमित करनेवाले नेतृ–वर्ग को बेनकाब करने के लिए हमें वैसाही वज्रप्रहार करना होगा जैसा कबीर ने अपने समकालीन मठाधीशों पर किया था।"[16] लेकिन इसके लिए कबीर जैसी त्याग– भावना, खुमारी भी जरुरी है देखिए–

"हम घर जाल्या आपर्णा, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जाल्यौं तास का, जे चलै हमारे साथि।।"[17]

वास्तव में कबीर दहकता हुआ अंगारा था जिसमें ज्वाला ही ज्वाला थी। आज के समय में समाज से असत्यों और असद् वृत्तियों को जलाना है तो कबीर दृ साहित्य की आवश्यकता है। उनकी प्रासंगिकता

स्वतः सिद्ध है। "वेद से लेकर रामायण, गीता, नाथसिद्ध सम्प्रदाय, वैष्णव– शैव दर्शन, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, आधुनिकता उत्तर आधुनिकता के अनेक प्रश्नों के उत्तर मिलते है कबीर वाणी में।"[18] विश्व के आधुनिक अस्तित्ववादी चिन्तकों ने जो दर्शन और विचार बीसवीं शताब्दी में दिये है। कबीरने छः सौ वर्ष पहले ही दे चूके थे। कामू, काफका, सार्त्र, इलियट आदि ने अस्तित्ववाद के जो दार्शनिक सिद्धांत बाद में दिये कबीर अपने जीवनमें उन्हें चुनौती की तरह अपनाकर, साहसपूर्वक झेलकर प्रमाणित कर चूके थे।

निष्कर्ष :– कबीर को अपने समय का नेता कह सकते है। हाँ नेता, एक आदर्श नेता, क्योंकि वे सत्यप्रेमी, स्पष्टवादी, निर्भीक, अहिंसक, वक्ता और त्यागी थे। वे अलोलुप और आत्मविश्वासी थे, किंतु निरभिमान भी थे। "सत्य के अनन्य उपासक में श्रेष्ठ दार्शनिक बुद्धिवादिता और चिंता, कट्टर क्रांतिकारियों की क्रांति और कठोरता, अनन्य भक्त की विनम्रता और प्रेमानुभूति, सच्चे आलोचक की स्पष्टता, सच्चे साधु की आचरण प्रियता, आदर्श पुरुषकी कर्तव्य–परायणता, योगियों की अक्कड़ता तथा पक्के फकीर की साधना थी। कुल मिलाकर वो सच्चे अर्थमें युगप्रवर्तक, क्रांतिकारी संत कवि थे। कबीर की विद्रोही, क्रांतिकारी धार आज के रचनाकारों के लिए सर्वथा प्रासंगिक है। कबीर एक समतामूलक, न्यायपूर्ण, संवेदनशील, मानवसमाजकी रचना के पक्षधर क्रांतिधर्मा संत है।

वर्तमान समयमें साम्प्रदायिक दंगे फसाद तनाव बहुत बढे है। बाबरी मस्जिद, राम जन्मभूमि, असहिष्णुता जैसे विवादोने भीषण तथा गहरा रुप धारण किया है। राष्ट्रीय एकता खतरे में है। इस परिस्थिति में देश को सचमुच एक क्रांतिकारी संतकवि कबीर की जरुरत है। निःसंदेह हम कह सकते है कि महात्मा कबीर युगवर्ति क्रांतिकारी थे और वे अपने युग के लिए जितने प्रासंगिक थे उतने आजभी और आनेवाले कई युगोमेंभी उनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी। क्रांतिकारी कबीर साहित्यमें ऐसे असंख्य मोती भरे है जो वर्तमान समय में मृत संजीवनी का काम कर सकते है। क्रांतिकारी संत कबीर अमर है और अमर रहेंगे।

सन्दर्भ–सूची :–

1. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी दृ (सम्पा.) कबीर ग्रंथावली, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, पृ. 60।
2. सरनाम सिंह शर्मा – कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत, के. के. पब्लिकेशन– 2011, पृ. 87।
3. सुनिल कुलकर्णी – कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना, कानपुर विकास प्रकाशन– 2007. पृ. 115।
4. वही – पृ. 122।
5. वही – पृ. 130।
6. विश्वबन्धु शर्मा – काहे कबीरा भया कबीर? (परख और पहचान) प्रथम संस्करण, 2000 पृ. 85।
7. वही – पृ. 68।
8. धर्मपाल मैणी – कबीर के धार्मिक विश्वास – भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़ 1964, पृ.115।
9. डॉ. श्रीमती सुशीला सिन्हा – लौह पुरुष कबीर, संजय प्रकाशन, दिल्ली–1999, पृ. 158।
10. अनिता कोठारी – हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकार, प्रथम संस्करण, मार्क्स पब्लिकेशन, जयपुर, 2010 पृ. 80।
11. डॉ. वी. डी. नुले दृ कबीर और तुकाराम के काव्यो में सामाजिकता तुलनात्मक अध्ययन अमन, प्रकाशन–1994 पृ. 215।
12. डॉ. श्रीमती सुशीला सिन्हा – लौह पुरुष कबीर, संजय प्रकाशन, दिल्ली–1999, पृ. 187।
13. वही – पृ. 189।
14. विमल मेहता – निर्गुण कवियों के सामाजिक आदर्श, आशा प्रकाशन गृह, नौर्वा सं. 1990 पृ. 165।
15. विश्वबन्धु शर्मा – काहे कबीरा भया कबीर? (परख और पहचान), देल्ही सत्या प्रकाशन–2000, पृ. 128।
16. वही – पृ. 129–130।
17. वही – पृ. 44।
18. बलदेव वंशी (संपादक), पूरा कबीर, प्रकाशन संस्थान–2010, पृ. 15।

संथाली लोकगीतों में अंतर्निहित देशज ज्ञान का शैक्षिक उपयोजन

नंदन चन्द्र पानी*
डॉ. हरीश पाण्डेय **

सारांश : झारखंड की आदिवासी संस्कृति में देशज ज्ञान की प्रमुख भूमिका है, जो स्थानीय जीवनशैली, कृषि, पर्यावरण, लोककथाओं, पारंपरिक चिकित्सा और सामाजिक आचार–विचार से जुड़ा होता है। यह ज्ञान पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक परंपरा के माध्यम से संचरित होता रहा है, जिसमें लोकगीत एक महत्वपूर्ण साधन हैं। संथाली लोकगीतों में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, सामाजिक नैतिकता, ऐतिहासिक घटनाओं, प्रेम, वीरता, त्योहारों और जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मिलता है, जो समाज की सामूहिक चेतना को मजबूत करते हैं। संथाली लोकगीत झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो संथाल समुदाय की सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं को संजोए हुए हैं। इन गीतों के माध्यम से प्रेषित ज्ञान का वर्तमान समाज व समय में शैक्षिक उपयोजन बहुसंगत एवं आवश्यक है। इन गीतों से प्राप्त ज्ञान राशियों में विविध विषयी व बहुपक्षीय ज्ञान शामिल है यथा– मूल्य शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, मनोविज्ञान शिक्षा, इतिहास शिक्षा, समाजशास्त्रीय शिक्षा, भूगोल शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, एवं कौशल शिक्षा आदि जिसकी सामाजिक व व्यक्तिगत उपयोगिता स्वंमसिद्ध है जो औपचारिक शिक्षा के केंद्रीय संदर्भो को सांस्कृतिक परिधि में समेकित रूप में प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में संथाली लोकगीतों के माध्यम से संथाली देशज ज्ञान के सांस्कृतिक परंपरा का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है जिस आधार पर वर्तमान समय में भी देराज ज्ञान की शैक्षिक उपयोगिता के संदर्भ में स्पष्ट वर्णन किया गया है। जैसे इनके डाण्ठा गीतों में समय, जातीय विशिष्टताएं, सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्य आदि का, लागणे गीतों में प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति, सामाजिक मुद्दे, दार्शनिक विश्लेषण आदि का, डाहार गीतों में पेड़–पौधे, वातावरण, समाजीकरण, अधिगम प्रक्रिया, आदि का, सिंगरई गीतों में जीवन कौशल विकास, यौन शिक्षा, जीवन संरचना, धार्मिक शिक्षा आदि संदर्भो से युक्त 9 गीतों का विश्लेषण कर शैक्षिक उपयोजन को स्पष्ट किया गया है।

मुख्य बिंदु : संथाल जनजाति, देशज ज्ञान, लोक गीत, शैक्षिक उपयोजन

अध्ययन की पृष्ठभूमि : झारखंड की जनजातीय परंपरा में देशज ज्ञान का विशिष्ट स्थान है जो न केवल जनजातीय मान्यताओं, रचनात्मक प्रक्रियाओं, व्यवहार प्रणालियों आदि द्वारा प्रत्यक्षीत होती है अपितु जीवन के प्रत्येक पहलुओं में स्थापित पीढ़ीगत अनुभव, जातीय विशिष्टताओं एवं विविध कला रूपों के प्रत्यक्षण द्वारा परिभाषित भी होती हैं। संथाल जनजाति के संदर्भ में यह ज्ञान उनके अस्तित्व की संरक्षण इकाई होने के साथ–साथ जीवन के विशिष्ट संदर्भों में समानांतर रूप में चलने वाली तथा स्थानीय मान्यताओं में पकी हुई वह सार्थक ज्ञान राशि है जो इस समुदाय को विशिष्ट पारंपरिक सामुदाय के रूप में मान्यता प्रदान करती हैं (झा, 1993)। संथाली लोकगीतों में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, सामाजिक नैतिकता, ऐतिहासिक घटनाओं, प्रेम, वीरता, त्योहारों और जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मिलता है, जो समाज की सामूहिक चेतना को मजबूत करते हैं। संथाल जनजाति में कला, संस्कृति और धार्मिक विश्वास एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनकी पारंपरिक कलाएं उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा है जो संथाली सामाजिक संरचना, विश्वास प्रणाली एवं प्राकृतिक पर्यावरण के साथ उनके सामंजस्य को दर्शाती है। संथाल समुदाय में सामूहिकता और समानता की केंद्रियता रही है और यही मूल्य उनकी कला और सांस्कृतिक परंपराओं में भी परिलक्षित होती है। संथाल जनजाति में प्रचलित विविध कलारूपों जिनमे उनकी परंपरा एवं संस्कृति के मानक संदर्भों का प्रत्यक्षण (हेम्ब्रम, 2020)। झारखंड की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर में लोकगीतों की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ की विभिन्न जनजातियों में संथाल एक प्रमुख समुदाय है, जिनकी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और परंपराएं हैं। संथाली लोकगीत न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि ये समाज के रीतिरिवाजों, परंपराओं, इतिहास, संघर्ष और सामूहिक चेतना के वाहक भी हैं। (मुर्मू, 2023)

संथाली समाज में कला की प्रचुरता का आधार उनकी सामूहिक वृत्ति एवं उनकी सांस्कृतिक मान्यताएं हैं जो उनके दैनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में विशेषतः मनोरंजन, पूजा–पद्धति, संस्कार आयोजनों एवं प्राकृतिक पर्व आदि में न केवल परिलक्षित होती हैं अपितु इनसे संबंधित क्रियाकलापों को जनजातीय पटल पर परिभाषित भी करती हैं। अतः सांस्कृतिक समुदाय के रूप में संथाल जनजाति की कला तथा उनके प्रेरक प्रतिरूपों का अध्ययन, जनजातीय देशज ज्ञान के संरक्षण व हस्तानांतरण की आवश्यक आवश्यकता को भी मुखरित करता है (मुर्मू, 2023)। संथाली देशज ज्ञान, कला, भाषा व संस्कृति में किए गए अध्ययन यथा–विश्वास (1956), अहमद

***शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 442001**
****सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 442001**

(1985), झा (1993), पाण्डेय (1997), पाण्डेय (2002), ज्योत्सना (2005), सिंह (2007), कुमार (2007), पुनीता (2011), अटल (2011), शर्मा (2012), पाण्डेय (2012), वर्मा (2012), श्रीवास्तव (2013), वर्मा (2015), कुमारी (2016), टुडू (2016), सिंह (2016), आरपन (2020), हेम्ब्रम (2020) एवं मुर्मू (2023) आदि अध्ययनों में संथाल जनजाति की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर, सामाजिक संरचना, पारंपरिक रीति–रिवाज, त्यौहार, भाषा, धार्मिक विश्वास, देशज ज्ञान, शैक्षिक क्रियाकलाप, जातीय धरोहर, उद्यम एवं उपक्रम, पारंपरिक बसाहट, आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों, उपचार पद्धतियां, विवाह पद्धतियां, लोक कलाओं व लोक गीतों तथा सामाजिक संगठनों आदि संदर्भ इस क्षेत्र में अध्ययन की आवश्यकता को तथ्य परक आधार प्रदान करते हैं जिस हेतु सांस्कृतिक विरासत की रक्षा, कलात्मक प्रतिरूपों की व्याख्या तथा संथाली जनजीवन की विशिष्टता को जानने तथा इसके अध्ययन की आवश्यकता को विशेष रूप से प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत पत्र में अध्ययन क्षेत्र झारखण्ड के धनबाद जिले के पिण्ड्राहाट ग्रामपंचायत से प्राप्त तथ्यों के संकलन एवं अवलोकन से प्राप्त गीतों द्वारा शैक्षिक उपयोजन के विश्लेषण की दृष्टि विकसित की गई है इन गीतों के आधार, प्रकार एवं देशज ज्ञान संदर्भित भारतीय लोक–कला विशेष रूप से लोकगीतों के रूप में व्याख्यायित व परिभाषित किया गया है। उपरोक्त संबंधित साहित्य के अध्ययन के पश्चात प्राप्त संदर्भों के आधार पर 9 गीतों का चयन शैक्षिक उपयोजन को विश्लेषित करने हेतु किया गया है जिसमें मुख्यतः तीन आयाम संस्कार संबंधी लोकगीत, श्रम संबंधी लोकगीत एवं पर्व–त्योहार व धार्मिक कार्य संबंधी लोकगीत के आधार पर चयनित कर विवरण प्रस्तुत किया गया है। संथाली लोकगीतों के विविध प्रकार संथाल समुदाय में प्रचलित है जिसमें प्रमुख गीतों को चित्र संख्या 01 में देखा जा सकता हैः–

चित्र–01 संथाली लोक गीतों का प्रासंगिक विभाजन

श्रोत– क्षेत्रीय शोध

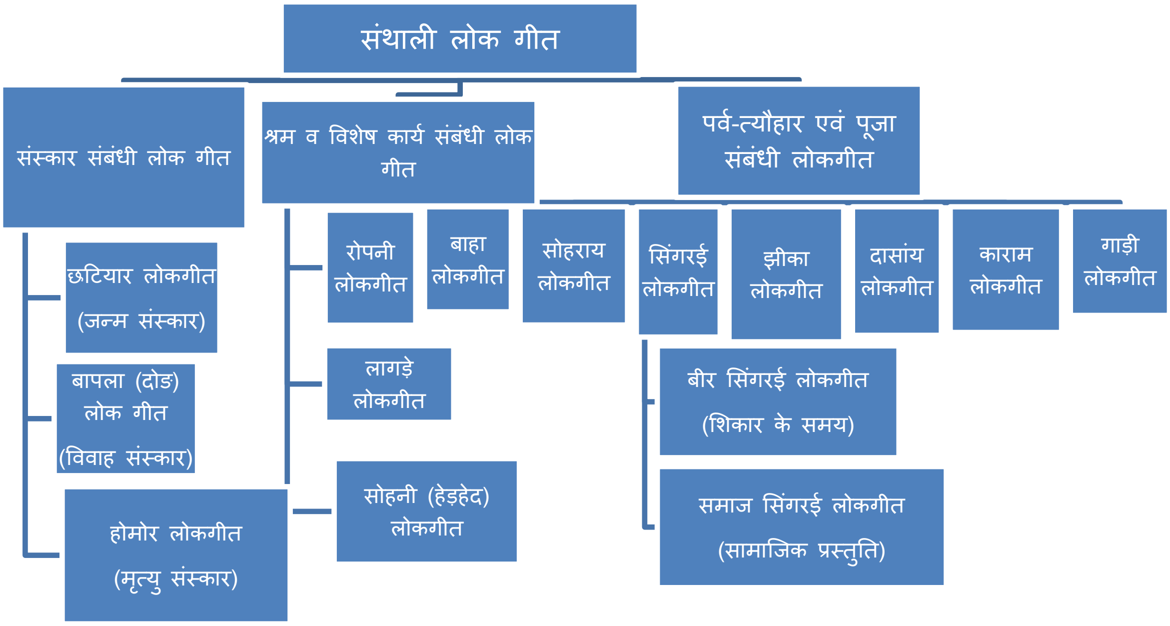

कार्य 2024 (हेम्ब्रम, 2020; मुर्मू, 2023)

संथाल जनजाति में प्रचलित देशज ज्ञान के विभिन्न संदर्भों को गीतों के माध्यम से दैनिक जीवन में प्रयुक्त समस्त क्रियाकलापों के प्रत्यक्षण तथा जीवनसत्व की अभिव्यक्ति हेतु समुदाय के समस्त सदस्य यथा बच्चे, युवक एवं वृद्ध आदि सभी वर्ग सम्मिलित रूप से गीत–नृत्य का परिवेशन कर न केवल अपने जातीय ज्ञान को संरक्षित करते हैं बल्कि विभिन्न आखड़ों व आयोजनो के माध्यम से अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित भी करते हैं। गीतों में सन्निहित विशिष्ट ज्ञान जो उनके अस्तित्व निर्मित, ईश्वरवाद, ज्ञान–विज्ञान, जीवन संरचना, दैनिक कर्म, सामुदायिक सौहार्द आदि की शिक्षा मौखिक रूप से अनौपचारिक अभिक्रियाओं के माध्यम से प्राप्त होती है। इस मनोरंजक प्रक्रिया में संथाली देशज ज्ञान के अभिकल्प के रूप में लोकगीत एक सहज परंतु सक्षम परिपाटी के रूप में देखा जा सकता है। इन गीतों में अनेक प्रकार की विविधताएं पाई जाती है यथा शैलीगत विविधता, शिल्पगत विविधता, रचनागत विविधता, विषयगत विविधता, परिस्थितिगत विविधता तथा परिवेशन गत विविधता आदि शामिल है।

इस संदर्भ में संथाल जनजाति में प्रचलित विविध लोकगीतों को 9 आधारों में प्रमुखता से देखा जा सकता है जो तालिका संख्या 01 द्वारा प्रत्यक्षित है।

तालिका–1 संथाल जनजाति के विविध लोक गीत एवं संबंधित आयोजन

गीतों के प्रकार	गीत	गाए जाने वाले अवसर / आयोजन	प्रस्तुत देशज ज्ञान	शैक्षिक अनुप्रयोग
1 डाण्ठा गीत	"धोरोम आखड़ा रे ओकोय तुमदाक् रुय बोयहा धोरोम आखड़ा रे ओकोयाक् लिपुर साडे बोयहा ओकोयाक् घुंगरा साडे ? धोरोम आखड़ा रे राम तुमदाक् रुय बोयहा लोखोन टामाके रुय"	ऐतिहासिक व मिथक आधारित नायक–नायिकाओं की वीरता तथा सामर्थ्य का शैर्यगान प्रस्तुत किया जाता है।	आभूषण का महत्त्व, जीवन की शिक्षा, सामाजिक समरसता एवं उत्सव धर्मिता, जीवनचर्या तथा अभिव्यक्त ज्ञान, जातीय इतिहास एवं पीढ़ीगत कौशल, वेशभूषा, नृत्यशैली और वाद्ययंत्रों की विशिष्टता के साथ–साथ जनजातिय शक्ति, सौर्य और सामर्थ्य का ज्ञान	इतिहास (समय, जातीय विशिष्टताएं, जातीय गुण एवं जनजातीय विरासत), समाजशास्त्र (सांस्कृतिक पद्धति, सामाजिक मूल्य एवं दैनिक क्रियाकलाप), कला शिक्षा (वाद्ययंत्र, ताल–लय एवं रिदम), कौशल विकास (जीवन कौशल एवं सामाजिक कौशल) के अध्ययन में सहायक
2. लागणे गीत	"दिन दो हजुक दिन दो चालाक् दिन दो हेच् रुअड़ोक् सिं बिन्दा नोंका गे हजुक् सेनोक्आ"	सभी अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों में से एक लागणे को लागणे धुन में गया जाता है जो मुख्यतः मनोरंजन एवं प्रशिक्षण के गीत के रूप में गाया जाता है।	मनोरंजन एवं सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति, समाज के ज्वलंत मुद्दों एवं युवा मनोभावों से युक्त विषयों का प्रशिक्षण, सांसारिक मूल्यों का ज्ञान, युवा वर्ग में गृहस्थ व सामाजिक वृत्ति विकास, समाज एवं जीवन संबंधी ज्ञान की दार्शनिक व्याख्या, सहजता और सरलता युक्त जीवन शैली का ज्ञान	प्राथमिक (भाषा, संबंध, समाज) एवं द्वितीयक कौशल (अर्जित ज्ञान, कार्यकुशलता), पर्यावरण अध्ययन (आसपड़ोस, वातावरण एवं प्राकृतिक साहचर्य), दर्शन (जीवन आधार, जीजिविषा), मनोविज्ञान तथा मूल्य विकास (वैचारिक द्वंद, मानसिक वृत्ति) के अध्ययन में सहायक
3. डाहार गीत	"बाहा बोंगा हों सेटेरेना जोतो बाहा गे बाहायेना बाहा थोपे रे कुयली कुहुय् सेरेंञ आतु कुलही आखड़ा रे कुयली कुहुय् सेरेंञ"	फागुन माह में प्राकृतिक रमणीयता को उजागर करती हुए ऐतिहासिक व प्राकृतिक संदर्भों के विशिष्टता को नव युवतियाँ शाम के समय गाँव के आँगन में इकट्ठा होकर गीत व नृत्य द्वारा व्यक्त करती है।	प्रकृतिक सन्निकटता तथा मौसम संबंधी संकेतों का देशज विज्ञान, प्रकृति में होने वाली सामान्य–असामान्य परिवर्तन एवं वानस्पतिक ज्ञान तथा नई पीढ़ी के समाजीकरण की सांस्कृतिक प्रक्रिया का ज्ञान	वनस्पति विज्ञान (पेड़– पौधे, वानस्पति एवं वातावरण), गणित (गणना / कैल्कुलेसन), समाजशास्त्र (समाजीकरण एवं सामजिक संरचना) तथा शिक्षाशास्त्र (शिक्षण अधिगम प्रक्रिया) के अध्ययन में सहायक
4. सिंगरई गीत	"हिंसी, डुमनी, छीता, कापरा, दे देला से, दे. देला से हिजुक् पे। आपे लागिद् ते आयनोम–काजोल, आपे लागिद् ते सुनुम–सिंदूर दो, दे देला से, दे देला से हिजुक् पे"	शिकार के लिए जंगल में जाने पर युवक–युवतियों द्वारा यह गीत गया जाता है जिसमें सामान्यतः प्रेम और वासना प्रकट किया जाता है।	जनजातीय अभिमान्यताओं का ज्ञान तथा संबंधित कौशल विकास के साथ–साथ भौगोलिक स्थिति, दिशा, वन्यजीवों का ज्ञान तथा यौन शिक्षा द्वारा जीव व जीवन संरचना का ज्ञान इसके अलावे धार्मिक शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, प्रशासनिक शिक्षा आदि का ज्ञान जनजातीय अध्ययन,	कौशल विकास, भूगोल (स्थान), गणित (दिशा), जन्तुविज्ञान (प्रजाति), यौन शिक्षा (जन्म एवं निशिध व्यवहार), जीवविज्ञान (अनुवांशिकता), धार्मिक शिक्षा (कर्मकांड एवं पूजा–पद्धति), सामाजिक शिक्षा (सामाजिक संरचना, नियम विधान एवं सामुदायिक भूमिका) तथा राजनीति विज्ञान (प्रशासनिक संरचना व अधिकार एवं कर्तव्य) के अध्ययन में सहायक
5. सोहराय गीत	"ने सुगी, आम सुगीते शाय सुगी आम हेवेलेको होपोन लेकोदो आयूर आगू सुतुक् आगू निया गोड़ा निया जातरा पेरेज काक् चोड़ाङ काक् मे ने रांगिया"	सोहराय पर्व के समय गाए जाने वाला गीत है जो सोहराय धुन पर गया जाता है। इसमें पांच दिनों में अलग अलग विधानों पर अलग अलग गीत गाये जाते है।	पशुधन का महत्व, प्राकृतिक प्रतिरूपों (पर्वत, वृक्ष, भूमि तथा जल) की पूजा, कर्मकाड संवंधी विधान, कला का महत्व एवं कौशल, ऐतिहासिक घटनाओं से शिक्षाअर्जन, परंपरा का अनुपालन, गृहसज्जा, आपसी संबंध व व्यवहार, कुटुम्ब की भूमिका एवं महत्त्व, सतात्मक दायित्व एवं शक्तियां तथा	समाजशास्त्र (निर्भरता एवं उपादेयता) व अर्थशास्त्र (आय–व्यय), भूविज्ञान (पर्वत एवं मिट्टी), धार्मिक शिक्षा (कर्मकांड, आचरण, निषेध व्यवहार), कला शिक्षा (भितिचित्र, भूमिचित्र, वास्तुकला), इतिहास शिक्षा (प्रेरक घटनाएं, संधर्ष एवं उपलब्धियां), मूल्य शिक्षा (संबंध एवं व्यवहार), समाजशास्त्र (सामाजिक संगठन, नातेदार), समसामयिक विमर्श (सत्तात्मक स्वरूप, शक्ति एवं

			जीवन कौशलों का प्रशिक्षण आदि ज्ञान	संघर्ष) तथा जीवन कौशल (मूलभूत कुशलत) के अध्ययन मे सहायक
6. बाहा गीत	"जा गोसाँय तेहेञ दो नायके दो तोका घाट तोका नालारे नुमेना हो बाहा बाहा गे सो काना जा गोसाँय तेहेञ दो बयुद तोका घाट तोका नाला रे नाड़का एना हो बाहा बाहा गे सो काना जा गोसाँय तेहेञ दो नायके दो रोल घाट रोल नाला रे"	बसंत ऋतु के आगमन के उपलक्ष में बाहा पर्व के समय देवी देवताओं को प्रसन्न करने हेतु जाहेर थान और नायके के घर पर गाया जाता हैं जिसे युवक युवतियां दोनों मिलकर गाते हैं।	मौसम संबंधी परिवर्तन तथा उनके लक्षणों के संकेत, धार्मिक रीतियों व परंपराओं का विधान, प्रकृति धर्म की अभिमान्यता, समस्या समाधान की गहन दृष्टि, व्यक्तिक व सामाजिक अनुशासन, जातीय ज्ञान के संचरण की प्रक्रिया आदि का ज्ञान	मौसम विज्ञान (प्रकृतिक परिवर्तन, आपदा, लक्षण), धार्मिक शिक्षा (रीति–रिवाज, भक्ति एवं आध्यात्म), पर्यावरण अध्ययन (वातावरण, जीव–जगत एवं प्रभाव), कौशल विकास (समस्या समाधान), चिकित्सा विज्ञान (बीमारी, उपचार पद्धति, औषधि), ज्ञान प्रणाली (ज्ञान के क्षेत्र, शाखाएं एवं प्रशिक्षण) तथा समाजशास्त्र (सामाजिक अनुशासन) के अध्ययन मे सहायक
7. करम गीत	"तोका रेदोम जानाम लेना, कारामे गोसाँय हो ? तोका रेदोम बुसड़ लेना नेवा हारी डार ? सिंबीर रेम जानाम लेना कारामे गोसाँय हो, मान बीर रेम बुसड़ लेना नेव हारी डार"	करम डाल के चारों तरफ नाचते हुए यह गीत गया जाता है इसमें अपने देवता करम को प्रसन्न करने के लिए रात भर गीतों की प्रस्तुति की जाती है।	कृषि पद्धति एवं अन्न उपार्जन संबंधी दृष्टिकोण, पंचांग एवं तिथि संबंधी गणना, सामुदायिक भागिदारी एवं भूमिका निर्वहन, सामाजिक आखड़ा का महत्व, लोक गीत एवं नृत्य का महत्व, वाद्ययंत्रों का निर्माण एवं वादन कौशल, प्राकृतिक निर्भरता एवं श्रम की महत्ता, सामाजिक आयोजन में पारिवारिक एवं सामाजिक सहभागिता, सांस्कृतिक मूल्यों का विकास एवं सोहार्दपूर्ण व्यवहार आदि का ज्ञान	कृषि विज्ञान (उर्वरता एवं अन्न उपार्जन), ज्योतिष शास्त्र (पंचांग, गणना एवं आपदा), तंत्रशास्त्र (समस्या निवारण, झाड़फूंक), मूल्यांकन (अखाड़ा, सामाजिक आयोजन एवं संस्कृतिक क्रियाकलाप), कला शिक्षा (लोक गीत, लोक नृत्य एवं अन्य दृश्यकलाएं), पर्यावरण शिक्षा (संरक्षण, संतुलन एवं सम्मान), सांस्कृतिक शिक्षा (श्रम, सहभागिता एवं व्यवहार) के अध्ययन में सहायक
8. दासांय गीत	"हाय रे हाय, दिबि रे दुर्गा दोकिन ओडोकेनारे आयनोम काजोल दोकिन बाहेरेनारे। हाय रे हाय, चेते लागिन दोकिन ओडोकेनारे चेते लागिन दोकिन बाहेरेनारे ? हाय रे हाय, देश लागिद दोकिन ओडोकेनारे दिशोम लागिन दोकिन बाहेरेनारे"	दासांय गीत दशहरा के समय दासांय धुन में गया जाता है। इसे मुख्यतः देवी देवताओं की पूजा के समय गया जाता है।	धार्मिक रीति व परंपरा, संथाल धर्म की मान्यता, समस्या समाधान की गहन अंतर दृष्टि, सामाजिक आखड़ा का महत्व, लोक कला का महत्व, व्यक्तिगत व सामाजिक अनुशासन व अनुभव, जातीय ज्ञान के क्षेत्रों, सांस्कृतिक मूल्यों का विकास आदि का ज्ञान	धार्मिक शिक्षा (रीति–रिवाज, परंपरा), कला शिक्षा (वाद्ययंत्र, ताल–लय एवं रिदम), पर्यावरण अध्ययन (वातावरण, जीव–जगत एवं प्रभाव), जनजातीय अध्ययन (सामाजिक अनुशासन, जातीय ज्ञान), सांस्कृतिक शिक्षा (भाषा, जीवन पद्धति एवं बसाहट) के अध्ययन में सहायक
9. डान गीत	"चांदो सुरुः जमूनी कुनामी येन नेंडा सुरुजमूनी सेटेरेन ताम तेहेञ जिन्दा दोले सुनुम शाशां मेया गापा सिंगाड़ रेले बिदाय मेया चिरु नांगार रे दो जानाम सुरुज मुनी चांपा नांगार रे नाम दो रानी"	छठियार, विवाह और मृत्यु आदि संस्कारों को मनाने के अवसर पर यह गीत गया जाता है इसमें साधारणतः प्रेम, श्रृंगार व सौंदर्य तथा शोक के भाव को प्रकट किया जाता है।	संस्कारो की महत्ता, नातेदारी की सामयिक भूमिका, इतिहास एवं पीढ़ीगत ज्ञान, जीवन अनुभवो का तार्किक समायोजन, प्रतीकात्मक सामाजिक शिक्षा, जीवन की सत्यता, धार्मिक गतिविधियां, शैक्षणिक प्रक्रिया आदि का ज्ञान	शिक्षा (औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक), सांस्कृतिक शिक्षा (व्यवहार प्रणाली, जीवन मूल्य एवं सामाजिक मान्यताएं), इतिहास शिक्षा (देश, काल एवं परिस्थितिजन्य आदर्श), दार्शनिक शिक्षा (जीवन सत्य एवं सौंदर्य), सामाजिक सहभाग (एकता एवं सामुदायिक भागिदारी) के अध्ययन में सहायक

तालिका 01 में संथाली लोकगीतों को उनके प्रकार, गाए जाने वाले अवसर व आयोजन के आधार पर अलग–अलग संदर्भो तथा क्षेत्रो को समेकित रूप से शामिल करते हुए उनमें सन्निहित देशज ज्ञान के प्रतिरूपों के आधार पर वर्तमान समय में उनके शैक्षिक अनुप्रयोग को विषय, अध्ययन क्षेत्र एवं विशिष्टता के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। जिसमें संथाली जन इतिहास, पर्व–त्यौहार, दैनिक कर्म, धार्मिक रीति–रिवाज, जीवन संस्कार, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक प्रशिक्षण आदि क्षेत्रों पर संकलन गीतों को प्रस्तुत किया गया है।

संथालों द्वारा विभिन्न त्योहारों को मनाया जाता है। इन त्योहारों पर वे कई प्रकार के गीत गाते हैं। त्योहारों के अलावा ऋतु परिवर्तन, विवाह, फसल बोने एवं काटने, शुभ एवं शोक के अवसरों पर भी गीत गाए जाते हैं। प्रत्येक अवसर के लिए संथाल अलग–अलग धुन बजाते एवं गीत गाते है (श्रीवास्तव, अवस्थी एवं अन्य, 2020)। संथाल समुदाय में उपलब्ध जितने भी लोकगीत हैं, वह सब प्राचीन परंपराओं से जुड़ा हुआ है। इसके परवर्ती पर्याय के लोकगीत में 'दासँाय', 'डांटा', 'गाड़ी/गाणी आसेन', 'झारनी मांतार', 'जातुर', 'रिन्जा', 'झीका', 'पाता' और 'एनेज् जों सेंरेंज' आदि को सम्मिलित किया गया।(मुर्मू, 2023)

लोक–गीत संथाली लोकसाहित्य का बहुत महत्वपूर्ण अंग है। लोकगीत ही लिखित साहित्य का आधारस्तंभ है (झा, 1989)। यह किसी न किसी पूजा, त्योहार या विशिष्ट अनुष्ठान के साथ जुड़ा हुआ है। लोकगीत मनोरंजन के साथ–साथ नैतिक शिक्षा प्रदान करने वाली साधन भी है (हेम्ब्रम, 2016)। देवी–देवताओं की अराधना के लिए मंत्र पाठ भी एक प्रकार का लोकगीत ही है। लोकगीतों में संस्कार के कार्यों का वर्णन, संथालों का इतिहास, समाज प्रेम, भाई–बहन का प्यार, माता–पिता के प्यार का वर्णन भी मिलता है। लोकगीत पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कारों की भांति हस्तांतरित होती है लोकमानस के कंठ से जीवित है (हेम्ब्रम, 2020)। संथाली लोक साहित्य सदियों से ही मौखिक रूप से निरंतर चली आ रही है। यह निम्न रूपों में मिलती है– लोकगीतों, लोककथा, विनती, सिंगराई, कुदुम, मेनकाथा, काहावते, भेन्ताकाथा, पहेली इत्यादि। लोकगीत समाज के विभिन्न पूजा पर्व– बाहा, सोहराय, काराम एवं सामाजिक अनुष्ठानों, लांगड़े, बापला, दोङ्द्ध में किया जाता है। संथाली समाज के विधि–विधान से संबंधित जितनी भी बाते या नियम है उन सब नियमों को समाज के लोग लोकगीतों के धागों में पिरोकर अपनी नयी पीढ़ियों के लिए संभालकर रखे हुए है।(हेम्ब्रम, 2020)

संथाली लोकगीतों में सन्निहित देशज ज्ञान का स्वरूप विविधता पूर्ण है जो शिक्षा के विभिन्न क्षेत्र को संदर्भित करती है। लोकगीतों में ज्ञान की पारंपरिक संस्कृति के शैक्षिक उपयोजन को चित्र संख्या 02 में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

चित्र–2 देशज ज्ञान के शैक्षिक उपयोगिता के क्षेत्र

निष्कर्ष :– संथाली लोकगीत झारखंड की सांस्कृतिक परंपरा और देशज ज्ञान के महत्वपूर्ण वाहक हैं। ये गीत संथाल समाज की धार्मिक आस्थाओं, आध्यात्मिकता और सामूहिक चेतना का समावेशन, सामाजिक संरचना, ऐतिहासिक संघर्षों और प्रकृति के साथ उनके गहरे संबंध को अभिव्यक्त करते हैं। इनके माध्यम से संथालों की सांस्कृतिक धरोहर पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित और संप्रेषित होती रही हैं। संथाल जनजाति का इतिहास गहराई से प्रकृति, पारंपरिक जीवनशैली, और सामूहिकता से जुड़ा हुआ है। यह जनजाति अपने पारंपरिक गीत, नृत्य, और हस्तशिल्प के लिए प्रसिद्ध है (पाण्डेय, 2002)। संथाल समुदाय अपनी सरलता, सामूहिकता, और प्रकृति के प्रति श्रद्धा के कारण भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है। संथाल जनजाति की कला और संस्कृति में उनकी लोक परंपराओं, धार्मिक विश्वासों, और प्रकृति प्रेम की गहरी झलक मिलती है। संथाल जनजाति की कलाएँ भारतीय लोक संस्कृति का एक अनमोल हिस्सा हैं, जो हमारी सांस्कृतिक विविधता और समृद्धि को सशक्त बनाती हैं।(हांसदा, 2012)

संथाल जनजाति भारत की सबसे प्रमुख और प्राचीन आदिवासी जनजातियों में से एक है, जो अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, समृद्ध परंपराओं, कलात्मक अभिव्यक्तियों तथा प्राकृतिक जीवन शैली के लिए जानी जाती है। उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना भारत के आदिवासी समाज का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती है (बेसरा, 2010)। संथाल जनजाति की पारंपरिक कलाएँ उनकी संस्कृति, जीवनशैली, और धार्मिक विश्वासों का गहन प्रतिबिंब

हैं। उनकी कला और सांस्कृतिक परंपराएँ न केवल मनोरंजन का माध्यम हैं, बल्कि उनके सामूहिक जीवन, प्रकृति के साथ उनके गहरे जुड़ाव, और पारंपरिक ज्ञान का सजीव उदाहरण भी हैं (हेम्ब्रम, 2016)। संथाली लोकगीत समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना का दर्पण हैं। इन गीतों में जातिगत भेदभाव से परे सामूहिकता और एकता पर जोर, महिलाओं की भूमिका, उनकी भावनाएँ, संघर्ष और समाज में उनका स्थान, प्रकृति के प्रति सम्मान और उसके संरक्षण का संदेश व पर्यावरण संतुलन के प्रति जागरूकता, समुदाय के पारंपरिक देवी–देवताओं, धार्मिक अनुष्ठानों और त्योहारों आदि का वर्णन इनके गीतों में मिलता है, जो आध्यात्मिकता, जातीय–ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत को संजोकर समाज को एकसूत्र में पिरोते हैं।(हेम्ब्रम, 2020)

संथाली लोकगीत मुख्यतः मौखिक रूप से संचारित होते हैं, जिससे समाज की सांस्कृतिक धरोहर संरक्षित रहती है। इनके अधिकांश लोकगीत समूह में गाए जाते हैं, जो सामाजिक एकता और सामूहिक भावना को प्रोत्साहित करते हैं। इन गीतों में जंगल, नदियाँ, पर्वत और खेत–खलिहानों का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया जाता रहा है, जो प्रकृति के प्रति इनके आदर और प्रेम को दर्शाता है। इन लोक गीतों में जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिबिंब यथा विवाह, प्रेम, कृषि, युद्ध, उत्सव, धार्मिक अनुष्ठान आदि विषयों को विविधता से उजागर किया गया है जिसकी भाषा सरल और सहज होती है, जो उन्हें जन–मानस के बीच लोकप्रिय बनाती है। (माझी, 2022)

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अटल, वाई. एवं सिसोदिया, वाई. (2011). आदिवासी भारत एक सामाजिक सांस्कृतिक एवं विकासात्मक विवेचन. शवत प्रकाशन.
2. अरापन (2020). झारखंड की संथाल जनजाति का सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास 1850 से 1950 ईस्वी तक एक ऐतिहासिक विश्लेषण. (डॉक्टोरल थिसिस, पटना विश्वविद्यालय). शोधगंगाइनफ्लिबनेट http://hdl.handle.net/10603/447515.
3. अहमद, ए. (1985). मिथिला के संथालः उत्थान का समाजशास्त्रीय अध्ययन, (डॉक्टोरल थिसिस, एल.एन.एम. विश्वविद्यालय, दरभंगा) शोधगंगाइनफ्लिबनेट https://hdl.handle.net/10603/502997.
4. उप्रेती, एच. (1965). भारतीय जनजातियां, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर.
5. कुमारी, आर. (2016). संथालः उनकी रचनात्मक उपलब्धि, आवश्यकता, आत्मधारणा तथा समस्याएं. (डॉक्टोरल थिसिस, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय). शोधगंगाइनफ्लिबनेट http://hdl.handle.net/10603/306218.
6. कुमार, ए. (2023). बिहार के संथाल जनजातियों की कला परंपरा एवं संरक्षण की चुनौतियां. वितस्ता, (49), कश्मीर विश्वविद्यालय.
7. ज्योत्सना (2005). संथाल जनजाति में राजनीतिक चेतना एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. (डॉक्टोरल थिसिस, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ). शोधगंगाइनफ्लिबनेट http://hdl.handle.net/10603/288261.
8. झा, एम. (1983). मिथिला सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीत, संदीप प्रकाशन, इलाहाबाद.
9. झा, एम. (1993). पूर्णिया के संथाल एक मानव शास्त्रीय एवं समाजशात्रीय अध्ययन, (डॉक्टोरल थिसिस, एल. एन. एम. विश्वविद्यालय, दरभंगा) शोधगंगाइनफ्लिबनेट https://hdl.handle.net/10603/990285.
10. टुडू, एम. सी. (2016). संथाल जनजाति में देशज ज्ञान, (डॉक्टोरल थिसिस, रांची विश्वविद्यालय, रांची) शोधगंगाइनफ्लिबनेट https://hdl.handle.net/10603/579466.
11. पाण्डेय, पी. (2002). जनपद माल्दा (प. बंगाल) के संथाल जनजाति का सामाजिक आर्थिक रूपांतरण. (डॉक्टोरल थिसिस वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर) शोधगंगाइनफ्लिबनेट http://hdl.handle.net/10603/200925.
12. बेसरा, डी. (2010). दामोदर धारे धारे, ज्ञानजुग पब्लिकेशन, भुवनेश्वर.
13. माझी, डी. (2022). संताली लोक कथाः एक अध्ययन, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, रांची.
14. मुर्मू, ई.के. (2023). संथाल लोकगीतों का हिंदी अनुवाद एवं विश्लेषण, (डॉक्टोरल थिसिस, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी) शोधगंगाइनफ्लिबनेट https://hdl.handle.net/10603/569809.
15. यादव, के. एवं सिंह, ए. (2019). संथाल आदिवासी के लोकगीत, लोक कथा एवं लोक चित्रों में समाज की प्राचीन विरासत और संस्कृति, मुड़ई.
16. वर्मा, यू. के. (2009). झारखंड का जनजातीय समाज, सुबोध ग्रंथावली, रांची.
17. वर्मा, यूं.के. (2012). भारत का जनजातीय समाज. इंस्टिच्यूट फॉर सोशल डेवलपमेंट एंड रिसर्च. (संपादित)
18. वर्मा, यू.के. (2015). संथाल, झारखंड सरकार कल्याण विभाग, झारखंड जनजातीय कल्याण शोध संस्थान मोराबादी, रांची. https://www.jharkhand.gov.in.
19. सिंह, के. एन. (2007). संथाल परगना का जनजातीय भूगोल एक भौगालिक अध्ययन, (डॉक्टोरल थिसिस, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर) शोधगंगाइनफ्लिबनेट https://hdl.handle.net/10603/179133.
20. शर्मा, ए. एवं अवस्थी, के.एस. (2016). भारत में अनुसूचित जनजाति की शिक्षा वर्तमान स्थिति और भावी आवश्यकताएं. भारतीय आधुनिक शिक्षा, (2). एनसीईआरटी https://ncert.nic.in@journals-and-pericals.php\in=hi.
21. हांसदा, एन. (2012). संताड़ी लोक साहित्य, भोड़ानाथ प्रेस, भुवनेश्वर.
22. हेम्ब्रम, ए. (2020). संताली लोकसाहित्य, इंटरनेशनल जनरल ऑफ हिंदी रिसर्च www.hindigeneral.com.
23. हेम्ब्रम, आर. (2016). संताली लोकगीत में साहित्य और संस्कृति, झरोखा प्रकाशन, रांची.

ब्रह्मतटस्थलक्षणविचारः

डॉ. नीरजकुमारभार्गवः*

अस्मिन् जगति ब्रह्म एव वस्तु अन्यत् सर्वं तु अवस्तु एव। अत एव श्रीसदानन्दः वेदान्तसारे वदति ''वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म। अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु''[1] इति। किन्तु ''लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः'' इति नियमानुसारं लक्षणप्रमाणाभ्यां विना नहि वस्तुसिद्धिः भवतीति कृत्वा ब्रह्मरूपवस्तुनः सिद्धये पूर्वं ब्रह्मलक्षणं विमृश्यते। तत्र प्रत्येकं वस्तुनः द्विविधं लक्षणं भवति स्वरूपलक्षणं तदस्थलक्षणं चेति। तथा चोक्तमपि वेदान्तपरिभाषाकारेण ''तत्र लक्षणं द्विविधं स्वरूपलक्षणं तदस्थलक्षणं चेति''[2]। अत्र प्रबन्धे ब्रह्मणः तटस्थलक्षणं प्रस्तूयते। तत्रादौ ब्रह्मशब्दार्थः प्रस्तूयते।

ब्रह्मशब्दार्थविचार :– बृहि वृद्धौ इति धातोः 'बृंहेर्नोऽच्च' इति सूत्रेण मनिन् प्रत्यये धातोर्नस्य स्थाने अद् इत्यादेशे सति बृ अ ह् मन् इति स्थितौ 'इको यणचि' इति सूत्रेण यणादेशे च ब्रह्मन् इति शब्दः सिध्यति। तस्यार्थो भवति बृंहति वर्धयति प्रजाः इति ब्रह्म। अथवा बृंहति वर्धत इति ब्रह्म। बृंहति वर्द्धते निरतिशयमहत्त्वलक्षणवृद्धिमत् भवति यत्तद् ब्रह्म इति वा। अत एव प्रोक्तमपि "बृहत्त्वात् बृंहणत्वाद्वात्मैव ब्रह्मेति गीयते"[3]।

ब्रह्मतटस्थलक्षणविचारः :– तत्र किं नाम तटस्थलक्षणमिति जिज्ञासायां वदति वेदान्तपरिभाषाकारः ''तटस्थलक्षणं नाम यावल्लक्ष्यकालमनवस्थितत्वे सति यद्व्यावर्तकं तदेव''[4] इति। यल्लक्षणं यावल्लक्ष्यकालं नैव तिष्ठति, व्यावर्तकं च भवति तदेव तटस्थलक्षणमित्युच्यते। यथा गन्धः पृथिव्याः तटस्थलक्षणमस्ति। यतोहि ''उत्पत्तिकालीनं द्रव्यं क्षणं निर्गुणं निष्क्रियं च तिष्ठति'' इति न्यायेन उत्पत्तिकाले घटादिपृथिव्यां महाप्रलये परमाणुषु च गन्धो नैव तिष्ठति, स च जलादिभ्यः पृथिव्याः व्यावर्तकोऽपि वर्तते। अतो गन्धः पृथिव्याः तटस्थलक्षणम्। एवमेव वेदान्तदर्शनकोशे प्रोक्तं ''तटस्थलक्षणं तु लक्ष्यस्य यावत्कालम् अस्थित्वापि व्यावर्तकं भवति। यथा गन्धवत्त्वं पृथिव्या लक्षणं तटस्थलक्षणमुच्यते''[5]। ब्रह्मणः तटस्थलक्षणं किमिति चेत् वेदान्तशास्त्रप्रसिद्धं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणं वदति श्रुतिः– "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति" (तैत्तिरीयोपनिषत् 3.1.1) इति। ब्रह्मसूत्रस्य जन्माद्यधिकरणे इमामेव श्रुतिमाधारीकृत्य साधनचतुष्टयसम्पन्नेन विचार्यं ब्रह्म लक्षितं "जन्माद्यस्य यतः" (ब्रह्मसूत्रम् 1.1.2) इति। जन्माद्यधिकरणगतस्य सिद्धान्तस्यैव विवृतिरूपाण्यन्यान्यपि बादरायणभगवत्पादप्रणीतानि सूत्राण्यग्रे न्यायप्रस्थाने विराजन्ते। तद्यथा "प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्" (ब्रह्मसूत्रम् 1.4.22), "उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि" (ब्रह्मसूत्रम् 2.1.24), "सर्वोपेता च तद्दर्शनात्" (ब्रह्मसूत्रम् 2. 1.30), "लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्" (ब्रह्मसूत्रम् 2.1.33), "वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति" (ब्रह्मसूत्रम् 2.1. 34), "सर्वधर्मोपपत्तेश्च" (ब्रह्मसूत्रम् 2.1.37) इति। भाष्यकारभगवत्पादाश्चाहुः– "सर्वज्ञः सर्वेश्वरो जगत उत्पत्तिकारणम् मृत्सुवर्णादय इव घटरुचकादीनाम्, उत्पन्नस्य जगतो नियन्तृत्वेन स्थितिकारणं मायावीव मायायाः, प्रसारितस्य च जगतः पुनः स्वात्मन्येवोपसंहारकारणम् अवनिरिव चतुर्विधस्य भूतग्रामस्य। स च सर्वेषां न आत्मेत्येतद् वेदान्तवाक्यसमन्वयप्रतिपादनेन प्रतिपादितम्"[6] (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् 2.1.1, पृ.345) इति। एवञ्च प्रदर्शितश्रुत्याद्यनुरोधात् 'जगज्जन्मादिकारणत्वं' ब्रह्मणः तटस्थलक्षणं समागच्छति। अत्रादिपदेन स्थितिप्रलययोः संग्रहो बोध्यः, ततश्च जगज्जन्मकारणत्वं, जगत्स्थितिकारणत्वं, जगल्लयकारणत्वम् इति त्रीणि तटस्थलक्षणानि भवन्ति। तथा चोक्तमपि सिद्धान्तलेशसंग्रहे–

जगज्जन्मस्थितिलयेष्वेकैकं ब्रह्मलक्षणम्।
प्रत्येकं ब्रह्मलिङ्गत्वादित्याहुः कौमुदीकृतः[7] ।।14

एतस्य ग्रन्थस्याशयं वदति ग्रन्थकारः– ''विचार्यस्य च ब्रह्मणः जगज्जन्मस्थितिलयकारणत्वं लक्षणमुक्तं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इत्यादिश्रुत्या। जगज्जन्मस्थितिलयेषु एकैककारणत्वमप्यनन्यगामित्वाल्लक्षणं भवितुमर्हतीति चेत् – सत्यम्। लक्षणत्रयमेवेदं परस्परनिरपेक्षम्। अत एव अत्ता चराचरग्रहणात् इत्याद्यधिकरणेषु सर्वसंहर्तृत्वादिकं प्रत्येकं ब्रह्मलिङ्गतया उपन्यस्तमिति कौमुदीकारः''[8]। तस्मात् जगज्जन्मकारणत्वं, जगत्स्थितिकारणत्वं,

---

***सहायकाचार्यः, संस्कृतदर्शनविभागः, रामकृष्णमिशन्विवेकानन्दशैक्षणिकशोधसंस्थानम्, बेलुडमठः, हावडा।**

जगल्लयकारणत्वम् इति त्रीणि तटस्थलक्षणानि जातानि। अत एव सायणाचार्येणापि प्रोक्तम् – ''तटस्थलक्षणं यतो वा इमानि इत्यादीनि वाक्यानि निरूपयन्ति, जगज्जन्मादिकारणत्वेन। तदुक्तं विवरणे –

"जगज्जन्मस्थितिध्वंसा यतः सिध्यन्ति कारणात्।
तत्स्वरूपतटस्थाभ्यां लक्षणाभ्यां प्रदर्श्यते''[9]।।

परन्तु एवं लक्षणे स्वीकृते सति मायायामतिव्याप्तिस्तत्रापि जगज्जन्मादिकारणत्वस्य सत्त्वात्, अतस्तत्रातिव्याप्तिवारणायात्र लक्षणे कारणपदेन कर्तृत्वं विवक्षितमस्ति। कर्तृत्वञ्च किमिति जिज्ञासायां वदति वेदान्तपरिभाषाकारः ''तत्तदनुकूलतत्तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वम्[10]''। सिद्धान्तलेशसंग्रहकारो वदति – ''तदैक्षत, सोऽकामयत, तदात्मानं स्वयमकुरुत, इति श्रवणात् न्यायमत इव कार्यानुकूलज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वरूपमिति''[11]। एवम्भूतमेव कर्तृत्वमन्येऽपि स्वीकुर्वन्ति। तथा चोक्तमपि –

"ईशस्य कर्तृता कीदृक्, तत्र केचित् प्रचक्षते।
कार्यानुकूलविज्ञानचिकीर्षाकृतितेति ताम्[12]" ।। 53

ततश्च न मायायामतिव्याप्तिः। तस्याः जडत्वेन ज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वस्य तत्राभावात्। अत्र च ज्ञानेच्छाद्यन्यतमगर्भं लक्षणत्रितयं विवक्षितम्, ततश्च कर्तृत्वस्य त्रीणि लक्षणानि भवन्ति। तत्तदनुकूलतत्तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानवत्त्वम्, तत्तदनुकूलतत्तदुपादानगोचरचिकीर्षावत्त्वम्, तत्तदनुकूलतत्तदुपादानगोचरकृतिमत्त्वम्। एवं च ब्रह्मणो नव तटस्थलक्षणानि भवन्ति। तथाहि – जगज्जन्मानुकूलजगदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानवत्त्वम्। जगज्जन्मानुकूलजगदुपादानगोचरचिकीर्षावत्त्वम्। जगज्जन्मानुकूलजगदुपादानगोचरकृतिमत्त्वम्। जगत्स्थित्यनुकूलजगदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानवत्त्वम्। जगत्स्थित्यनुकूलजगदुपादानगोचरचिकीर्षावत्त्वम्। जगत्स्थित्यनुकूलजगदुपादानगोचरकृतिमत्त्वम्।

जगल्लयानुकूलजगदुपादानगोचरा–परोक्षज्ञानवत्त्वम्। जगल्लयानुकूलजगदुपादानगोचरचिकीर्षावत्त्वम्। जगल्लयानुकूलजगदुपादानगोचरकृतिमत्त्वम्।

अत्र एतानि लक्षणानि संक्षेपेण एवं प्रकारेण वक्तुं शक्यानि सन्ति। तथाहि जगज्जन्मानुकूलज्ञानवत्त्वम्। जगज्जन्मानुकूलचिकीर्षावत्त्वम्। जगज्जन्मानुकूलकृतिमत्त्वम्। जगत्स्थित्यनुकूलज्ञानवत्त्वम्। जगत्स्थित्यनुकूलचिकीर्षावत्त्वम्। जगत्स्थित्यनुकूलकृतिमत्त्वम्। जगल्लयानुकूलज्ञानवत्त्वम्। जगल्लयानुकूलचिकीर्षावत्त्वम्। जगल्लयानुकूलकृतिमत्त्वम् इति नवलक्षणानि भवन्ति। तथा चोक्तं वेदान्तपरिभाषायाम् ''एवं च प्रकृते लक्षणानि नव सम्पद्यन्ते''[13]। ततश्च निरुक्तनवलक्षणानि भवन्तीति सिद्धम्। तत्र ब्रह्मणः जगतः जन्मादिकारणत्वे किं प्रमाणमिति चेत् श्रुतिरेव प्रमाणम्। तथा च वदति धर्मराजाध्वरीन्द्रः ''ब्रह्मणो जगज्जन्मादिकारणत्वे च यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रत्यन्त्यभिसम्विशन्ति इत्यादिश्रुतिर्मानम्[14]'' । एवमन्यत्रापि प्रोक्तम् ''आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति[15]'' इति। तत्र जगज्जन्माद्यनुकूलज्ञानसत्त्वे किं प्रमाणमिति जिज्ञासायां वदति धर्मराजाध्वरीन्द्रः– ईश्वरस्य तावदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानसद्भावे ''यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते[16]'' इति श्रुतिर्मानम्। जगज्जन्माद्यनुकूलचिकीर्षासत्त्वे किं प्रमाणमिति ज़िज्ञासायां वदति तादृशचिकीर्षासद्भावे ''सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय[17]'' इत्यादिश्रुतिर्मानम्। जगज्जन्माद्यनुकूलकृतिसत्त्वे किं प्रमाणमिति जिज्ञासायां प्रोक्तं तादृशकृतौ च ''तन्मनोऽकुरुत[18]'' इत्यादिवाक्यम्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि जायन्ते विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।

अन्येषां मतम् :– केचन आचार्याः कार्यानुकूलज्ञानवत्त्वं कर्तृत्वमिति वदन्ति। तथा चोक्तं तेषां मतं सिद्धान्तलेशसंग्रहे–

"कार्यानुकूलविज्ञानमात्रं सा नेतरे तयोः।
कार्यत्वेनानवस्थानादिति चान्ये प्रचक्षते"[19]।।54

''अन्ये तु चिकीर्षाकर्तृत्वनिर्वाहाय चिकीर्षाकृत्यन्तरापेक्षायामनवस्थाप्रसङ्गात् कार्यानुकूलज्ञानवत्त्वमेव ब्रह्मणः कर्तृत्वं न च ज्ञानेऽप्येष प्रसङ्गः। तस्य ब्रह्मस्वरूपत्वेनाकार्यत्वात्। एवं च विवरणे जीवस्य सुखादिकर्तृत्वोक्तिः, वीक्षणमात्रसाध्यत्वात् वियदादि वीक्षितम्, हिरण्यगर्भद्वारा वीक्षणाधिकयत्नसाध्यत्वात् भौतिकं स्मितमिति कल्पतरूक्तिश्च सङ्गच्छत इति वदन्ति''[20] इति। एवं च अस्मिन् मते ब्रह्मणः त्रीणि एव लक्षणानि भवन्ति। जगज्जन्मानुकूलज्ञानवत्त्वम्, जगत्स्थित्यनुकूलज्ञानवत्त्वम्, जगल्लयानुकूलज्ञानवत्त्वं चेति। अयमत्र सारः कर्तृपदेन निमित्तकारणस्य ग्रहणं भवति। ततश्च जगज्जन्मनिमित्तकारणत्वम्, जगत्स्थितिनिमित्तकारणत्वम्,

जगल्लयनिमित्तकारणत्वं वा ब्रह्मणः तटस्थलक्षणं वक्तुं शक्यते। अथवा सकलजगन्निमित्तकारणत्वं ब्रह्मणः लक्षणं वक्तुं शक्यते। अत एव सर्वेऽपि वेदान्तिनः ब्रह्मणः निमित्तकारणत्वम् अङ्गीकुर्वन्ति। इच्छापूर्वस्त्रष्टृत्वरूपनिमित्तकारणत्वं च 'सोऽकामयत' इति श्रुतिसिद्धम् इति सङ्गिरन्ते।

अथ द्वितीयं तदस्थलक्षणम् :– वेदान्तपरिभाषाकारः भिन्नमपि ब्रह्मणः तटस्थलक्षणं वदति ''यद्वा निखिलजगदुपादानत्वं ब्रह्मणो लक्षणम्[21]'' इति। अत्र उपादानत्वं किमिति जिज्ञासायां वदति ''उपादानत्वञ्च जगदध्यासाधिष्ठानत्वम्'' इति। नामरूपात्मकस्य प्रपञ्चस्य यः अध्यासः तदाश्रयत्वमित्यर्थः। ब्रह्मणि च निखिलजगतः अध्यासो वर्तते इति कृत्वा निखिलजगदध्यासाश्रयत्वं तत्र संघटते इति कृत्वा भवति लक्षणसमन्वयः। अथवा ''जगदाकारेण विपरिणममानमायाधिष्ठानत्वं वा''[22] । ब्रह्मणि समाश्रिता माया तत्तन्नामरूपाकारेण क्रमेण परिणमते इति तादृश्या मायायाः आश्रयत्वं ब्रह्मणि विद्यते नान्यत्रेति नाव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवानां लक्षणदोषाणामवकाशः इति भवति तादृगुपादानत्वं लक्षणं ब्रह्मण इति भावः। परिदृश्यमानोऽयं प्रपञ्चः कस्मादुत्पद्यते कोऽस्य कर्तेति स्वभावत एव जनाः जिज्ञासन्ते। तद्विज्ञानार्थं स्वेतरसकलप्रमाणेभ्यः प्रबला परमप्रमाणभूता च श्रुतिः "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्", "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय", इत्यद्वितीयब्रह्मण एव जगत्सृष्टिं दर्शयति। एवं ब्रह्मणः जगदुत्पत्तिं तथा तस्य सृष्टेः प्रागद्वितीयत्वं च बोधयन्ती श्रुतिः ब्रह्मैव जगतः उपादानकारणं निमित्तं चेत्यवगमयति। अत एव प्रत्यक्षादिप्रमाणैः सत्त्वेन प्रतीयमानस्य द्वैतप्रपञ्चस्य मिथ्यात्वम्। अद्वितीयब्रह्मण एव सत्यत्वं ग्राहयन्ती श्रुतिरर्थवती। न ह्यज्ञानमूलकं प्रत्यक्षादिसिद्धं द्वैतं पुनः शास्त्रोपदेशविषयतामर्हति। यथाहुः– अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत् इति।

अत्र केचित् ईश्वरो जगन्निमित्तमात्रम् ईक्षापूर्वककर्तृत्वात् इत्यनुमानं लम्बमानो वदेत् अत्र हेतुपक्षयोः सिद्धौ श्रुतिरुपजीव्यते न वा इति। श्रुतिनैरपेक्ष्येण ईश्वरसिद्धिरिति चेत् अनुमानात् प्रागीश्वरस्यैवासिद्धिः। अत ईक्षणकर्तुरसिद्धत्वादाश्रयसिद्धो हेतुः। तथा जगन्निमित्तत्वमात्ररूपविशेषणं प्रति विशेष्यभूतस्य पक्षस्य अप्रसिद्धत्वात् अप्रसिद्धविशेष्यः पक्षः। यदि तु श्रुत्या ईश्वरसिद्धिरुच्यते, तर्हि श्रुतिर्यादृशमीश्वरमवगमयति तादृशोऽभ्युपगन्तव्यः। श्रुतिर्हि उभयकारणत्वमीश्वरस्य दर्शयति। तत्तथैव स्वीकार्यम् उपजीव्यविरोधात्।

ब्रह्मणः अभिन्ननिमित्तोपादानत्वसमर्थनम् :– अथ पूर्वोक्तप्रतिपादनेन ब्रह्मणः जगतः निमित्तकारणत्वम् उपादानकारणत्वं च सिद्धम्। किन्तु एतद्द्वयमपि न युक्तम्। कारणं हि जगतः निमित्तकारणत्वे स्वीकृते ''तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'' इति श्रुतिप्रतिपादितं कार्यव्यापित्वं ब्रह्मणः न स्यात्, निमित्तस्य दण्डादेः स्वकार्यघटादिव्यापित्वाभावदर्शनात्। एवमेव ब्रह्मणः उपादानकारणत्वमपि न सम्भवति। कारणं हि उपादानकारणत्वे स्वीकृते ''कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते'' इति नियमेन सांसारिकजडप्रपञ्चस्यापि नित्यत्वं चेतनत्वञ्चापद्येत। एवञ्च संसारस्य निमित्तकारणत्वम् उपादनकारणत्वं वा ब्रह्मणः न सम्भवति इति चेत् श्रुणु – जगतः कार्यजातस्य कर्तृत्वेन ब्रह्म निमित्तकारणम्, मायायां परिणाम्युपादनत्वेऽपि स्वाधिष्ठानं विना माया न किञ्चित् कर्तुं प्रभवति इति हेतोः मायाधिष्ठानं ब्रह्म उपादानकारणम्। एवं प्रकारेण एकमेव ब्रह्म जगतः निमित्तकारणमुपादानकारणं च। अत एव च जगतः अभिन्ननिमित्तोपादानकारणं ब्रह्मेति उच्यते। तथा चोक्तमपि वेदान्तसारे– ''शक्तिद्वयवदज्ञानोपहितं चैतन्यं स्वप्रधानतया निमित्तं स्वोपाधिप्रधानतयोपादनं च भवति। यथा लूता तन्तुकार्यं प्रति स्वप्रधानतया निमित्तं स्वशरीरप्रधानतयोपादानं च भवति''[23] । अयं भावः एक एव चेतनात्मा संसारस्य निमित्तम् उपादानञ्चोभयं कारणमिति भावः। तदेवोर्णनाभिदृष्टान्तेन स्पष्टीक्रियते वेदान्तसारकृता। तथाहि यथा लूता स्वतन्तुरूपकार्यं प्रति चैतन्यप्रधानतया निमित्तकारणम्, स्वशरीरप्रधानतया चोपादानकारणम्। एवमेव अज्ञानोपहितात्मा चैतन्यप्रधानतया सांसारिकप्रपञ्चस्य निमित्तकारणम्, अज्ञानप्रधानतया चोपादानकारणम्।

अत एव प्रोक्तं–

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्[24]"।।

वेदान्तदर्शनकोशे अपि प्रोक्तमस्ति – ''जन्माद्यस्य यतः इत्यनेन ब्रह्मैव जगतो जन्मस्थितिलयहेतुः। इदं च ब्रह्म जगतो निमित्तकारणं तथा उपादानकारणम्। जगतो विश्वप्रपञ्चस्य कार्यजातस्य कर्तृत्वेन ब्रह्म निमित्तकारणम्, मायायां परिणाम्युपादानत्वे मायाया अधिष्ठानत्वेन स्वाधिष्ठानं विना माया न किञ्चित् कर्तुं प्रभवति इति हेतोः मायाधिष्ठानं ब्रह्म उपादानकारणम्। एवं प्रकारेण ब्रह्म विश्वप्रपञ्चस्य निमित्तकारणम् उपादानकारणम् अतो अभिन्ननिमित्तोपादानकारणम्[25]'' इति।

अथ निमित्तकारणत्वस्वीकारे ''तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'' इति श्रुतिप्रतिपादितं कार्यव्यापित्वं ब्रह्मणः कथं स्यादिति चेदुच्यते जगतः उपादानकारणत्वस्वीकारेण श्रुतिप्रतिपादितस्य ब्रह्मणः कार्यव्यापित्वं न हन्यते। अथ उपादानत्वे स्वीकृते सति जगतः चेतनत्वापत्तिः इदमपि न वक्तव्यम्। कारणं हि इदं जगत् ब्रह्मणो विवर्तो न परिणामः। अतोऽस्य प्रधानकारणाज्ञानापेक्षया परम्परया सम्बद्धस्य ब्रह्मणः उपादानत्वेऽपि नास्मिंस्तद्गुणाचैतन्यानित्यत्वादिसम्भवः, स्वरूपापिरत्यागेन स्वरूपान्तरप्रदर्शकत्वस्यैव हि विवर्तकत्वात् चैतन्यनिष्ठरज्जुविषयकाज्ञानस्य रज्जुस्वरूपापरित्यागेन सर्पस्वरूपान्तरप्रदर्शनवत्।

अपि च ब्रह्मणः उपादानत्वं यत्नशतेनापि प्रत्याख्यातुं न शक्यते। ब्रह्मसूत्राणि किल वेदान्तार्थनिर्णायकानि। तानि च ब्रह्मणः उपादानत्वं निर्विवादं प्रतिपादयन्ति। तथा हि सूत्रितवान् भगवान् वेदव्यासः प्रथमाध्यायस्य तुरीयपादे ''प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्'' इति। तस्य च अयमर्थः ब्रह्म प्रकृतिश्च उपादानं च भवति। अत्र चशब्दात् निमित्तत्वम् आक्षिप्यते। तथा च ब्रह्म जगतः उपादानं निमित्तं च भवति। तत्र सूत्रकारीयो हेतुः प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् इति। येन विज्ञातेन सर्वमिदं विज्ञातं स्यात् इति छान्दोग्योपनिषदि वाक्यम्। यथा सोम्येकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् इति दृष्टान्तवाक्यम्। अयं च दृष्टान्तः उपादानत्वपरः स्पष्टः।

अथ ब्रह्मभिन्नं सर्वमेव वस्तु ब्रह्मणि अध्यस्तम्। अध्यासमूलका एव च सर्वे व्यवहाराः इत्यभ्युपगमे दुःखमपि न तात्त्विकम् अपि तु ब्रह्मणि अध्यस्तम्। अध्यासमूलक एव च दुःखस्यापि व्यवहारः इति वक्तव्यम्। तथा च घटः इष्टः इतिवत् दुःखम् इष्टम् इत्यपि व्यवहारः सार्वलौकिकः स्यात्। न च भवति तथा। तस्मान्नाध्यासमूलत्वं व्यवहारमात्रस्येति तु नैव शङ्कनीयम्, यतोहि कार्याणाम् अमायिकत्वपक्षे कारणेन कार्यकल्पनासम्भवेऽपि मायिकत्वपक्षेन तत्सम्भवः। मायाया दुर्गम्यतया तदसम्भवात्। अतस्तादृशस्थले कार्यदर्शनेनैव कारणकल्पनं, न त्वन्यथा। प्रसिद्धं चैतत् ऐन्द्रजालिकक्रीडास्थले सति चैवं कार्यमात्रस्य मायिकत्वं व्यवस्थापयतामस्माकं मते कार्यदर्शनेनैव कारणमनुमेयम्। प्रकृते च दुःखादौ इष्टत्वव्यवहारात्मकस्वकार्यस्याभावेन कारणीभूतस्यानन्दांशस्याभावः। तदभावेन तत्कारणस्याभाव एव स्वीकर्तव्यः, न तु अध्यासः तत्कार्यभूतो व्यवहारः शक्य आपादयितुम्।

अयं भावः :– इदं सर्वमिति श्रुत्योपदिश्यमानं ब्रह्मणः सर्वात्मत्वं न गच्छेत् संगतिम्, यदि न भवेत् ब्रह्म जगदध्यासाधिष्ठानम्। तत्त्वे तु शुक्तौ इदं रजतमितिवद्भवितुमर्हति तादात्म्यव्यपदेशः इति। एवं च सच्च त्यच्चेति प्रतिपद्यमानं ब्रह्मणः उभयरूपभवनमपि त्यद्भूतप्रपञ्चोपादानत्वे एव संगच्छते न भिन्नत्वे। कुविन्दः पटोऽभवदिति व्यपदेशाभावात्। बहु स्यामिति बहुभवनसंकल्पोऽपि ऐन्द्रजालिकस्य व्याघ्रो भवेयम्, गजो भवेयम् इत्यादिसंकल्पवत् ब्रह्मणो निरुक्तोपादानकत्वकल्पः एवावकल्पते, न तु निमित्तत्वकल्पे इति।

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्"[26]।।

अयं भावः :– घटः अस्ति, घटः भाति, घटः इष्टः, घटस्य रूपम्, घटस्य नाम इति भवन्ति व्यवहाराः सर्वैर्व्यावहारिकैः क्रियमाणाः। तत्र अस्तीत्यनेन ब्रह्मणः सदंशः ख्याप्यते। भातीत्यनेन च तस्य चिदंशः ख्याप्यते। इष्टः इत्यनेन तस्य आनन्दांशः ख्याप्यते। रूपमित्यनेनाकारः। नाम इत्यनेन च वाचकः शब्दः। तत्राद्यत्रयेण सच्चिदानन्दांशात्मकैः अस्ति–भाति–प्रियांशैः ब्रह्म रूप्यते। नामरूपाभ्यां तु जगत्। तेषां तत्स्वरूपलक्षणत्वात् इति।

अत्र ब्रह्मभेदः :– ब्रह्म निर्गुणं निराकारं भेदशून्यं च विद्यते, किन्तु उपाधिभेदात् तत्रापि भेदो भवति। एवञ्च ब्रह्म द्विविधं सोपाधिकं निरुपाधिकं च। अज्ञानोपाधिकम् ऐश्वरं रूपं जगदात्मकं विश्वरूपं ब्रह्म सोपाधिकम् इति ईश्वरः इति चोच्यते। उपाधिरहितं शुद्धं सर्वव्यापकं ब्रह्म निरुपाधिकम् इति निरूपाख्यमिति चोच्यते। यथा परस्य सोपाधिकं निरुपाधिकं च यद्रूपं ध्येयत्वेन ज्ञेयत्वेन चोक्तमित्यर्थः। सोपाधिकमैश्वरं रूपमशेषजगदात्मकं विश्वरूपाख्यमधिकृत्याध्यायान्तरमवतारयन्नन्तरप्रश्नोपयोगित्वेन वृत्तं कीर्तयति। तथा चोक्तं वार्तिकसारे –

''सोपाधिर्निरुपाधिश्च द्विधा ब्रह्म समुच्यते।
सोपाधिकः स्यात्सर्वात्मा निरुपाख्योऽनुपाधिकः।।
जक्षन्क्रीडन्रतिं प्राप्त इति सोपाधिकस्य तु।
छान्दोग्ये सर्वकामाप्तिः सार्वात्म्यात्स्पष्टमीरिता''[27]।।

अत्र निष्कर्षः :– एवञ्च सच्चिदानन्दादीनि ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणानि सन्ति। एवं जगज्जन्मादिकारणत्वम् अथवा निखिलजगदुपादानत्वं ब्रह्मणः तटस्थलक्षणं भवति। ब्रह्मैव अस्य जगतः निमित्तकारणमुपादानकारणं च भवति इति भावः। तच्चैकं विद्यते। तस्य प्राप्तिरेव मोक्षः।

संदर्भ–सूची :–

1. भावबोधिनीसंस्कृतव्याख्योपेतवेदान्तसारः / पत्रसंख्या 13 / प्रकाशनवर्षः 2008 / प्रकाशकः चौखम्बाविद्याभवनम्।
2. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 52 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
3. विष्णुपुराणम्।
4. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 53 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
5. शाङ्करवेदान्तदर्शनकोशः / / प्रकाशनवर्षः 1998 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
6. शाङ्करभाष्योपेतब्रह्मसूत्रम् / पत्रसंख्या 137 / प्रकाशनवर्षः 2001 / प्रकाशकः श्रीकैलासविद्याप्रकाशनम्, हृषीकेशः।
7. वेदान्तसिद्धान्तसूक्तिमञ्जरीसहितसिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः / पत्रसंख्या 87 / प्रकाशनवर्षः 2005 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
8. वेदान्तसिद्धान्तसूक्तिमञ्जरीसहितसिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः / पत्रसंख्या 87 / प्रकाशनवर्षः 2005 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
9. सपरिशिष्टप्रकाशहिन्दीभाष्योपेतसर्वदर्शनसङ्ग्रहः / पत्रसंख्या 759 / प्रकाशनवर्षः 2006 / चौखम्बाविद्याभवनम् वाराणसी।
10. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 53 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
11. वेदान्तसिद्धान्तसूक्तिमञ्जरीसहितसिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः / पत्रसंख्या 87 / प्रकाशनवर्षः 2005 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
12. वेदान्तसिद्धान्तसूक्तिमञ्जरीसहितसिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः / पत्रसंख्या 247 / प्रकाशनवर्षः 2005 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
13. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 53 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
14. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 54 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
15. वेदान्तपरिभाषापरिभाषासंग्रहव्याख्या / पत्रसंख्या 231 / संस्करणम् 1883 /
16. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 53 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
17. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 53 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी
18. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 53 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
19. वेदान्तसिद्धान्तसूक्तिमञ्जरीसहितसिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः / पत्रसंख्या 87 / प्रकाशनवर्षः 2005 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
20. वेदान्तसिद्धान्तसूक्तिमञ्जरीसहितसिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः / पत्रसंख्या 249 / प्रकाशनवर्षः 2005 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
21. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 54 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
22. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 54 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
23. भावबोधिनीसंस्कृतव्याख्योपेतवेदान्तसारः / पत्रसंख्या 30 / प्रकाशनवर्षः 2008 / प्रकाशकः चौखम्बाविद्याभवनम्।
24. भावबोधिनीसंस्कृतव्याख्योपेतवेदान्तसारः / पत्रसंख्या 30 / प्रकाशनवर्षः 2008 / प्रकाशकः चौखम्बाविद्याभवनम्।
25. शाङ्करवेदान्तदर्शनकोशः / पत्रसंख्या 210 / प्रकाशनवर्षः 1998 / प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी।
26. मूलवेदान्तपरिभाषा / पत्रसंख्या 54 / प्रकाशनवर्षः 2008 / श्रीदक्षिणामूर्तिमठः वाराणसी।
27. शाङ्करवेदान्तकोषः / पत्रसंख्या 484 / संस्करणम् 1998 / प्रकाशकः संसंविवि वाराणसी।

Digital Literacy and The National Education Policy (NEP) 2020: A Transformational Approach

Jyoti Mishra*

Abstract :- Digital literacy is an essential skill in the 21st century, empowering individuals to navigate, evaluate, and create information using digital technologies. The National Education Policy (NEP) 2020 in India emphasizes the integration of digital literacy into the education system to bridge the digital divide and enhance learning outcomes. This paper explores the significance of digital literacy in the context of NEP 2020, its impact on various stakeholders, challenges in implementation, and strategies to enhance digital education in India. NEP 2020 integrates digital education across all levels to bridge the digital divide and ensure equitable access to quality education. A key aspect of NEP 2020 is the promotion of digital infrastructure, such as the National Educational Technology Forum (NETF), to enhance teaching-learning experiences through technology. It advocates the use of e-learning platforms like DIKSHA, SWAYAM, and National Digital Library to provide multilingual, interactive, and inclusive content. Additionally, the policy encourages blended learning approaches, ensuring a balance between online and offline education. The policy also addresses challenges such as cyber security, misinformation, and ethical use of technology, ensuring that students develop responsible digital citizenship. By fostering a technologically empowered education system, NEP 2020 aims to build a knowledge-based society that aligns with India's vision of Atmnirbhar Bharat (self-reliant India). In this paper the researcher has explained the concept and importance of digital literacy in reference to NEP 2020. The key concepts which were evolved through analysis in this paper can be addressed as; Digital literacy is a transformative step towards an inclusive, modern, and globally competitive education system. By harnessing the power of technology, it ensures that every learner, regardless of socio-economic background, has access to high-quality education, paving the way for a digitally skilled and empowered generation.

Keywords:- Digital Literacy; National Education Policy.

Introduction :- Digital literacy has become a fundamental skill in the 21st century, essential for education, employment, and societal engagement. It encompasses the ability to use digital tools effectively, access online resources, and critically evaluate digital content. According to the UNESCO Institute for Statistics (2018), Digital Literacy is "the ability to access, manage, understand, integrate, communicate, evaluate, and create information safely and appropriately using digital technologies for employment, decent jobs, and entrepreneurship." This concept include Recognizing its significance, the National Education Policy (NEP) 2020 has introduced a transformational approach to integrating digital literacy into the Indian education system.

NEP 2020 envisions a technologically empowered education sector, promoting digital learning and bridging the digital divide. The policy emphasizes the use of technology in classrooms, online learning platforms, and digital resources to enhance accessibility and inclusivity. It introduces initiatives such as the National Educational Technology Forum (NETF) to foster innovation, collaboration, and knowledge sharing. Additionally, NEP 2020 encourages the integration of artificial intelligence, coding, and computational thinking from an early stage, ensuring students are equipped for future challenges strengthen digital literacy, NEP 2020 highlights teacher training programs to equip educators with digital pedagogies and tools. Special emphasis is placed on integrating coding, artificial intelligence, and data science into the curriculum, preparing students for future careers. Moreover, digital literacy initiatives target marginalized communities, promoting accessibility and inclusivity in education.

The policy also addresses disparities in digital access by advocating for infrastructure development, teacher training, and the creation of high-quality e-content in multiple languages. By

---

***Research Scholar, Department of Education, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.**

incorporating digital literacy into the curriculum, NEP 2020 aims to make education more interactive, engaging, and skill-oriented.

Overall, NEP 2020 marks a paradigm shift in Indian education by embedding digital literacy as a core competency. Its holistic approach not only modernizes learning but also prepares students to navigate the digital world responsibly and effectively, fostering innovation, creativity, and lifelong learning**.**

The rapid advancement of technology has reshaped the educational landscape, making digital literacy a critical skill for students, teachers, and society. The NEP 2020, introduced by the Government of India, aims to revolutionize education by integrating technology at all levels. This policy emphasizes equitable access to digital resources, teacher training, and curriculum reforms to enhance digital competencies.

Digital Literacy: Digital literacy refers to the ability to find, evaluate, create, and communicate information using digital technologies. Gilster (1997)defined digital literacy as the "ability to understand and use information in multiple formats from a wide range of sources when it is presented via computers". It encompasses skills in using digital devices, navigating the internet, understanding digital content, and ensuring cybersecurity. A digitally literate person can effectively engage with online platforms, distinguish credible sources from misinformation, and utilize digital tools for communication, collaboration, and problem-solving.

Digital literacy goes beyond basic computer skills; it involves critical thinking, ethical considerations, and adaptability in an ever-evolving digital landscape. It includes competencies such as understanding digital privacy, using productivity software, engaging in responsible social media behavior, and leveraging online resources for learning and work.

Importance of Digital Literacy

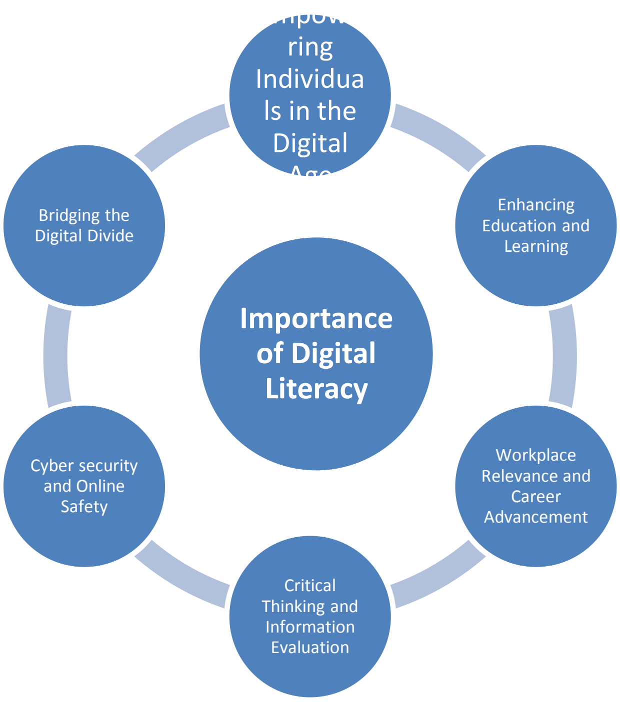

- **Empowering Individuals in the Digital Age :-** In a world driven by technology, digital literacy is essential for personal and professional success. It enables individuals to access information, apply for jobs, engage in e-learning, and participate in the digital economy. Without digital literacy, people risk being excluded from many opportunities.
- **Enhancing Education and Learning-** Digital literacy transforms education by enabling students to access online resources, use digital collaboration tools, and develop research skills. Teachers can integrate digital tools to create interactive lessons, making learning more engaging and

effective. Online learning platforms have further highlighted the need for digital literacy in modern education.

- **Workplace Relevance and Career Advancement-** In almost every profession, digital skills are now a prerequisite. From data analysis to virtual communication, employers expect employees to be proficient in using technology. Digital literacy enables individuals to adapt to workplace technologies, work remotely, and use digital tools for productivity and efficiency.
- **Critical Thinking and Information Evaluation-** The internet is filled with vast amounts of information, including misinformation and fake news. Digital literacy helps individuals critically assess sources, differentiate between credible and unreliable information, and make informed decisions. This skill is crucial in an era where social media can spread false information rapidly.
- **Cyber security and Online Safety-** Understanding digital security practices is a vital aspect of digital literacy. People must be aware of threats like phishing, identity theft, and online scams. A digitally literate person knows how to protect personal information, use strong passwords, and recognize cybersecurity risks.
- **Bridging the Digital Divide-** Digital literacy helps close the gap between those who have access to digital resources and those who do not. It fosters inclusion by ensuring people from all backgrounds can participate in digital society, access government services, and benefit from digital advancements.

Digital literacy is essential for lifelong learning, employability, and participation in the digital economy. It empowers individuals to critically assess online content, prevent misinformation, and engage in responsible digital citizenship.

Digital Literacy in the Context of NEP 2020

Digital literacy refers to the ability to access, evaluate, create, and communicate information using digital technologies in a safe, effective, and responsible manner. It goes beyond basic computer skills to encompass critical thinking, problem-solving, and ethical considerations in the digital landscape. With the growing integration of technology in all aspects of life, digital literacy has become essential for education, employment, and social participation.

The National Education Policy (NEP) 2020 emphasizes the importance of digital literacy as a key component of 21st-century education. Recognizing the increasing role of technology in learning, the policy aims to integrate digital tools into the education system to enhance teaching and learning experiences. NEP 2020 envisions a digitally empowered India by ensuring that students, teachers, and institutions are equipped with the necessary digital skills to thrive in a rapidly evolving world.

One of the core aspects of digital literacy under NEP 2020 is accessibility. The policy stresses the need to bridge the digital divide by providing affordable and inclusive access to digital resources. This includes the development of digital infrastructure, online learning platforms, and digital content in multiple languages to cater to diverse learners across urban and rural areas.

Furthermore, digital literacy in NEP 2020 extends beyond mere familiarity with digital devices. It incorporates cyber security awareness, ethical online behaviour, and the ability to discern credible information from misinformation. As India moves toward a knowledge-based economy, these skills are crucial in fostering responsible digital citizens who can navigate the complexities of the internet safely and effectively.

The policy also promotes teacher training programs to enhance digital competencies among educators. This ensures that teachers can integrate technology into pedagogy, making learning more interactive and engaging. Additionally, NEP 2020 encourages collaboration between government bodies, private sectors, and educational institutions to create a robust digital learning ecosystem.

NEP 2020 highlights the importance of digital literacy in achieving educational equity and excellence. Key provisions include

National Education Policy (NEP) 2020 emphasizes digital literacy as a crucial factor in achieving educational equity and excellence in India. Recognizing the transformative potential of technology, NEP 2020 introduces several key provisions aimed at integrating digital tools into the education system, enhancing learning opportunities, and bridging the digital divide.

- Integration of Digital Technology in Education: NEP 2020 strongly advocates for the integration of digital technology at all levels of education. The policy envisions the use of technology to improve access to quality education, especially in remote and underserved areas. Digital tools, online learning platforms, and virtual labs are encouraged to supplement traditional teaching methods, making education more interactive and engaging.
- Creation of the National Educational Technology Forum (NETF): A major initiative under NEP 2020 is the establishment of the National Educational Technology Forum (NETF). This autonomous body will facilitate the exchange of ideas, research, and best practices in educational technology. NETF will provide policy recommendations and support institutions in adopting emerging technologies to enhance learning experiences.
- Expansion of Digital Infrastructure: The policy emphasizes strengthening digital infrastructure across schools and higher education institutions. It calls for increased investment in digital resources, including broadband connectivity, smart classrooms, and affordable computing devices. The goal is to ensure that every student, regardless of their socio-economic background, has access to technology-enabled learning.
- E-Content Development and Accessibility: NEP 2020 promotes the development of high-quality e-learning content in multiple languages. The Digital Infrastructure for Knowledge Sharing (DIKSHA) platform plays a pivotal role in making digital educational resources available to students and teachers. The policy also stresses the need for inclusive digital content, catering to students with disabilities through assistive technologies like screen readers and sign language resources.
- Encouragement of Online and Blended Learning: To make education more flexible and accessible, NEP 2020 encourages the adoption of online and blended learning models. Massive Open Online Courses (MOOCs) and e-learning platforms such as SWAYAM and NPTEL are promoted to provide self-paced learning opportunities. These initiatives help students and professionals upgrade their skills without geographical constraints.
- Digital Literacy for Teachers and Students: Teacher training programs will incorporate digital literacy to ensure educators are well-equipped to use technology effectively in classrooms. Continuous professional development through online modules will help teachers stay updated with the latest pedagogical tools. Additionally, students will be encouraged to develop digital skills, including coding, data literacy, and cybersecurity awareness, preparing them for future job markets.
- Bridging the Digital Divide: NEP 2020 acknowledges the digital divide as a major challenge and aims to address it through targeted interventions. Special initiatives will support students from rural and economically disadvantaged backgrounds in accessing digital resources. The policy also calls for collaborations between the government, private sector, and non-profits to provide affordable internet access and digital devices.

NEP 2020’s emphasis on digital literacy is a significant step toward achieving educational equity and excellence in India. By leveraging technology, the policy aims to.

Challenges in Implementing Digital Literacy under NEP 2020

The National Education Policy (NEP) 2020 recognizes digital literacy as a key driver for achieving educational equity and excellence in India. However, the successful implementation of digital literacy initiatives faces several challenges. These hurdles stem from infrastructural limitations, socio-economic disparities, lack of digital skills among educators, and concerns regarding data security and content relevance.

1. **Digital Divide and Accessibility Issues-** One of the most significant challenges is the digital divide between urban and rural areas. Many schools, particularly in remote regions, lack basic digital infrastructure such as high-speed internet, computers, and smart devices. Students from economically weaker sections also struggle to afford digital devices, limiting their ability to participate in online learning.
2. **Limited Digital Infrastructure in Schools-** Despite efforts to enhance digital access, many government schools still lack essential infrastructure. Unstable electricity supply, inadequate

internet connectivity, and outdated technology hinder the seamless integration of digital learning tools in classrooms. Without proper infrastructure, the policy's vision of technology-driven education cannot be fully realized.

3. **Lack of Digital Literacy Among Teachers-** Teachers play a crucial role in implementing digital education, yet many educators lack adequate digital literacy skills. Traditional teaching methods have dominated the Indian education system for decades, and many teachers require extensive training to adapt to new digital tools and pedagogies. Without proper capacity building, the effective use of digital platforms remains a challenge.
4. **High Cost of Digital Education-** While online learning platforms and digital tools have expanded access to education, they often come at a high cost. Subscriptions to e-learning resources, purchase of devices, and maintenance of digital infrastructure require significant financial investment. Government funding and private sector partnerships are needed to make digital education affordable for all students.
5. **Language and Content Barriers-** Most digital learning resources are available in English, limiting their accessibility to students from non-English-speaking backgrounds. India’s diverse linguistic landscape necessitates the development of multilingual digital content to ensure inclusivity. Additionally, localized content that aligns with regional curricula is needed to make digital education more effective.
6. **Cybersecurity and Data Privacy Concerns-** With the rise in online learning, concerns about data privacy and cybersecurity have also increased. Students and teachers using digital platforms are vulnerable to cyber threats, hacking, and misuse of personal information. Establishing strong data protection laws and cybersecurity measures is essential to safeguard users.
7. **Resistance to Change-** Many educators, parents, and institutions are resistant to the shift from traditional classroom learning to digital education. There is skepticism about the effectiveness of online learning, particularly in subjects that require hands-on experience, such as science and vocational training. Addressing these concerns requires awareness programs and demonstrations of the benefits of digital literacy.
8. **Assessment and Evaluation Challenges-** Digital education requires new methods of assessment that go beyond traditional exams. Ensuring academic integrity in online assessments, preventing cheating, and developing robust evaluation mechanisms remain key challenges in the digital transition.

While NEP 2020 presents a visionary approach to integrating digital literacy in education, its successful implementation requires addressing these challenges. Bridging the digital divide, strengthening infrastructure, training teachers, and ensuring cybersecurity are critical steps in realizing the policy’s goals. A collaborative effort between the government, private sector, and educational institutions is necessary to overcome these barriers and make digital literacy accessible to all students in India.

Strategies for Enhancing Digital Literacy in India

Digital literacy is essential for empowering individuals, bridging the digital divide, and fostering socio-economic development. With the National Education Policy (NEP) 2020 emphasizing digital literacy in education, India must adopt comprehensive strategies to ensure widespread digital empowerment. We can enlist some key strategies for enhancing digital literacy in India as;

1. Strengthening Digital Infrastructure
2. Capacity Building for Teachers and Educators
3. Affordable Digital Devices and Resources
4. Multilingual and Inclusive Digital Content
5. Promoting Digital Literacy Programs at the Grass roots Level
6. Enhancing Cybersecurity Awareness
7. Integration of Digital Literacy in School Curricula
8. Leveraging Emerging Technologies

Enhancing digital literacy in India requires a multi-pronged approach involving infrastructure development, teacher training, affordability, localized content, cybersecurity awareness, and grassroots

initiatives. A coordinated effort between the government, private sector, and civil society is essential to build a digitally empowered nation and bridge the digital divide effectively.

Conclusion :- The National Education Policy (NEP) 2020 marks a significant shift in India's education system, emphasizing digital literacy as a key component of learning. Recognizing the transformative potential of technology, the policy envisions a future where digital tools enhance accessibility, inclusivity, and quality in education.

NEP 2020 integrates digital literacy by promoting the use of online learning platforms, virtual labs, and AI-driven educational resources. It encourages the creation of a National Educational Technology Forum (NETF) to facilitate the exchange of innovative digital solutions. Additionally, the policy supports blended learning models, ensuring that students develop essential digital skills alongside traditional education. One of the most notable aspects of NEP 2020 is its focus on bridging the digital divide. By advocating for affordable internet access and digital infrastructure, the policy aims to empower students from diverse socio-economic backgrounds. Initiatives such as e-content in regional languages and teacher training programs further strengthen digital literacy at all levels. Moreover, digital literacy under NEP 2020 extends beyond basic computer skills. It fosters critical thinking, cybersecurity awareness, and responsible digital citizenship, preparing students for the rapidly evolving global landscape. The policy also emphasizes coding and computational thinking from an early age, ensuring students are equipped for future careers in technology-driven industries.

In conclusion, NEP 2020's focus on digital literacy represents a paradigm shift in education. By integrating technology into the learning ecosystem, the policy not only enhances student engagement but also fosters innovation and lifelong learning. If implemented effectively, NEP 2020 can bridge educational gaps, democratize knowledge, and prepare India's youth for the digital age, ultimately contributing to the nation's socio-economic development.

References :-

1. Achuonye A. (2012). A comparative study of computer literacy in Urban and Rural in Rivers State of Nigeria. Journal of Sociological Research.2(2):563-578.
2. A. Chandra, "National education policy 2020: a critically analysed spectrum to higher education," SSRN Electronic Journal, 2021. [Online]. Available https://doi.org/10.2139/ssrn. 3942912.
3. B. S. Kamble, M. S. Vanaki, A Digital literacy and moral sensitivity among higher secondary students of Kerala. Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in :8443/jspui/handle/10603/292709.
4. Digital literacy. Retrieved from https://literacy.ala.org.
5. Gilster P. Digital literacy. New York: Wiley and Computer Publishing; c1997.
6. Kaur G. Digital Life: Boon or bane in teaching sector on COVID-19. CLIO an Annual Interdisciplinary Journal of History. 2020;6(6):416-427
7. Kumari, P. & Naaz, I. (2020), Digital learning through MOOCs: Advantages, Outcomes & Challenges. Sambodhi, UGC CARE Journal, Vol-43, No.-4, (VII), pp. 18-22.
8. Ministry of Human Resource Development. National Education Policy 2020 Ministry of Human Resource Development Government of India; c2020.
9. National Digital Literacy Mission. (2019). Nasscom Foundation. https://nasscomfoundation.org/ national-digital-literacy-mission/ (Accessed: 29 May 2023). Sakshi Post. (2022). The importance of Digital Literacy in India. Sakshi Post. https://www.sakshipost.com/news/technology/importance-digital-literacy-india -164699 (Accessed: 28 May 2023
10. P. Jha, and P. Parvati, National Education Policy, 2020, Governance at Banks, Economic & Political Weekly, Vol. 55, No. 34, pp. 14-17,2020.
11. Shabana, T. S. Z., Saleem, A. S., & Sadik B. M. (2014). Digital Literacy Awareness among Arts and Science College Students in Tiruvallur District. International Journal of Managerial Studies and Research (IJMSR), 2(4).
12. UNESCO-UIS. (2018). A global framework of reference on digital literacy skills for indicators. Retrieved from https://uis.unesco.org/sites/default/files/documents/ip51-global- framework-reference-digital- literacy-skills-2018-en.pdf
13. Verma, A. & Naaz, I. (2021). The Divides of Online Learning during Covid-19. Edu link: Journal of Education, Jan-Dec-2021, Volume-7, page No.32-43. ISSN: 2350-1170

Developed India @ 2047 : 'Social Transformation by Providing a Safe Passage for Violence Against Women (VAW) through One Stop Centres (OSCs) in Chhattisgarh'

Anita Ekka*

Abstract:- "violence is not just a personal tragedy; it is a societal failure that demands collective action." As India strides toward its vision of becoming a developed nation by 2047, one of the most pressing challenges is ensuring the safety and empowerment of women. Violence against women (VAW), remains a significant barrier to social progress, particularly in rural and tribal areas. In this context, Chhattisgarh has emerged as a beacon of hope, setting the stage for social transformation through the establishment of One Stop Centres (OSCs). These centres serve as a lifeline, providing women who have experienced violence with immediate access to essential services, including medical care, legal assistance, psychological support, and temporary shelter. The OSCs are not just physical spaces but symbols of empowerment, offering women a "safe harbor" and a chance to rebuild their lives. In line with India's aspirations for 2047, these centres are fostering a culture of safety and justice, transforming the social fabric by addressing one of the most persistent forms of inequality gender-based violence. The One Stop Centres in Chhattisgarh are at the forefront of this social revolution, ensuring that women have a "fair shot" at overcoming the obstacles posed by violence and discrimination. Leveraging secondary data sources, this research dissects the effectiveness of OSCs in dismantling systemic barriers, empowering women, and fostering social justice. By providing a holistic approach to addressing violence, the OSCs offer women a "second chance" at reclaiming their autonomy and dignity, while also working towards creating a gender-equal society. The development of these centres aligns with India's broader development goals, where the aim is not only to drive economic growth but also to create an environment where every individual especially women can thrive free from fear and oppression. The OSCs play a pivotal role in transforming the narrative surrounding women's rights in India, offering not just immediate relief but also longterm support and empowerment. As these centres grow and evolve, they become key players in ensuring that women are no longer "silent sufferers" but active participants in shaping their own futures and the future of the nation. This paper delves into the critical role that OSCs play in Chhattisgarh, providing a roadmap for how India can use these platforms as catalysts for social change, paving the way for a more inclusive, just, and equitable society as we approach the India of 2047.

Keywords : Violence Against Women (VAW), One Stop Centres (OSCs), Women Empowerment, Gender-based violence, Social transformation, Safety and justice, Gender equality.

Introduction :- "Violence against women is not just a personal tragedy; it is a societal failure that demands collective action." Gender-based violence (GBV) remains one of the most pervasive human rights violations, stalling social progress and throwing a wrench into economic development worldwide. India, with its rich cultural heritage and socio-economic diversity, has made significant strides in women's empowerment, yet violence against women (VAW) remains a hard nut to crack, deeply entrenched in patriarchal structures. According to the National Crime Records Bureau (NCRB) 2022, crimes against women in India saw a 15.3% surge compared to 2021, with over 4,45,256 reported cases of domestic violence, sexual assault, and other forms of abuse (NCRB, 2022). Among these, domestic violence cases alone constituted 31.4% of total reported crimes, a wake-up call for stronger institutional intervention (Ministry of Home Affairs, 2023).

*** Research Scholar-Department of Sociology, Pt. Sundarlal Sharma (Open) University Bilaspur, Chhattisgarh.**

VAW in India: A Systemic Challenge :- Despite legal reforms and policy interventions, VAW remains a systemic barrier to gender equality. The United Nations Population Fund (UNFPA, 2023) estimates that one in three Indian women experiences physical or sexual violence in their lifetime. Rural and tribal regions, where social stigma, economic dependence, and patriarchal norms dominate, report even higher incidences of violence (UN Women, 2023). The Global Gender Gap Report 2023 ranked India 127th out of 146 countries, highlighting persistent gender disparities in safety, economic participation, and political empowerment (World Economic Forum, 2023).

The Role of One Stop Centres (OSCS): Addressing Systemic Barriers :- In response to the escalating crisis, the Government of India launched One Stop Centres (OSCs) under the Nirbhaya Fund in 2015, with the objective of providing integrated support to women affected by violence (Ministry of Women and Child Development, 2023). These centres operate as safe havens, offering medical care, legal aid, psychological counseling, police assistance, and shelter services under one roof (National Commission for Women, 2023). As of 2023, 733 OSCs are operational across India, having assisted over 8.3 lakh women in distress (MWCD, 2023).

OSCs in Chhattisgarh: A Regional Beacon of Hope :- Among the states, Chhattisgarh has emerged as a model for OSC implementation, particularly in tribal and rural communities. The state government has set up 27 OSCs, covering all districts, catering to women from marginalized backgrounds who lack access to justice and rehabilitation services (Government of Chhattisgarh, 2023). Since their inception, these OSCS have provided support to over 15,000 women, with 80% of the cases related to domestic violence and sexual assault (Chhattisgarh State Women's Commission, 2023). Comparative analysis reveals that states with robust OSCS programs have seen a 12-18% reduction in repeat cases of domestic violence, demonstrating their effectiveness in intervention and prevention (UN Women India, 2023).

Research Significance: A Pathway to Social Transformation :- As India aspires to achieve Developed Nation status by 2047, eradicating gender-based violence is paramount to building an inclusive society. This study critically examines the impact of OSCs in Chhattisgarh, analyzing their role in empowering women, reshaping social structures, and fostering gender equality. By employing secondary data analysis, qualitative research, and statistical evaluation, this paper explores how OSCs serve as catalysts for social transformation, bridging gaps in institutional support and policy implementation. Findings from this research will offer policy recommendations for strengthening OSC frameworks, ensuring that women are not merely survivors but active agents of change in India's journey towards a just and equitable society.

Legislative Framework :- Legal Provisions for Women's Empowerment, Social Justice, Equality, and Security

Category	Key Legal Provisions	Impact
● Women's Empowerment	Legal frameworks empower women by ensuring equal opportunities, protection against discrimination, and access to justice. ✓ Right to Education (Article 21A, RTE Act, 2009) → Increases literacy and workforce participation. ✓ Maternity Benefits Act (1961, Amended 2017) → Supports working women's rights. ✓ Protection of Women from Domestic Violence Act (2005) → Provides legal protection from abuse. ✓ Sexual Harassment of Women at Workplace Act (2013) → Ensures workplace safety. ✓ One Stop Centres (OSCs) → Offer comprehensive support (legal aid, counseling, medical help).	● Women gain economic, social, and political agency, enabling them to make independent decisions.
● **Social**	**Social justice ensures fair treatment and equal access to**	● Legal provisions

Justice	**resources, opportunities, and protection.** ✔ **Article 39(a) & (d) of the Indian Constitution → Promotes equal pay and social justice.** ✔ **SC/ST Prevention of Atrocities Act (1989)** → Protects marginalized women from violence. ✔ **Legal Aid Services Act (1987)** → Provides free legal aid to women in need. ✔ **Dowry Prohibition Act (1961)** → Criminalizes dowry practices that lead to exploitation. ✔ **National Commission for Women (NCW) & State Commissions**→Monitor and promote women's rights.	help correct historical injustices and ensure fair treatment in society.
⬤Equality (Gender & Economic)	**Laws bridge the gender gap by providing rights and equal status in various spheres.** ✔ **Equal Remuneration Act (1976)** → Eliminates gender-based wage discrimination. ✔ **Hindu Succession (Amendment) Act (2005)** → Grants daughters equal property rights. ✔ **Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act (2019)** → Criminalizes instant triple talaq. ✔ **The Rights of Persons with Disabilities Act (2016)** → Ensures protection for women with disabilities. ✔ **Financial Inclusion Initiatives (PMJDY, Mudra Yojana)** → Support women entrepreneurs.	⬤These laws ensure women's participation in decision-making, economy, and property ownership.
⬤Security & Protection from Violence	**Legal provisions ensure women's safety from violence, exploitation, and human rights violations.** ✔ **Indian Penal Code (IPC) Sections 354, 375, 376, 498A** → Punish crimes like molestation, rape, dowry harassment, and domestic violence. ✔ **POCSO Act (2012)** → Protects minors from sexual offenses. ✔ **Nirbhaya Fund (2013) & One Stop Centres (OSCs)** → Strengthen legal aid and crisis support. ✔ **Fast Track Courts & Women Helplines (181, 1091)** → Provide swift legal action. ✔ **Human Trafficking (Prevention, Protection & Rehabilitation) Bill (2018)**→ Addresses trafficking and forced labor.	⬤ Ensures women's safety from violence, exploitation, and human rights violations.

Theoretical Framework :- A sociological perspective focuses on how not only relationships, language, media but also technology are used to socially construct gender norms. Dispels myths such as "men are natural leaders" and "women are weak" by demonstrating that these are acquired behaviors rather than biological facts encourages change through gender-sensitive education, media portrayal, and changes in socialization. Pierre Bourdieu, Symbolic Violence and Gender Inequality (1986) Symbolic violence, as defined by Bourdieu, describes how gendered inequality is perpetuated by deeply rooted cultural norms and social institutions. By providing institutional support that upends established power structures, OSCs can be viewed as a challenge to symbolic violence. The Patriarchy Theory of Sylvia Walby (1990) as noted by Walby, patriarchy functions through six structures: (i) Household Production: Unpaid household work performed by women. (ii) Paid Work: Pay discrepancies and occupational segregation. (iii) The State: Laws and policies that could support gender inequality. (iv) Male aggression is the use of force to keep power. (v) Sexuality: Conventions that limit women's sexual freedom. (vi) Cultural institutions include the media and places of worship that uphold patriarchal standards.

On the contrary, organizations such as One Stop Centres (OSCs) can lessen patriarchal dominance by offering economic opportunities, legal aid, and more public awareness for women. The

Capabilities Approach by Amartya Sen (1999) Women who are financially dependent have fewer alternatives and are therefore more susceptible to abuse. Through legal aid, microfinance, and vocational training, organizations including OSCs empower women in becoming self-sustaining. In 1848, Karl Marx's Economic Structure Theory asserted the subservience of women is reinforced by economic arrangements. Women have the chance to escape abusive situations and financial reliance due to institutional solutions like work programs in OSCs. The Dramaturgical Theory of Erving Goffman (1959) Core Principle: Social life corresponds to a stage, wherein individuals perform forth roles that comply with social norms. Abuse-affected women may experience pressure to uphold a "social performance" of acceptance, silence, or obedience. OSCs function as a backstage area or secure environment where survivors can abandon their socially prescribed roles and experiment with new identities as self-sufficient, skilled individuals. Women may triumph over repressive gender roles by redefining how they illustrate themselves in society with the help of OSCs' psychological and egalitarian support. The Redistribution and Recognition Theory of Nancy Fraser (1997) claimed Fraser drew emphasizes two facets of social justice:

(i) Redistribution: Resolving disparities in income.

(ii) Recognition: Appreciating the contributions of other cultures and identities.

OSCs can foster social empowerment (advocacy, legal protection) and offer financial support (economic aid, shelters).

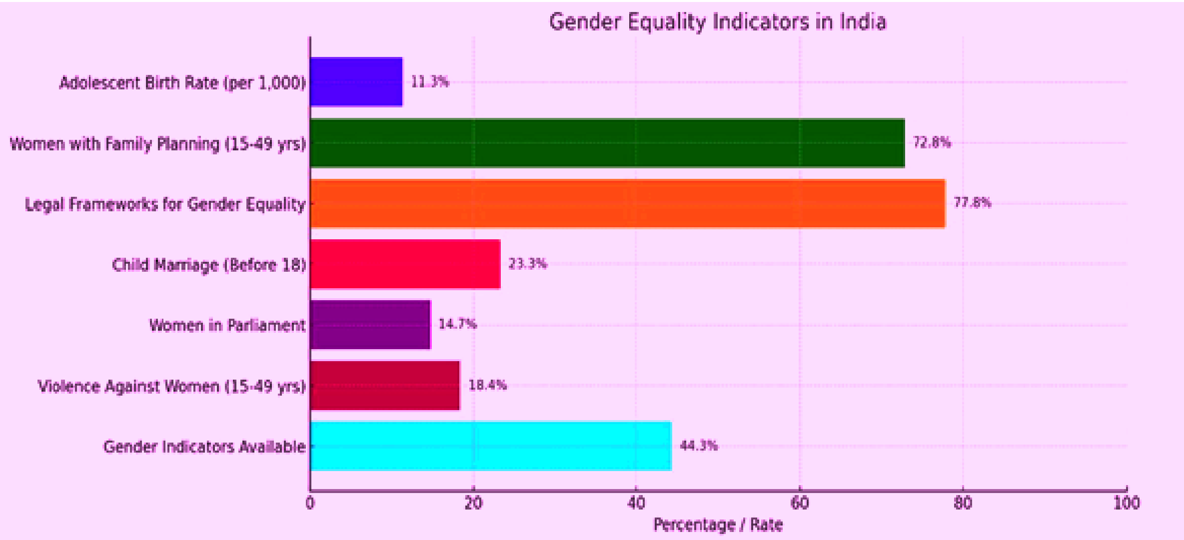

Figure 1. Based on Secondary Data by UN

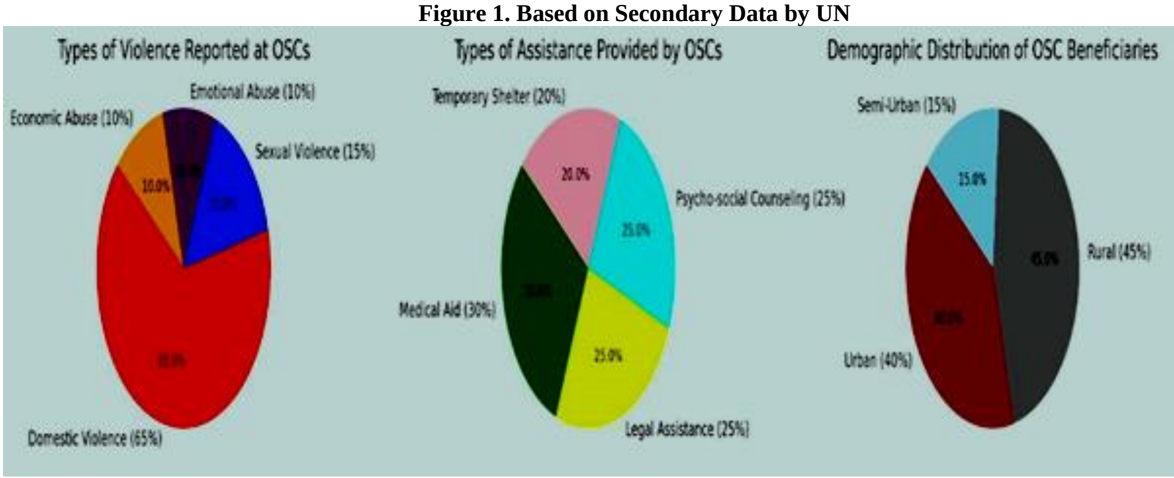

Figure 2. Based on Sources of Secondary Data .

Discussion :- One side FIGURE 1 explained there has been some advancement in women's rights on a global scale. As of 2020, India's adolescent birth rate increased from 10.6 per 1,000 in 2019 to 11.3 per 1,000 women aged 15 to 19. In 2015, 72.8% of women between the ages of 15 and 49 who needed family planning had it supplied via contemporary means. Nonetheless, gender equality in India still need effort. According to the SDGS indicator, 77.8% of legal frameworks that support, adhere to, and assess gender equality with an emphasis on violence against women are in existence. Of women aged 20–24, 23.3% were married or in a partnership prior to the age of 18. Women possessed just 14.7% of parliamentary seats as of February 2024. In 2018, 18.4% of women between the ages of 15 and 49 said that during the previous 12 months, they had experienced physical or sexual abuse at the hands of a current or past intimate partner. Only 44.3% of the indicators required for evaluating the SDGS from a gender perspective were accessible. These indicators were lacking in several important sectors, including unpaid care and domestic work, as well as important labor market indicators including the gender pay gap and information and communications technology skills. Furthermore, comparable approaches for routine monitoring are lacking in many areas, including gender and poverty, physical and sexual harassment, women's access to assets (including land), gender and the environment. To meet its gender-related SDGs goals- India must adress this significant gender data gaps.

In the contrary FIGURE 2. asserted through pie visualizations provides an insightful visual representation of vital data about One Stop Centres (OSCs) and how they assist in combating violence against women. Domestic violence accounts for an alarming 65% of reported occurrences, emphasizing the pervasiveness of abuse in homes. The fluctuated nature of victimization is further demonstrated by the 15% frequency of sexual violence, 10% of emotional abuse, and 10% of economic abuse. The acute physical injury experienced by survivors is reflected in the fact that OSCs mostly offer medical support (30%), along with legal aid (25%) and psycho-social counseling (25%), accentuating the need for justice and emotional healing. Temporary shelter (20%) also provides vital protection for individuals under danger. a review of statistical information, the vast majority of beneficiaries are rural women (45%), highlighting the critical role OSCs play in distant communities whereas urban a study of demographic data, the majority of beneficiaries are rural women (45%), highlighting the critical role OSCs play in distant areas. Urban (40%) and semi-urban women (15%) also seek assistance. This information emphasizes how urgently OSCs must expand their reach and guarantee comprehensive intervention, especially for at-risk rural women, by bolstering legal, medical, and psychological support.

Future outlook :-

1. Extension of OSC Services: To provide improved access to services for women in need, more One Stop Centres should be established in rural and semi-urban regions.
2. Enhanced Legal Frameworks: Stricter enforcement of laws prohibiting child marriage, domestic abuse, and harassment at work, as well as other gender-related legal protections.
3. Improved Data Collection and Monitoring: Filling in the gaps in gender data by creating reliable systems to monitor social empowerment, economic engagement, and gender-based violence.
4. Technological Integration in Gender Initiatives: Utilizing digital platforms to raise awareness, provide legal aid, and enhance reporting mechanisms for violence against women.
5. Stakeholder Collaboration and Policy Development: To guarantee comprehensive intervention and long-term impact, government agencies, non-governmental organizations, and corporate groups should strengthen their relationships.

Conclusion :- Significant obstacles still stand in the way of attaining gender equality in India, notwithstanding progress. The persistently high rate of child marriage and the rising adolescent birth rate are reflections of ingrained socioeconomic problems that call for social reform programs and policy support. Accurately assessing progress and putting targeted solutions into action are made more

difficult by the lack of sufficient gender-related statistics. Although One Stop Centers have been essential in combating gender-based violence, their efficacy and reach need to be increased. The main goals should be to raise knowledge of OSC services, improve infrastructure and financial support, and strengthen partnerships with providers of legal, medical, and psychological services. Furthermore, measuring genderrelated progress and pinpointing intervention areas would require an incorporation of technology for improved monitoring and data collecting. India's policies must prioritize reducing gender data gaps, encouraging women's economic independence, fortifying legal frameworks, and guaranteeing fair access to social security, healthcare, and education in order to create a gender-equal society. OSCs play a crucial part in this change, and sustainedfunding for these facilities would greatly aid in the reduction of gender-based violence and the empowerment of women throughout India.

Reference :-

1. National Crime Records Bureau (NCRB). (2022). Crime in India – 2022 statistics. Ministry of Home Affairs, Government of India. https://ncrb.gov.in
2. Ministry of Home Affairs. (2023). Annual report on crimes against women in India – 2023. Government of India. https://mha.gov.in
3. Ministry of Women and Child Development (MWCD). (2023). Annual report on One Stop Centres: A comprehensive review. Government of India. https://wcd.nic.in
4. National Commission for Women. (2023). Report on the impact of One Stop Centres on gender-based violence. Government of India. https://ncw.nic.in
5. United Nations Population Fund (UNFPA). (2023). State of world population 2023: My body is my own – Claiming the right to autonomy and self-determination. UNFPA. https://www.unfpa.org
6. UN Women. (2023). Progress of the world's women 2023: Gender equality in crisis. UN Women. https://www.unwomen.org
7. World Economic Forum. (2023). Global gender gap report 2023. World Economic Forum. https://www.weforum.org/reports/global-gender-gap-report-2023
8. Chhattisgarh State Women's Commission. (2023). Annual report on One Stop Centres and their impact on women's safety. Government of Chhattisgarh. https://www.cswc.cg.gov.in
9. Government of Chhattisgarh. (2023). Implementation of One Stop Centres in tribal and rural areas: A policy review. Department of Women and Child Development, Government of Chhattisgarh. https://www.cgstate.gov.in
10. UN Women India. (2023). Evaluating the impact of One Stop Centres in India: A regional assessment. UN Women India. https://www.unwomen.org/en/countries/india.
11. Government of India. (2009). Right to Education Act (RTE), 2009. Ministry of Education.
12. Government of India. (1961). Maternity Benefits Act, 1961 (Amended 2017). Ministry of Labour & Employment.
13. Government of India. (2005). Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005. Ministry of Women and Child Development.
14. Government of India. (2013). Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition, and Redressal) Act, 2013. Ministry of Law and Justice.
15. Government of India. (1989). SC/ST Prevention of Atrocities Act, 1989. Ministry of Social Justice and Empowerment.
16. Government of India. (1961). Dowry Prohibition Act, 1961. Ministry of Home Affairs.
17. Government of India. (2005). Hindu Succession (Amendment) Act, 2005. Ministry of Law and Justice.
18. Government of India. (2019). Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act, 2019. Ministry of Law and Justice.
19. Government of India. (2016). The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016. Ministry of Social Justice and Empowerment.
20. Government of India. (2012). Protection of Children from Sexual Offences (POCSO) Act, 2012. Ministry of Women and Child Development.
21. Bourdieu, P. (1986). Distinction: A social critique of the judgment of taste (R. Nice, Trans.). Harvard University Press.
22. Fraser, N. (1997). Justice interruptus: Critical reflections on the "post socialist" condition. Routledge.
23. Goffman, E. (1959). The presentation of self in everyday life. Anchor Books.
24. Marx, K., & Engels, F. (1848). The communist manifesto. International Publishers.
25. Sen, A. (1999). Development as freedom. Oxford University Press.
26. Walby, S. (1990). Theorizing patriarchy. Blackwell Publishers.

৯★৫

आलोचना की बहुआयामी यात्रा : 'आलोचना के सम्मुख' (पुस्तक समीक्षा)

समीक्षक : **डॉ. सुनील कुमार मानस अध्यक्ष : हिंदी विभाग, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)**

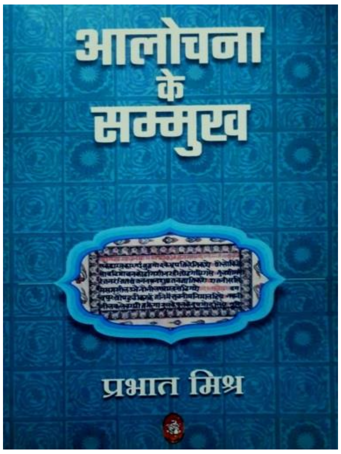

प्रलेक प्रकाशन से 2023 में **प्रभात मिश्र** की प्रकाशित पुस्तक **आलोचना के सम्मुख** एक नए वैचारिक आयाम को रखने वाली पुस्तक है। यह पुस्तक एक तरफ आलोचना के सामने– आलोचना की एक नवीन वैचारिक दृष्टि को रेखांकित करती है, तो दूसरी ओर परंपरा और संस्कृति से जुड़ने एवं टकराते हुए आधुनिक भारत के वैचारिक आयामों को साहित्यिक आधार पर विवेचित एवं विश्लेषित भी करती है। यह पुस्तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. बलिराज पांडेय की प्रेरणा को समर्पित है तथा लेखक ने इस पुस्तक में यह स्वीकार किया है कि "आलोचना के सम्मुख" का अभिप्राय साहित्य समीक्षा है, किंतु यहाँ पर यह वाक्य– इस पुस्तक की वैचारिक अवधारणा में कुछ कमजोरी लाती है। आलोचना के सम्मुख जब कोई चीज़ रखी जाती है, तो वह एक तरफ से आलोचना के बरक्स होने को भी रेखांकित करती है– एक तरह से आलोचना को चुनौती भी देती है और उसके साथ चलने की हमराही भी होती है। इसमें हिंदी साहित्य के आधुनिक बड़े आलोचकों, लेखकों एवं रचनाकारों के विचारों को केंद्र में रखते हुए आधुनिक अवधारणाओं एवं सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चिंतन के विविध आयाम को पर्त–दर–पर्त खोलती हुई– नज़र आती है। यह पुस्तक रवींद्रनाथ ठाकुर से लेकर रामदरश मिश्र तक के वैचारिक चिंतन को हमारे समक्ष रखती है। आधुनिक युग के बड़े हस्ताक्षरों जैसे कि त्रिलोचन, काशीनाथ सिंह, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, महावीर वर्मा, धर्मवीर, बलिराज पांडेय आदि की रचनात्मक प्रक्रिया का समीक्षात्मक अनुशीलन भी प्रस्तुत करती है। यह अनुशीलन एक तरफ हिंदी आलोचना के समस्त आयामों को संदर्भित एवं विश्लेषित करता है तो दूसरी तरफ वैचारिक चिंतन के हर एक नए आयाम को झकझोरती हुई नज़र आती है। इसमें लेखक अपनी निजी राय रखते हुए सृजनात्मक आलोचना को नयी भावभूमि प्रदान करता– नजर आता है। यहाँ काशीनाथ सिंह की यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है कि "आलोचना भी एक रचना है।" जब भी इस पुस्तक के किसी भी लेख को पढ़ा जाता है, तो यह कठिन हो जाता है कि इसमें आलोचनात्मक तत्व अधिक है या रचनात्मक। कई बार तो दोनों मिले–जुले से लगते हैं। प्रभात मिश्र जी की यह खूबी है कि वह रचना और आलोचना को– एक दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए आगे बढ़ते हैं। हिंदी आलोचना की यात्रा में यह बात सर्वमान्य हो गई है कि आलोचना की7 आलोचना करना बेहद कठिन काम है, लेकिन प्रभात जी ने इस बात को चुनौती देते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि यह सब गैर–गुजरी बातें हैं। आलोचना की भी आलोचना– रचनात्मक दृष्टि के आधार पर सरलता से की जा सकती है। इसमें लेखक की केवल संवेदनात्मक दृष्टि नहीं है, बल्कि कहीं–कहीं पर वह व्यंग्यात्मक होती हुई भी नज़र आती है और बड़े मज़े ले–लेकर आगे बढ़ती है, और कहीं शांत एवं स्निग्ध धारा की तरह प्रवाहित–सी नज़र आती है। कभी अपने अंतस की गहराइयों से परिचित कराती है, तो कभी सामाजिक चिंतन की यात्रा से जुड़ जाती है। कभी परंपरा के राग पर– अनुराग दिखाती है, तो कभी–कभी आधुनिकता की चेतना से संपन्न होकर वह नई दृष्टि देने के लिए अपनी निजी प्रतिबद्धता के साथ– मुखर दिखाई देती है। कभी आलोचना को चुनौती देती है, तो कभी आलोचना के साथ चल देती है– ऐसी तमाम विचारधाराओं से संपोषित है– यह पुस्तक।

अस्तु प्रभात मिश्र जी की 'आलोचना के सम्मुख' एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तक है, जो आलोचना की परंपरागत सीमाओं को तोड़ती है और उसे नए संदर्भों से संदर्भित भी करती है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह साहित्य, समाज और संस्कृति से त्रिकोणीय संवाद करती है। यह पुस्तक न तो केवल विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों के लिए महत्त्वपूर्ण है, न ही केवल विद्वानों के लिए– बल्कि यह सामान्य पाठक को भी सोचने, प्रश्न करने एवं साहित्य के प्रति जागरूक होने को प्रेरित करती है। प्रभात मिश्र की भाषा संतुलित, विचारशील और निष्पक्ष है। वे न तो किसी विचारधारा के कठोर अनुयायी प्रतीत होते हैं, न ही किसी लेखक के अंधभक्त। वे रचना एवं आलोचना से जीवंत संवाद बनाते हैं– प्रश्न करते हैं, प्रयोग करत हैं और मानवीय संवेदना से अभिप्रेरित भी होते हैं।

इस तरह से कह सकते हैं कि– यह पुस्तक न तो किसी एक विचारधारा की पक्षधर है और न ही किसी एक स्कूल ऑफ क्रिटिसिज़्म तक ही सीमित, बल्कि इसमें लेखक ने विचारों की बहुलता, विमर्शों की टकराहट और सृजनात्मक आलोचना के अंतः संबंधों को उजागर करती है।

बिहार : एक समीक्षात्मक अध्ययन (पुस्तक समीक्षा)

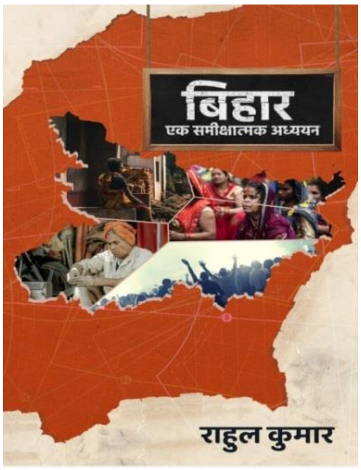

समीक्षक : तीक्ष्णांशु उत्सव, पूर्णियाँ, बिहार।

राहुल कुमार जी की पुस्तक **"बिहार : एक समीक्षात्मक अध्ययन"** बुकस्पॉट प्रकाशन, (2025) से प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक बिहार राज्य के विभिन्न पहलुओं पर गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। लेखक ने इसमें बिहार के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों का विस्तृत विश्लेषण किया है। पुस्तक राज्य की उन जटिलताओं और समस्याओं को उजागर करती है, जिनका बिहार आज भी सामना कर रहा है।

पुस्तक के पहले भाग में बिहार में जातिवाद पर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने जातिवाद के गहरे प्रभावों को समझाते हुए बताया है कि यह समाज को किस प्रकार विभाजित करता है और विकास में बाधा उत्पन्न करता है। उन्होंने जाति–आधारित राजनीति के कारणों का उल्लेख किया है और इसे समाप्त करने के सुझाए भी दिये हैं, जिनमें अंतर्जातीय विवाह को एक समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के दूसरे भाग में स्तरहीन पत्रकारिता पर कड़ा रुख अपनाया गया है। लेखक ने बताया है कि आज के दौर में बिना पत्रकारिता की उचित शिक्षा लिए कई लोग तथाकथित पत्रकार बन रहे हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य केवल चीख–पुकार और सनसनीखेज खबरों से दर्शकों का ध्यान आकर्षित करना है। ऐसे पत्रकारों द्वारा फैलाई जा रही गलत जानकारी पर चिंता जताते हुए उन्होंने सुझाव दिया है कि जनता को जागरूक रहना चाहिए और बिना सत्यापन के किसी भी समाचार पर विश्वास नहीं करना चाहिए। पुस्तक के तीसरे भाग में लेखक ने बिहार की राजनीति में गिरावट पर तटस्थ दृष्टिकोण अपनाया है। उन्होंने ऐसे स्वघोषित छात्र नेताओं की आलोचना की है, जिनका मुख्य उद्देश्य केवल लोकप्रियता हासिल करना है। लेखक ने राजनीति में गिरावट के लिए सोशल मीडिया और स्तरहीन पत्रकारिता को भी जिम्मेदार ठहराया है। जनता को जागरूक करते हुए उन्होंने ज़मीनी स्तर के ईमानदार नेताओं को समर्थन देने की सलाह दी है। इसके अतिरिक्त, भोजपुरी सिनेमा में बढ़ती अश्लीलता और इसके नकारात्मक प्रभावों पर भी गंभीरता से चर्चा की गई है। पुस्तक के चौथे भाग में बिहार की शिक्षा व्यवस्था की दयनीय स्थिति पर ध्यान केंद्रित किया गया है। लेखक ने सरकारी स्कूलों की खराब हालत को बिहार की सबसे बड़ी विडंबना बताया है, जो राज्य के विकास में एक प्रमुख बाधा है। उन्होंने सरकार द्वारा उठाए गए कुछ सकारात्मक कदमों जैसे–75% उपस्थिति अनिवार्यता, कोचिंग संस्थानों के संचालन पर नियंत्रण, और बीपीएससी द्वारा शिक्षकों की नियुक्ति– का भी उल्लेख किया है। पांचवें भाग में लेखक ने बिहार की राजनीति पर गहन चिंतन प्रस्तुत किया है। उन्होंने जेपी आंदोलन के ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित करते हुए बताया है कि यह आंदोलन भारत के राजनीतिक परिदृश्य में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लेकर आया था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने बिहार के चार चर्चित मुख्यमंत्रियोंकृडॉ. श्रीकृष्ण सिंह (आधुनिक विकास की नींव), कर्पूरी ठाकुर (पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण), लालू प्रसाद यादव (सामाजिक न्याय), और नीतीश कुमार (सुशासन और बदलाव)कृके कार्यों एवं उनके शासनकाल की चुनौतियों पर चर्चा की है। छठे भाग में बिहार के उभरते युवा नेताओं का उल्लेख किया गया है। इसमें सबसे पहले तेजस्वी यादव का जिक्र किया गया है कि कैसे उन्होंने क्रिकेट से राजनीति में कदम रखा और उपमुख्यमंत्री बने। लेखक ने 2020 के विधानसभा चुनावों में उनकी पार्टी के प्रदर्शन पर भी चर्चा की है। इसी प्रकार, चिराग पासवान के बारे में बताया गया है कि कैसे वे अभिनेता से राजनेता बने और "बिहार फर्स्ट, बिहारी फर्स्ट" का नारा दिया। पार्टी में विभाजन के बावजूद वे केंद्र सरकार में मंत्री बने रहे। प्रशांत किशोर की राजनीति में रणनीतिक भूमिका और उनकी 'जन सुराज यात्रा' पर भी लेखक ने विस्तार से प्रकाश डाला है। सातवें भाग में बिहार के विभिन्न क्षेत्रोंकृमिथिला, सीमांचल, मगध, तिरहुत, सारण, भोजपुर और अंगकृकी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विशेषताओं को विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। मिथिला की सांस्कृतिक धरोहर, सीमांचल की कृषि क्षमता, मगध का ऐतिहासिक महत्व, तिरहुत की लोकसंस्कृति, सारण और भोजपुर के ऐतिहासिक संदर्भ, तथा अंग क्षेत्र के लोकगीत और कृषि जीवन पर विस्तृत चर्चा की गई है।

कुल मिलाकर, "बिहारः एक समीक्षात्मक अध्ययन" एक अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक है, जो बिहार राज्य की जटिलताओं और उसके विकास मार्ग पर विचार–विमर्श प्रस्तुत करती है। लेखक राहुल कुमार ने बिहार की समस्याओं को सटीक रूप से रेखांकित किया है और उन पर गहरे चिंतन की आवश्यकता को महसूस कराया है। यह पुस्तक बिहार के समग्र सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए एक आदर्श दस्तावेज है।

‘हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि’ पर केंद्रित राष्ट्रीय संगोष्ठी और भारतीय लेखक-शिविर (14-15 जनवरी 2025)

(संगोष्ठी प्रतिवेदन)

डॉ. दयानिधि मिश्र*

विद्याश्री न्यास के सांवत्सरिक उपक्रमों में से एक, पं. विद्यानिवास मिश्र के जन्मदिवस 14 जनवरी के आसपास आयोजित होने वाली राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं भारतीय लेखक–शिविर, इस वर्ष (2025) ’हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि’ पर केंद्रित था। उल्लेखनीय है कि यह वर्ष पंडित जी का जन्म–शताब्दी वर्ष है, और इस आयोजन के साथ ही न्यास द्वारा संकल्पित वर्षभर चलने वाले विभिन्न सांस्कृतिक–साहित्यिक उत्सवों–समारोहों का श्रीगणेश हुआ।

यह दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी और लेखक–शिविर, जन्मशताब्दी वर्ष की गरिमा के अनुरूप, धर्मसंघ शिक्षामंडल के उस सभागार में आयोजित हुआ जो विद्यानिवास जी को अत्यंत प्रिय राधा–माधव के युगल भाव से सुसज्जित है। आयोजन का शुभारंभ उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि डॉ. दयाशंकर मिश्र ’दयालु’ (आयुष राज्यमंत्री, स्वतंत्र प्रभार, उत्तर प्रदेश), अध्यक्ष प्रो. सुनील कुलकर्णी (निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा), विशिष्ट अतिथि प्रो. आनंद कुमार त्यागी (कुलपति, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ), श्री धर्मेंद्र सिंह (सदस्य, विधान परिषद, उत्तर प्रदेश), डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र (प्रधान संपादक, सोच–विचार पत्रिका, वाराणसी), डॉ. अरुणेश नीरन (पूर्व प्राचार्य, स्नातकोत्तर बुद्ध महाविद्यालय, कुशीनगर), प्रो. सदानंद शाही (पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय), प्रो. गिरीश्वर मिश्र (पूर्व कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा) तथा डॉ. दयानिधि मिश्र (सचिव, विद्याश्री न्यास) द्वारा दीप–प्रज्ज्वलन, माँ सरस्वती एवं पं. विद्यानिवास मिश्र के चित्रों पर माल्यार्पण, श्रीकृष्ण शर्मा एवं डॉ. ध्रुवनारायण पांडेय की शंख–ध्वनि, श्री जयेंद्रपति त्रिपाठी के वैदिक स्तवन, श्रीनिवास विलासराव इनामदार के घनपाठ और प्रो. उमापति दीक्षित के पौराणिक मंगलाचरण से हुआ।

***सचिव, विद्याश्री न्यास, अभिलाशा कॉलोनी, नदेसर, वाराणसी।**

इस अवसर को आयुष्मान रिदित मिश्र के तबला–वादन, आयुष्मती आतुषी मिश्र के वीणा–वादन एवं श्री प्रीतम मिश्र के गायन ने एक विशिष्ट गरिमा प्रदान की। प्रो. अरविंद मिश्र, प्रो. श्रद्धानंद, प्रो. उदयन मिश्र और प्रो. ऋतंधर मिश्र ने माल्यार्पण, उत्तरीय, नारिकेल, पुस्तक एवं प्रतीक–चिह्न द्वारा मंचस्थ अतिथियों का स्वागत किया। डॉ. अरुणेश नीरन ने स्वागत–भाषण के साथ ही संगोष्ठी के विषय को प्रस्तावित करते हुए हिंदी उपन्यास के महत्त्वपूर्ण पड़ावों और युगांतरकारी कृतियों के उल्लेख सहित विमर्श के विभिन्न आयामों की ओर मूल्यवान संकेत किए।

उद्‌घाटन सत्र की एक आनुषंगिक कड़ी लोकार्पण–समारोह थी, जिसके अंतर्गत जन्मशती वर्ष के उपलक्ष्य में पंडित जी के व्यक्तित्व–कृतित्व पर केंद्रित दो पत्रिकाएँकृसोच–विचार और वीणाकृके साथ ही नान्दी पत्रिका तथा डॉ. दयानिधि मिश्र एवं प्रो. गिरीश्वर मिश्र द्वारा संपादित पुस्तकेंकृलोक, लोकतंत्र और मीडिया (सस्ता साहित्य मंडल), समवेत का सौंदर्य, रामकथा मंदाकिनी, भारत और भारतीयता, पलाश के फूल की दहक, शिरीष का आग्रह, हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि (सभी प्रलेक प्रकाशन), धर्मेंद्र सिंह संपादित अविनाशी काशी तथा भाषा–दर्शन, प्रियांश, मरुस्थल, मृणाल सेन और उनका सिनेमा जैसी दर्जनाधिक पुस्तक–पत्रिकाओं का लोकार्पण संपन्न हुआ। डॉ. राम सुधार सिंह ने इन सभी लोकार्पित कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया।

सत्र की दूसरी कड़ी सम्मान–समारोह थी, जिसमें इस वर्ष के 'विद्यानिवास मिश्र स्मृति सम्मान' से श्री श्रीप्रकाश मिश्र, 'लोककवि सम्मान' से डॉ. बलभद्र, 'श्रीमती राधिका देवी लोककला सम्मान' से श्री रामजनम भारती, 'पत्रकारिता सम्मान' से श्री राकेश कुमार शर्मा तथा 'श्रीकृष्ण तिवारी गीतकार सम्मान' से श्री नरोत्तम शिल्पी को माला, नारिकेल, उत्तरीय, स्मृति–चिह्न, प्रशस्ति–पत्र और सम्मान–राशि के साथ शंख–ध्वनि और स्वस्तिवाचन सहित सम्मानित किया गया। विभूतियों के परिचय एवं प्रशस्ति–पाठ का दायित्व सुश्री अंजलि मिश्र ने निभाया। अपरिहार्य कारणों से श्री राकेश कुमार शर्मा समारोह में उपस्थित नहीं हो सके, किंतु उनके स्वीकृति वक्तव्य और कविताओं को विशेष आग्रहपूर्वक प्रस्तुत किया गया।

बीज–वक्तव्य में प्रो. सदानंद शाही ने कहा कि हिंदी साहित्य में यूरोप से आई विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रियता उपन्यास को ही मिली, और इसे हिंदीकृबल्कि हिंदकृने अपने रंग–ढंग से ढाला। जिस मध्यवर्ग की यह विधा मानी गई, हिंदी में उसकी जगह आरंभ में किसानों, वंचितों और विशेषतः स्त्रियों ने ली। आज भी हिंदी उपन्यास की मुख्यधारा में वही हैं जो सामाजिक मुख्यधारा में नहीं हैं। प्रो. आनंद कुमार त्यागी ने इस सारस्वत आयोजन को पंडित जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि बताते हुए कथा और जीवन के पारस्परिक संबंध की सुंदर व्याख्या की। डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र की गरिमामय उपस्थिति ने, उनकी शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद, आयोजन को गरिमा प्रदान की। काशी अविनाशी के रचयिता श्री धर्मेंद्र सिंह ने विद्यानिवास जी को काशी की एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्मरण किया।

मुख्य अतिथि श्री दयाशंकर मिश्र 'दयालु' ने पंडित जी और काशी की पांडित्य–परंपरा का उल्लेख करते हुए इस आयोजन से जुड़ाव को आत्मबल एवं आध्यात्मिक उन्नयन का सौभाग्य कहा। अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ. सुनील कुलकर्णी ने लोकार्पित कृतियों, सम्मानित विभूतियों और प्रस्तुत वक्तव्यों के माध्यम से इस प्रकार के आयोजनों को समकालीन भारत की सांस्कृतिक अनिवार्यता बताया। उन्होंने पंडित विद्यानिवास मिश्र को भारत–भाव की कथा–प्रवाह की दीप्त चरित–छाया बताते हुए उनकी जन्मशती वर्ष की आगामी श्रृंखलाओं में केंद्रीय हिंदी संस्थान की सक्रिय सहभागिता की प्रतिबद्धता प्रकट की। इस सत्र का संयोजन प्रकाश उदय ने किया।

दूसरे अकादमिक सत्र 'हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि : स्वतंत्रतापूर्व' की शुरुआत डॉ. श्रुति पाण्डेय (शिलांग, मेघालय) के वक्तव्य से हुई। मुक्ति–चेतना के ब्याज से स्वतंत्रतापूर्व के हिंदी उपन्यासों में निहित स्त्री–मुक्ति और भारत–मुक्ति की समानांतर और उत्तरोत्तर दृढ़ होती गई आवाज को उन्होंने उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किया। डॉ. प्रभात मिश्र ने हिंदी उपन्यासों के विशिष्ट संदर्भ में भारतीय मध्यवर्ग की अपनी पहचान से हिंदी उपन्यासों की अपनी पहचान के बनने की बात कही। भारतीय मध्यवर्ग के घटनाबहुल

जीवन से जुड़कर ही संभवतः हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास घटनाओं के घटाटोप से घिरे रहे हैं। इस मध्यवर्ग के स्वरूप में आए बदलाव के साथ ही उपन्यासों के स्वरूप में भी आते बदलाव को महसूस किया जा सकता है। प्रो. वशिष्ठ अनूप ने प्रेमचंद को भारतीय किसानों के सर्वाधिक विश्वसनीय कथाकार के रूप में आँकते हुए, कृषि–जीवन की उनकी समझ के साथ ही उनके और हिंदी के उपन्यासमात्र के, शिल्प और संवेदना दोनों दिशाओं में, उत्तरोत्तर विकास को निरूपित किया। प्रो. बलराज पाण्डेय ने हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक से लेकर अब तक के विकास का एक रोचक आख्यान प्रस्तुत करते हुए उसकी उपलब्धि के रूप में निम्न वर्ग और निम्न वर्ण और चाहे जिस बहाने, जिन तरीकों, दबाई–कुचली गई आवाजों को आवाज देने के हथियार के रूप में बनी और बनती रही पहचान को रेखांकित किया। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ. विश्वास पाटिल ने मुक्ति–चेतना के विभिन्न आयामों की चर्चा करते हुए उन्हें धारण करने वाले स्वतंत्रतापूर्व के प्रतिनिधि उपन्यासों और उपन्यासकारों के वैशिष्ट्य का व्याख्यान किया। सुचिंतित टिप्पणियों के साथ इस सत्र का सफल संयोजन डॉ. प्रीति जायसवाल ने किया।

तीसरा अकादमिक सत्र 'हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि : स्वातंत्र्योत्तर चार दशक' प्रो. चितरंजन मिश्र की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। डॉ. अखिलेश मिश्र ने आज़ादी के बाद के बहुविध मोहभंग और चतुर्दिक ह्रासोन्मुखता और सांप्रदायिक वैमनस्य को तब के उपन्यासों झूठा सच, तमस, आधा गाँव, कितने पाकिस्तान आदि के माध्यम से पढ़ने की कोशिश की। डॉ. कुमार वरुण ने बैल की आँख, माधोपुर का घर आदि उपन्यासों के जरिए बिहार के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन को रेखांकित होते हुए दिखाया। डॉ. मधुबाला शुक्ल ने विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिक उन्माद के सामाजिक प्रभाव के औपन्यासिक पाठ के रूप में राही मासूम रज़ा के कथा–कर्म को प्रस्तुत किया। डॉ. नरेंद्र नाथ राय ने मुक्ति–चेतना के कथा–पाठ को आपातकाल के विशेष संदर्भ में लिया और हिंदी उपन्यासों पर वैश्विक घटनाओं–परिघटनाओं के प्रभाव का भी मूल्यांकन किया। डॉ. रंजन पाण्डेय ने पाहीघर, बेदखल, डूब, पार, माँ का आँचल आदि उपन्यासों के आधार पर हिंदी उपन्यासों में बदलते हुए गाँवों के प्रवेश को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि होरी तो खैर अपने सामने आई चुनौतियों से जूझ रहा था, अब के किसानों के पास इसकी भी क्षमता नहीं बची। प्रो. सत्यदेव त्रिपाठी ने बताया कि प्रेमचंद के गाँव–केंद्रित उपन्यासों के बाद एक वक्त आया जब रेणु के यहाँ नायक शहर से उठकर गाँव आए, बहुत कुछ अच्छा–अच्छा करने के इरादे लेकर, लेकिन उसके बाद गाँवों का हाल कुछ इस कदर बेहाल हुआ कि चाहे अलग–अलग वैतरणी का देवनाथ उपाध्याय हो या मास्टर शशिकांत या रागदरबारी का रंगनाथ या जल टूटता हुआ का सतीश कृ सबको गाँव छोड़कर भागना पड़ा। यह छोड़कर भागना नायकों का ही नहीं है, बहुत कुछ कथाकारों का भी है, यही वजह है शायद कि हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि के रूप में गाँव अब जब–तब है। प्रो. अवधेश प्रधान ने हजारी प्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा पर केंद्रित होते हुए बताया कि कैसे वह एक तरफ स्त्री–मुक्ति का ताना–बाना बुनता है, दूसरी तरफ दूसरे विश्वयुद्ध की भी छाया छूता है, और तीसरी तरफ अपनी सामाजिक विषमता पर चोट करते हुए पूर्व की धार्मिक उदारता और पश्चिम की सामाजिक उदारता के गठजोड़ की जरूरत की तरफ भी संकेत करता है। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. चितरंजन मिश्र ने सबके समाहार के साथ ही बताया कि समस्याएँ भी और उनके समाधान के लिए संघर्ष भी बहुत हैं, और बहुविध हैं। संवेदनाओं के इतने रंग हैं कि कई बार वे एक–दूसरे को काटते हुए भी नजर आते हैं। ऐसे में कथाभूमि का चयन और उसका निर्वाह भी बेशक निरंतर कठिन होता जा रहा है, लेकिन अपनी कथा–प्रतिभा पर अविश्वास की भी कोई वजह नहीं दिखती। डॉ. रचना शर्मा ने इस सत्र का संयोजन किया।

चौथे सत्र को 'पं. हरिराम द्विवेदी स्मृति काव्य–संध्या' के रूप में आयोजित किया गया। इसकी अध्यक्षता प्रो. वशिष्ठ अनूप ने की तथा संयोजन किया डॉ. अशोक सिंह ने। इस काव्य–संध्या को अध्यक्षीय और संयोजकीय काव्य–पाठ के अतिरिक्त सर्वश्री शरद श्रीवास्तव, अभिनव अरुण, धर्मप्रकाश मिश्र, रचना शर्मा, विजय जी, मासूम जी, प्रतीक त्रिपाठी, अंजलि मिश्र, हिमांशु त्रिपाठी, अंकित मिश्र, संगीता श्रीवास्तव, नसीमा निशा, अखलाक साहब, आलोक सिंह, बेताल जी, नागेश शांडिल्य, कंचन सिंह परिहार, महेंद्र श्रीवास्तव,

सविता सौरभ, धनंजय जी और इस वर्ष श्रीकृष्ण तिवारी गीतकार सम्मान से सम्मानित नरोत्तम शिल्पी प्रभृति कवियों ने अपने काव्य–पाठ से संपन्न किया।

आयोजन के दूसरे दिन, 15 जनवरी का शुभारंभ पंचम सत्र के रूप में पं. विद्यानिवास मिश्र स्मृति व्याख्यान से हुआ। विषय था 'हिंदी उपन्यास : रचना–विधान और विकास–क्रम'। मुख्य वक्तव्य प्रो. दिलीप सिंह का था और उनके अतिरिक्त दो और महत्त्वपूर्ण वक्तव्य प्रो. प्रभाकर सिंह और डॉ. इंदीवर के हुए। इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. श्रद्धानंद ने की और इसका संयोजन किया डॉ. बिजेंद्र पाण्डेय ने। अपने मुख्य वक्तव्य में प्रो. दिलीप सिंह ने रचना–विधान के सौष्ठव की दृष्टि से कृति के विश्लेषण और परख के आग्रह के साथ कहा कि यदि हिंदी उपन्यास–यात्रा के आदि से आज तक के विकास–क्रम को देखें तो पाएँगे कि यह अपने भीतर सरल, हास्यमय, रहस्यमय, चामत्कारिक, गंभीर, सुखद, दुखद अनेक गद्यरूप समेटे हुए है। यह गुंफन ही हिंदी उपन्यास के रचना–विधान को विचारणीय बनाता है। उन्होंने रचना–विधान के गठाव के आधार पर ही हिंदी के पहले उपन्यास को तय करने की बात कही। चंद्रकांता के रूप में, उन्होंने लक्ष्य किया कि अपने जन्म के दस ही बरस बाद हिंदी उपन्यास की भाषा दौड़ती–भागती, लहराती–मचलती, उछलती–कूदती हमारे सामने आ गई। रचना–विधान की इसी ठोस ज़मीन पर समाजगत मूल्यवत्ता में निहित अर्थवान तत्वों को पकड़ते हुए प्रेमचंद सामने आए। उन्होंने हिंदी उपन्यास के रचना–विधान को नए–नए मोड़ों से संपन्न करने वाले उपन्यासों के रूप में प्रसाद, निराला, जैनेंद्र, अज्ञेय, शिवकुमार मिश्र 'रुद्र', वृंदावनलाल वर्मा, यशपाल, धर्मवीर भारती, अमृतलाल नागर आदि की चयनित कथाकृतियों के पाठ का प्रस्ताव रखा। प्रो. प्रभाकर सिंह ने हिंदी उपन्यासों के रचना–विधान पर वैश्वीकरण के प्रभाव को अपने वक्तव्य के केंद्र में रखते हुए बताया कि यह एक तो उपन्यास में विभिन्न विधाओं के शिल्प के प्रवेश के रूप में घटित हुआ, जैसे काशी का अस्सी या कलिकथा बाई पास में; दूसरे, यह विमर्शों की भीड़ में भी उनसे निराक्रांत रहने की अनधीरता में दिखता है, जैसे दीवार में एक खिड़की रहती थी में; और तीसरे, मणिकर्णिका या मुर्दहिया जैसी घोषित रूप से आत्मकथाओं में, जो अपने पूरे गठन से अपने उपन्यास होने को दर्ज करती हैं। इसे उन्होंने उपन्यास के केंद्र में न सिर्फ देश, बल्कि एक लघुतर देश जैसे एक मुहल्ले कृ 'अस्सी' कृ के आ जाने के रूप में भी रेखांकित किया। डॉ. इंदीवर ने हिंदी के प्रारंभिक परीक्षा गुरु, देवरानी–जेठानी जैसे उपन्यासों की संरचना के माध्यम से हिंदी उपन्यासों की बनावट–बुनावट के अद्यावधि विस्तार की प्राथमिक रेखाओं को समझने–समझाने की चेष्टा की। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रो. श्रद्धानंद ने सभी वक्तव्यों के समाहार के साथ ही शिल्प और संवेदना दोनों स्तरों पर हिंदी की उपन्यास–यात्रा में प्रेमचंद की केंद्रीयता के विभिन्न आयामों को स्पष्ट किया।

आयोजन का छठा सत्र 90 के बाद के हिंदी उपन्यासों पर केंद्रित था, जिसकी अध्यक्षता प्रो. अनंत मिश्र ने की। प्रो. सुमन जैन ने ग्लोबल गाँव के देवता को बाजारवाद के संकटों से घिरे आदिवासियों की संतप्त कथा के रूप में रेखांकित किया। आज के समय की सबसे बड़ी चिंता पर्यावरण की है, जिसे आदिम समाज बचाए हुए है और सभ्यता की विकास–यात्रा उसी समाज को रोड़ा मानते हुए राह से हटा देने को तत्पर है। प्रो. मानवेंद्र पांडेय ने पूर्वोत्तर भारत के हिंदी उपन्यासों से उपेक्षित रह जाने को प्रश्नांकित करते हुए उसके भूगोल और सामाजिक जीवन में निहित कथा–संभावनाओं की चर्चा की। इसके साथ ही उन्होंने हिंदी के उन विरलप्राय उपन्यासों का भी एक संक्षिप्त, सारगर्भित मूल्यांकन प्रस्तुत किया जो पूर्वोत्तर के जनजातीय जीवन से जुड़े हैं, जैसे देवेंद्र सत्यार्थी का ब्रह्मपुत्र, श्रीप्रकाश मिश्र का जहाँ बाँस फूलते हैं, देश भीतर देश आदि। श्रीप्रकाश मिश्र ने आदिवासियों से जुड़े उपन्यासों की विस्तृत अनुभवजन्य चर्चा की। कहा कि आदिवासी रचनाकार आमतौर पर अपनी पहचान के लिए लिखते हैं जबकि गैर–आदिवासी प्रायः किसी राजनीतिक दृष्टिकोण को लेकर चलते हैं। डॉ. रामसुधार सिंह ने 90 के बाद के उपन्यासों में निहित मुक्ति–चेतना को विशेषतः पहला गिरमिटिया और बा तथा आनुषंगिक रूप से निर्वासन, रेहन पर रघ्घू, आखेट, दस द्वारे का पिंजरा आदि के आधार पर विवेचित किया। सत्र के अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. अनंत मिश्र ने सत्र के सभी व्याख्यानों के समाहार के साथ ही बताया कि रचनाकार के शिल्प का निर्माण उसके लेखन से होता है और प्रतिभाशाली लेखक अपनी रचनाओं में शिल्प को लेकर आते हैं। रचनाकार ही है जिसे

समाज के अन्याय का एहसास होता है और वह उसकी तरफ इंगिति का साहस भी रखता है, सामर्थ्य भी। इस सत्र का संयोजन डॉ. साधना भारती ने किया।

सातवें अकादमिक सत्र का विषय था हिंदी उपन्यास और विभिन्न अस्मिताएँ। इस सत्र की अध्यक्षता प्रसिद्ध कथाकार डॉ. नीरजा माधव ने की। डॉ. सुनील कुमार मानस ने स्त्री–अस्मिता से जुड़े औपन्यासिक प्रयोगों की चर्चा की। डॉ. मनु पांडेय ने सूत्रधार, टोपी शुक्ला आदि उपन्यासों के आधार पर हिंदी उपन्यासों की संरचनात्मक व्यवस्था की पहचान की। प्रो. वंदना मिश्र ने यमदीप, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा, तीसरी ताली और गुलाम मंडी जैसे उपन्यासों के माध्यम से थर्ड जेंडर संबंधी विमर्श की औपन्यासिक परिणति का मूल्यांकन प्रस्तुत किया। प्रो. भारती गोरे ने स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श की विस्तृत चर्चा करते हुए यह भी कहा कि यदि ये विमर्श केवल विमर्श के नाम पर ज़िंदा हैं, तो यह चर्चा की नहीं, चिंता का विषय है। स्त्री की स्वतंत्रता का मतलब देह की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं किया जा सकता। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में डॉ. नीरजा माधव ने सांस्कृतिक और भौगोलिक अस्मिताओं का उल्लेख करते हुए विभिन्न अस्मिताओं को लेकर कुछ फैल गए और कुछ फैलाए गए भ्रमों के सोदाहरण निवारण की कोशिश की। रचना के स्तर पर, खास तौर पर थर्ड जेंडर को लेकर, कुछ सुनी–सुनाई बातों के आधार पर कथाओं के गढ़न–पढ़न को उन्होंने प्रश्नांकित किया। उन्होंने कहा कि अस्मिता–विमर्श का मूल उद्देश्य समाज को जोड़ना होना चाहिए, तोड़ना नहीं। अपनी विदग्ध टिप्पणियों के साथ इस सत्र का संयोजन प्रो. गोरखनाथ ने किया।

आठवाँ सत्र समापन, संपूर्ति समारोह, स्मृति–संवाद और पुरस्कार–वितरण के रूप में आयोजित हुआ। विद्यानिवास मिश्र स्मृति–संवाद में डॉ. मुक्ता ने बताया कि पंडित जी उन विभूतियों में थे जो धारा में रहते हुए भी धारा के विपरीत चलने का साहस रखते हैं। डॉ. शशिकला पांडेय ने प्रकृति से उनके लगाव और वात्सल्य भाव की विशेष चर्चा की। मुख्य अतिथि प्रो. गोपबंधु मिश्र ने इस आयोजन के केंद्रीय विषय के शास्त्रीय पक्ष को प्रस्तुत किया, इस तर्क के साथ कि मूल को भूलना स्वयं को भुलावे में रखना है, और यह बात पं. विद्यानिवास मिश्र की उस निबंध–कला से स्थापित होती है जो मौलिक, न कि मूलघ्न चिंतन पर आधारित है। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रो. सुरेंद्र प्रताप सिंह ने कहा कि पंडित जी ने कोई उपन्यास भले न लिखा हो, लेकिन अपने निबंधों से जो वैचारिक रसायन उन्होंने उपस्थित किया है वह कथा–प्रबंधों के लिए भी स्पृहणीय है। उन्होंने हिंदी के पहले वैश्विक उपन्यास के रूप में पहला गिरमिटिया की पहचान का आग्रह भी किया।

युवा समवाय के अंतर्गत आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं का पुरस्कार–वितरण भी इस सत्र का एक और आकर्षण था। उपन्यास–समीक्षा पर आधारित आलेखों में प्रथम पुरस्कार श्री धनंजय मलिक को, द्वितीय पुरस्कार डॉ. गुलजबीं अख्तर को, तृतीय पुरस्कार सुश्री क्षमता मिश्र को, सांत्वना पुरस्कार सुश्री शिखा सिंह को तथा सौहार्द पुरस्कार सुश्री नीमालामा को प्रदान किया गया। कविता के लिए सुश्री कागोमादो को प्रथम, डॉ. फिरोज को द्वितीय, कविता सरोज को तृतीय, अरशान अज़ीज़ और नवोदिता त्रिपाठी को सांत्वना पुरस्कार से तथा निबंध के लिए सुश्री पूजा राय को पुरस्कृत किया गया। इस सत्र के संयोजन का दायित्व डॉ. धीरेंद्रनाथ चौबे ने निभाया।

इस दो दिवसीय आयोजन में वाराणसी सहित देश के विभिन्न हिस्सों से पधारे सुधीजन की भागीदारी रही। हर वर्ष की तरह पूर्वोत्तर भारत के शोध छात्र–छात्राओं ने इस वर्ष भी आयोजन के विभिन्न उपक्रमों में बढ़–चढ़कर भाग लिया। इस आयोजन को सफल बनाने में इसके विभिन्न आयामों से जुड़े सभी सुधीजन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रो. गिरीश्वर मिश्र ने कहा कि ऐसे आयोजनों के बहुत सारे प्रयोजन होते हैं, लेकिन यह आयोजन विशुद्ध रूप से साहित्य के लिए है। पंडित विद्यानिवास मिश्र के जन्मोत्सव के साहित्योत्सव होने में ही उसकी सार्थकता है, और यह सार्थकता इस सारस्वत आयोजन में आप सभी सुधीजन की सहभागिता से है।

★

पं. विद्यानिवास मिश्र के 100वें जन्मदिवस के अवसर पर
'हिंदी उपन्यासों की कथाभूमि' विषय पर केंद्रित राष्ट्रीय संगोष्ठी और भारतीय लेखक-शिविर
(14-15 जनवरी 2025) के भव्य आयोजन से जुड़े चित्रपटल

संगोष्ठी का सम्पूर्ण प्रतिवेदन अन्तिम लेख के रूप में पत्रिका में संकलित है।

आलोचन दृष्टि,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
वेबसाइट : https://aalochandrishti.org/

Website QR Code